हम निराश क्यों हों ?

पूजनीय मुनिवर आचार्य-श्री तुलसी भारतीय साधु-सन्त-ऋषि-परम्परा के पुनीत प्रतीक हैं। उनका उज्वल चरित्र, उनका तपश्चरण, उनका सन्त स्वाध्याय, सेवा-निरत जीवन, उनका निरलसकर्मयोग सहस्रावधि व्यक्तियो को सत्प्रेरणा प्रदान करता है। बाल्यकाल से ही वे तप, स्वाध्याय और व्रत मे अपना पवित्र जीवन बिता रहे हैं। मेरी दृष्टि मे वे महान् सन्त हैं। सस्कृत, प्राकृत और पाली के वे उद्भट विद्वान हैं। उच्च कोटि के दर्शन शास्त्री हैं। उनकी वाणी एक द्रष्टा की वाणी है। उनके शब्द तप पूत हैं। उनका शरीर, मन और हृदय निष्ठामय साधना के अनल से सुस्नात है।

उनके द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन भारतीय समाज को शान्तिमय क्रान्ति का कल्याणकारी सन्देश दे रहा है। अनेक नगरो, गाँवो और जनपदो मे आचार्य-श्री के द्वारा उत्प्राणित मुनिजन भारतीय मानव को ऊँचा उठाने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमारे देश को आज परमपूजार्ह ऋषिवर सन्त विनोबाभावे और श्रद्धास्पद मुनि श्री तुलसी गणी के द्वारा एक अभिनव सन्देश मिल रहा है। यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमारे बीच आज भी ऐसी विभूतियाँ विद्यमान हैं।

हम निराश क्यो हों ? हमारा भविष्य उज्वल है, क्योकि हमारे बीच ऐसे सन्तगण हैं और वे हमे उद्बुद्ध होने का सन्देश दे रहे हैं। आचार्य श्री की तृतीय दिल्ली यात्रा का यह विवरण जनता के लिये प्रेरणा-प्रद सिद्ध होगा,—ऐसा मेरा विश्वास है। मैं श्रद्धा युक्त हृदय से आचार्य-श्री के सन्तत चरणशील, तपस्तप्त, दृढ श्रीचरणो में अपने विनम्र प्रणाम अर्पित करता हूँ।

५, विडसर प्लेस, नई दिल्ली
१० अक्तूबर १६५७

—बालकृष्ण शर्मा

प्राक्कथन

ईसा से २०० वर्ष पहले, की लगभग २२०० वर्ष पुरानी एक ऐतिहासिक घटना है। रोमन सम्राट् जूलियस सीजर मिस्र विजय करने गये। वहाँ से लौट कर सीनेट मे उनको अपनी विजय यात्रा की रिपोर्ट प्रस्तुत करनी थी। उन दिनों मे सेनापति और सम्राट सीनेट में स्वय उपस्थित होकर अपनी विजययात्राओं का विवरण उपस्थित किया करते थे। सम्राट् खडे हो गये और केवल छोटे छोटे तीन वाक्य बोल कर बैठ गये। उन का भावार्थ यह था कि "मैं गया, मैंने देखा और मैंने जीत लिया।" सक्षिप्त विवरण पर सभी सदस्य स्तम्भित रह गये, क्योंकि किसी को भी यह आशा नहीं थी कि विना किसी युद्ध, सघर्ष अथवा प्रतिरोध के मिस्र पर इतनी सरलता से विजय प्राप्त कर ली जायगी।

इतिहास अपने को दोहराता है और ऐतिहासिक घटनाओं की पुनरा-वृत्ति होती रहती है। वे घटनायें सर्वांश मे एक दूसरे से चाहे न मिलती हों, फिर भी उन मे पर्याप्त समता रहती है। उनका क्षेत्र भी वदलता रहता है, परन्तु परिणाम उनका एक सा ही होता है। २२०० वर्ष पुरानी उस घटना के प्रकाश में अणुव्रत आदोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी की राजधानी की यात्राओं पर यदि कुछ विचार किया जाय तो उनका विवरण सहज मे जूलियस सीजर के शब्दों मे दिया जा सकता है। भेद केवल इतना करना होगा कि जूलियस सीजर के उत्तम पुरुष के वाक्यों का प्रयोग प्रथम पुरुष मे करना होगा।

आचार्य श्री साम्राज्यवादी राजनीतिक नेता नहीं हैं। जूलियस सीजर की आकाक्षायें उनके हृदय मे विद्यमान नहीं हैं। वे किसी साम्राज्य

वे प्रतिनिधि अथवा प्रतीक नहीं हैं। वे एक धार्मिक आध्यात्मिक अथवा सांस्कृतिक महापुरुष अथवा धर्मगुरु हैं। सांस्कृतिक चेतना को जागृत कर मानव के नवनिर्माण का बीड़ा उन्होंने उठाया है। उनके पास न कोई सेना है न सैन्य सामग्री है और न युद्ध के किसी प्रकार के आयुध। उनके पीछे कानून या शासन की भी किसी प्रकार की कोई शक्ति नहीं है। तन ढकने मात्र के वस्त्र, वस्त्र के कुछ पात्र और स्वयं अपने कन्धों पर उठा सकने योग्य स्वाध्याय सामग्री के अतिरिक्त उनके पास कोई और सांसारिक संग्रह रह नहीं सकता। अपने जीवन की आवश्यकता गोचरी द्वारा इस ढंग से पूरी की जाती है कि उसका अतिरिक्त भार किसी भी गृहस्थ पर नहीं पड़ना चाहिये। अपनी मर्यादा के अनुसार किसी भी गृहस्थ के यहाँ उसकी प्रस्तुत भोजन सामग्री में से कुछ थोड़ा सा लेकर अपनी क्षुधा निवृत्ति कर ली जाती है। सायंकाल सूर्यास्त के बाद खाने या पीने का कोई भी सामान अपने पास रखा नहीं जाता। यात्रा भी बिना किसी वाहन व साधन के सर्वथा पैदल की जाती है। सांसारिक दृष्टि से ऐसे बाह्य साधन सामग्री रहित व्यक्ति "धार्मिक आक्रमण" की कल्पना ही क्या करेगा वह किसी से कोई जोर जबर-दस्ती अथवा आग्रह भी नहीं कर सकता। उपदेश करना उसकी अन्तिम सीमा है। उसको पार कर कोई आदेश देना भी उसका काम नहीं है। ऐसे महान् व्यक्ति की जूलियस सीजर के साथ तुलना नहीं की जा सकती। फिर भी उनकी धर्म यात्रा किसी भी सेनापति अथवा सम्राट् की दिग्विजय करने वाली विजययात्राओं से कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसीलिए जूलियस सीजर के शब्दों को कुछ बदल कर हम आचार्य श्री की धर्मयात्राओं का विवरण इन शब्दों में देने का साहस कर रहे हैं—

'वे आये उन्होंने देखा और उन्होंने जीतलिया'

आचार्य श्री की सात वर्ष पहले की गयी दिल्ली यात्रा की तुलना यदि तीसरी बार १९५९ के दिसम्बर मास में की गयी यात्रा के साथ

की जा सके तो सहज में पता चल सकता है कि तब और अब मे कितना अन्तर है । तब अणुव्रत आन्दोलन को उपेक्षा, उपहास, निन्दा और प्रचण्ड विरोध का सामना करना पड़ा था। उस के प्रति तरह तरह के सन्देह एव आशकायें प्रकट की गयीं। उस पर साम्प्रदायिक सकीर्णता, धार्मिक गुटबन्दी और पूंजीपतियों का राजनीतिक स्टन्ट होने के आरोप लगाये गये। परन्तु अब १९५६ मे उसका कैसा आशातीत स्वागत और कल्पनातीत समर्थन किया गया। तब भी कुछ समय बाद उसकी सफलता पर लोगो की आंखें चौंधिया गयी थीं। बड़े विस्मय के साथ लोगों ने देखा था कि अत्यन्त प्रबल रूप में फैले हुए भ्रष्टाचार, अनाचार तथा अनैतिकता के विरोध मे उठायी गयी आवाज मे कैसी शक्ति है और उसके पीछे कितनी बडी साधना है। आचार्य श्री की तप पूत वाणी ने तब भी राजधानी को झकझोर दिया था और भूकम्प आने पर जैसे पृथ्वी दूर-दूर तक डोल जाती है वैसे ही दिल्ली को झकझोरने से पैदा हुई हलचल की लहरें न केवल हमारे देश के छोटे बडे नगरो तक सीमित रहीं, किन्तु विदेशों तक मे उनका प्रभाव दीख पडा। लेकिन अब १९५६ की यात्रा के ४० दिनों मे व्यापक नैतिक क्रान्ति की जो प्रचड लहरें पैदा हुईं, उनसे यह सिद्ध हो गया कि अणुव्रतों में ससार को हिला देने वाली वह दिव्य अणुशक्ति विद्यमान है, जो अणु आयुधों के अभिशाप को वरदान मे परिणत कर सकती है। अणुव्रतों के इस दिव्य रूप की जो छाप राजधानी के माध्यम से देश विदेश के विचारकों के मस्तिष्क पर पडी, वह आचार्य श्री की इस यात्रा की सबसे बडी सफलता है। इसको सभी ने एक मत से स्वीकार किया है। यह अवसर भी कुछ ऐसा था कि यूनेस्को, बौद्ध गोष्ठी तथा जैन गोष्ठी आदि के सांस्कृतिक समारोहो के कारण देशविदेश के कुछ विशिष्ट विचारक राजधानी मे पहले से ही उपस्थित थे और आचार्य श्री के सन्देश को उन तक पहुँचाने के लिए अनायास ही अनुकूलता उपस्थित हो गयी।

आचार्य श्री का यह तीसरी बार का दिल्ली-आगमन यो ही नहीं हो

गया था। इसके पीछे यदि कोई आन्तरिक प्रेरणा थी तो बाहरी प्रेरणा भी कुछ कम न थी। अणुव्रत आन्दोलन के व्यापक नैतिक महत्त्व को राजनीतिक क्षेत्रों में भी स्वीकार किया जाने लग गया था। भले ही पहली पंचवर्षीय योजना के निर्माण काल में नैतिक निर्माण के महत्त्व को ठीक ठीक न आँका जा सका हो परन्तु दूसरी योजना के निर्माण काल में उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकी। समाजव्यवस्था के लिए समाजवादी आदर्श को स्वीकार करने के बाद राजनीतिक नेताओं का भी ध्यान देश की अस्तव्यस्त सामाजिक स्थिति की ओर आकर्षित होना सहज और स्वाभाविक था। उन्हें यह अनुभव होने में विलम्ब नहीं लगा कि समस्त सामाजिक बुराइयों का मूलभूत कारण वह अनैतिकता है जो हमारे सामाजिक जीवन को भीतर ही भीतर घुन की तरह खाती जा रही है। उन्होंने यह भी जान लिया कि व्यक्तिगत जीवन के निर्माण के बिना राष्ट्र निर्माण के महान् स्वप्न और महान् योजनायें पूरी नहीं की जा सकतीं। उनके लिए स्वयं राजनीतिक हलचलों में इस महान् कार्य के लिए समय निकाल सकना सम्भव न था। इसी कारण उनका ध्यान उन विशिष्ट व्यक्तियों की ओर आकृष्ट हुआ जो नैतिक उत्थान अथवा चैतिक निर्माण के कार्य में संलग्न थे। आचार्य-श्री ने पिछले सात आठ वर्षों में दिल्ली पंजाब राजस्थान सौराष्ट्र गुजरात बम्बई पूना तथा मध्यभारत आदि की लगभग बारह हजार मील लम्बी पैदल दिग्विजय की तो जो धर्मयात्राएं की थीं उसमें अणुव्रत का अमर सन्देश उन्होंने घर घर पहुँचा दिया। उसकी गूँज निरन्तर राजधानी में भी सुनी जाती रही और यह ऊँचे राजनीतिक क्षेत्रों में भी स्वीकार किया गया कि अणुव्रत आन्दोलन राष्ट्र निर्माण की सुदृढ़ नींव तैयार करने के लिए एक अमोघ साधन है। सम्भवतः इसी कारण हमारे महान् नेता प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने भी आचार्य-श्री को दिल्ली आ कर उन से मिलने का सन्देश मुनि श्री नगराज जी से एक मुलाकात में निवेदन किया था। आचार्य-श्री के दिल्ली में हुए प्रथम पदार्पण के साथ से ही राज-

धानी मे उनके सुयोग्य शिष्य मुनि श्री बुद्धमलजी और उनके बाद उनके विद्वान् शिष्य एव प्रखर प्रवक्ता मुनि नगराज जी तथा मुनि महेन्द्र जी आदि अणुव्रत के सतत् प्रसार मे लगे हुए थे। उनके ही कारण राजधानी मे आन्दोलन के लिए निरन्तर अनुकूलता पैदा होती जा रही थी। उन्होंने अणुव्रतों के सन्देश को राष्ट्रपति भवन और मन्त्रियों की कोठियों से सामान्य जनो तक पहुँचाने का निरन्तर प्रयत्न किया था। अणुव्रत आन्दोलन के अन्य समर्थको और कार्यकर्ताओं की भी यह प्रवल इच्छा थी कि आचार्य-श्री को इस महत्वपूर्ण अवसर पर राजधानी पधारना ही चाहिये, क्योंकि वे यहां आयोजित सास्कृतिक आयोजनों का लाभ अपने इस महान् आन्दोलन के लिए प्राप्त करने की प्रवल इच्छा रखते थे। उनकी इच्छा यह थी कि आचार्य-श्री को उजैन से सीधे दिल्ली आकर १६५६ का चातुर्मास राजधानी मे ही करना चाहिये। राजधानी के विशिष्ट नेता और कार्यकर्ता भी इसी मत के थे। काग्रेस महासमिति के महा मन्त्री श्री श्री मन्नारायण, श्री गोपीनाथ 'अमन', श्री मती सुचेता कृपलानी, डा० सुशीला नैयर, श्री-मती सावित्री देवी निगम डा० युद्धवीर सिंह तथा ऐसे ही अन्य महानुभाव भी समय समय पर अपना आग्रह तथा अनुरोध प्रकट करते रहते थे। आचार्य-श्री ने दिल्ली न आ कर सरदारशहर मे चातुर्मास करने का निश्चय कर लिया। अनेक सज्जनों ने, जिनमें श्री श्री मन्नारायण प्रमुख थे, सरदराशहर पहुँच कर सार्वजनिक रूप से भी दिल्ली पधारने के लिए अनुरोध किया था। चातुर्मास पूरा होने से पहले आचार्य श्री दिल्ली के लिए प्रस्थान नहीं कर सकते थे। फिर भी दिल्ली प्रस्थान के सम्बन्ध मे आचार्य श्री ने अन्य सन्तों से विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर दिया और अन्त मे यह निश्चय प्रकट कर दिया कि चातुर्मास पूरा करके दिल्ली को प्रस्थान किया जायगा।

आचार्य-श्री ने एक प्रवचन मे अपनी दिल्ली यात्रा के सम्बन्ध मे ठीक ही कहा था कि मेरी दिल्ली यात्रा को लेकर कई लोग भिन्न भिन्न

विहार की आपबीती कहानी के लिए मुनि श्री सुखलाल जी के शब्दों से अधिक उपयुक्त शब्द नहीं मिल सकते। उन्होंने उसका वर्णन इस प्रकार किया है कि "हमारा सारा समय प्राय चलने में ही बीतता। कभी दो विहार होते, कभी तीन विहार होते। आराम पूरा कर पाते या नहीं कि शब्द हो जाता "सतो तैयार हो जाओ" फिर भी जादू यह कि किसी को इसकी शिकायत नहीं थी। रात्रि को बैठकर अपने पैर अपने आप ही दबा लेते और सो जाते। सुबह तक थकान मिट जाती। फिर सुबह विहार के लिये तैयार हो जाते। कई दिनो तक यह क्रम चला। आखिर औदारिक शरीर पर इसका असर तो आया ही। बहुतो के पैर दुखने लगे। कोई बोलता तो गरम पानी लाकर पैर धो लेता और कोई नहीं बोलता तो चुपचाप अपनी बहादुरी को छिपाये रहता। पर तो भी मानसिक उत्साह में कोई कमी नहीं आई। रास्ते मे आचार्य श्री के पैरों मे भी दर्द हो गया। दो तीन दिन तो बोले नहीं। पर आखिर वह कोई सुई नहीं थी, जो छुपाई जा सके। गति की मन्थरता ने यह प्रकट कर दिया कि "आचार्य श्री के पैरो मे भी दर्द है" और उनके जिम्मे और भी बहुत कार्य थे। आये लोगों से मिलना, व्याख्यान देना, चर्चा-वार्ता करना आदि। हम चाहते थे कि आचार्य श्री विश्राम करें, पर उन्हें रात को भी देर तक विश्राम मिलना मुश्किल था। हम लोग तो कभी-कभी दूसरे कमरे मे जाकर आराम भी कर लेते थे, पर आचार्य श्री के पास सोने वाले सतो को तो पूरी तपस्या ही करनी पड़ती थी।

तारानगर, राजगढ़ से भिवानी तक बालू का कच्चा रास्ता था। सोचा करते—यहाँ चलने मे दिक्कत होती है। आगे (भिवानी से दिल्ली तक) पक्की सड़क आ जायेगी। चलने मे सुगमता रहेगी। कच्चे रास्ते मे जगह-जगह कांटे आते हैं, रेत बहुत है। जगह-जगह रास्ता पूछना पड़ता है, फिर भी कभी कभी तो चक्कर खा ही लेते थे। ये सब दुविधाएँ भिवानी मे आगे टल जायेंगी। पर बात और ही निकली।

सर्दी का मौसम था। सुबह ही सुबह जब पैरों का खून जम जाता और सड़क पर चलते तो पैर जम जाते। आसपास की पगडंडियां कंकरीली और कटीली होने के कारण काम में नहीं आतीं। अत: ठिठुरते ठिठुरते पैर लहूलुहान हो गये। उपचार भी करते कपड़ा भी बांधते पर १०-१२ मील चलने तक उनका पता नहीं चलता था प्राय: जम जाता। साथ-साथ सड़कों पर मोटरों की भरमार रहती। मोटर की आवाज सुनकर सड़क छोड़कर नीचे चलते। मोटर निकल जाने के बाद फिर सड़क पर आते। एक मोटर जाती कि दूसरी मोटर की आवाज सुनाई देती। यही क्रम रहता।

रास्ते में ग्रामीण लोग खेतों में काम करते हुये पूछते—कहाँ जाते हो ?

हम कहते—दिल्ली।

"वहाँ क्या कोई मेला है ?

"हाँ, वहाँ सत्संग होगा। दूसरे देशों के बड़े-बड़े विचारक यहाँ दिल्ली आये हुए हैं, उनका मेला है, अत: हम भी उनसे मिलने दिल्ली जा रहे हैं।

बहुत से लोग कहते—तुम मोटर में क्यों नहीं बैठ जाते ? तुम अपना बोझ खुद क्यों ढोते हो ? तुम्हारे साथ इतनी मोटरें चलती हैं, तांगे भी चलते हैं फिर भी तुम इतना दुःख क्यों पाते हो ? कई कहते—देखो ये बेचारे इतनी कड़कड़ाती सर्दी में नंगे पैर, नंगे सिर, अपने कन्धों पर बोझा लिये क्यों घूमते हैं ? वे हमारे पास आते और कहते—अभी सर्दी बहुत है। अभी गांव में हम तुम्हें रोटी देंगे। धूप निकलने पर आगे जाना।

बड़े मनोरंजक प्रश्न होते। हम उनको समुचित उत्तर देते हुए आगे बढ़ जाते। कई गांव तो बीच में ऐसे आये जहाँ शायद जैन साधुओं ने कभी पैर भी नहीं रखे थे। हमारा वेष और इतना बड़ा काफिला देखकर आश्चर्य करते सकुचाते और कहीं-कहीं अपमान भी करते।

पर हमे इनकी क्या परवाह थी, अपने रास्ते पर चलते रहते ।

मार्ग में न जाने कितने दृश्य आते थे । निरा एकान्त स्थान, शुद्ध हवा, दोनो तरफ लहलहाते खेत, भोले-भाले ग्रामीणो के झुंड । जहाँ जाते वहाँ मेला सा लग जाता । ग्रामीण बच्चे तो आहार भी मुश्किल से करने देते । रात को सोने के लिये मकान भी कच्चे मिलते । कहीं स्कूलों में ठहरते तो ऊपर के रोशनदान प्राय फूटे मिलते । नींद कम आती थी । कपडे कम थे और नीचे से फर्श टूटा-फूटा होता । दरवाजों के किवाड भी टूटे रखे रहते । पर इतना होने पर भी कभी मन में विषाद नहीं आया । सबका लक्ष्य था दिल्ली पहुंचना और परवशता तो थी नहीं । स्वेच्छा से सब लोगों ने इसे झेला था । अत विषाद की बात ही क्या थी ।"

कुछ भाई बहिन भी इस पैदल यात्रा मे साथ थे । कुछ श्रावक मोटरों पर भी सारी यात्रा मे साथ रहे, परन्तु जो एक बार पैदल चल लेता था, वह फिर मोटर पर सवार होना पसन्द नहीं करता था । इस प्रकार एक बडी अच्छी टोली बन गई थी । आचार्य श्री का विनोदपूर्ण हास्य सभी को निरन्तर स्फूर्ति एव प्रेरणा प्रदान करता रहता था । किसी भी व्यक्ति से जब आचार्य श्री यह पूछते कि कहो भाई, थकान का क्या हाल है तो सहसा ही सारी थकान दूर हो जाती और नयी स्फूर्ति से अगले विहार के लिए तैयार हो जाते । मार्ग मे अनेक गांवों में श्रद्धालु लोगों ने आचार्य श्री से अपने यहाँ कुछ समय रुकने का आग्रह किया, किन्तु निश्चित दिन निश्चित ध्येय पर पहुँचने का सकल्प निरन्तर आगे बढने के लिये प्रेरित करता रहा और ऐसा कोई आग्रह स्वीकार नहीं किया जा सका । अनुरोध करने वाले दिल्ली पहुँचने का महत्व जानकर स्वय भी उसके लिए विशेष आग्रह नहीं करते थे । दिल्ली मे अणुव्रत आन्दोलन तथा आचार्य श्री की अन्य सास्कृतिक प्रवृत्तियों में दिलचस्पी रखनेवाले अनेक श्रावक श्राविकायें राजधानी के कार्यक्रमों में सम्मिलित होने के लिए दूर-दूर से दिल्ली आ पहुँचे थे ।

आचार्य श्री के दिल्ली के प्रवास में व्यस्त कार्यक्रमों, आन्दोलनों, प्रवचनों तथा मुलाकातों का विस्तृत विवरण इस ग्रन्थ में दिया गया है। पाठक स्वयं उनके सम्बन्ध में सम्मति कायम करेंगे तो अच्छा होगा। फिर भी संक्षेप में यह बताना आवश्यक है कि आचार्य श्री ने अपने इस प्रवास में एक भी समय ऐसा नहीं जाने दिया जब कि कोई न कोई कार्यक्रम नहीं होता था और जिज्ञासु अथवा मुमुक्षु लोग आचार्य श्री को घेरे न रहते थे। पैदल परिभ्रमण करते हुए भी सारी राजधानी का चप्पा चप्पा विलोकन कर लिया गया। राष्ट्रपति भवन मन्त्रियों के निवास स्थान संसद सदस्यों के निवासगृह, सार्वजनिक सभास्थल राजघाट, बिड़लागृह, हरिजन बस्ती दिल्ली सचिवालय न्यायालय विद्यालय तथा ऐसे ही अन्य सब स्थान आचार्य श्री के शुभ पदार्पण से पवित्र हो गये और सारी ही और कोने-कोने में आचार्य श्री का जन-जीवन के नव-निर्माण का सन्देश गूँज उठा। उसकी प्रतिध्वनि से खिंचे ही देश विदेश के विद्वान् मुमुक्षु ज्ञानी विचारक, लेखक पत्रकार, अनेक नैतिक व सांस्कृतिक आन्दोलनों में लगे हुये प्रचारक, बौद्ध भिक्षु यूनेस्को के प्रतिनिधि राजनीतिज्ञ आचार्य श्री के दर्शन प्राप्त करने और उनसे विचार-विनिमय करने के लिये आते रहे। अनेक अमेरिकन फ्रांसीसी जर्मन जापानी तथा अभिजनवादी विदेशी अच्छी संख्या में आचार्य श्री के सान्निध्य में उपस्थित होते और वार्तालाप के बाद अत्यन्त सन्तुष्ट होकर लौटते। इन मुलाकातों में विचारों का मन्थन बड़ा ही समाधानकारक रहा। पैदल यात्रा के कारण आचार्य श्री एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने संघ के साथ जब विहार करते थे तब जनता भरा-भरी मार्गों से स्वागत करती हुई सम्मान के साथ नतमस्तक हो जाती थी। चारों ओर राजधानी में आचार्य श्री के नाम की धूम मच गई थी। दिल्ली को झकझोर कर आचार्य श्री ने उसमें नैतिक नवनिर्माण की जो नवचेतना पैदा की, उसका प्रभाव दूर-दूर तक फैल गया।

राजधानी के इन दिनों के कार्यक्रमों में अणुव्रत सेमिनार, अणुव्रत

सप्ताह, चुनाव शुद्धि के लिए प्रेरणा और मैत्री-दिवस का आयोजन प्रमुख थे। अणुव्रत आन्दोलन आचार्य-श्री की प्रमुख देन है, जिसका लक्ष्य जन-जीवन का नैतिक नवनिर्माण करना है। आचार्य-श्री के नव-निर्माण के अनुसार राष्ट्रनिर्माण का भव्यभवन व्यक्तिगत जीवननिर्माण की ठोस एव सुदृढ नींव के बिना खड़ा नहीं किया जा सकता। यह आन्दोलन उसी नींव का निर्माण कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि मे यह आन्दोलन मानव को सर्वथा निर्भय बना कर वह अभयदान देना चाहता है, जिससे अणुआयुधो के निर्माण की होड निरर्थक सिद्ध होकर हिंसा-प्रतिहिंसा तथा घात-प्रतिघात की समस्त दुर्भावनाओं का स्वत अन्त हो जायगा और अत्यन्त दु साध्य प्रतीत होने वाली नि शस्त्रीकरण तथा विश्वमैत्री आदि की समस्त समस्यायें सहज मे हल हो जायेगी। इसी हेतु आचार्य-श्री के दिल्ली प्रयास का शुभ श्री गणेश अणुव्रत सेमिनार से किया गया और दूसरा मुख्य आयोजन राष्ट्रीय-चरित्र निर्माण मूलक अणुव्रत चरित्र-निर्माण सप्ताह का रखा गया, जिसका उद्घाटन सप्रू भवन मे प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने किया था।

चुनाव सम्बन्धी भ्रष्टाचार और नैतिक पतन हमारे राष्ट्र की प्रमुख समस्या बन गये हैं। उनमें जातिवाद तथा सम्प्रदायवाद का बोलवाला है, उससे राष्ट्र के बड़े-बड़े नेता भी चिन्ता मे पड गये हैं। उनके कारण पैदा हुई गुट्टबाजी ने कांग्रेस सरीखी शक्तिशाली सस्था की भी जड़ें हिला दी हैं। आचार्य-श्री ने इन सब अनर्थो के निवारण के लिए चुनाव शुद्धि के आन्दोलन को रामबाण औषध के रूप मे उपस्थित किया। उसकी उपयोगिता को चुनाव आयुक्त श्री सुकुमार सेन तथा सभी दलों के राजनीतिक नेताओ ने भी स्वीकार किया। उसके सम्बन्ध में तैयार की गयी प्रतिज्ञायें यदि कुछ समय पहले उपस्थित की गयी होतीं, तो उनका निश्चित प्रभाव प्रकट हुए बिना न रहता। फिर भी जो विचारात्मक क्रान्तिकारी प्रेरणा उससे प्राप्त हुई, वह व्यर्थ नहीं गयी और भविष्य मे उसके और भी अधिक शुभ परिणाम प्रकट होने

निहित है।

"मैत्री दिवस" का आयोजन राष्ट्रीय की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व अधिक रखता है। महात्मागांधी की एक पथभ्रष्ट युवक द्वारा की गई निर्मम हत्या मानव समाज के प्रति किया गया एक बहुत बड़ा अपराध है। इसी कारण पारस्परिक भूलों एवं अपराधों की आन्तरिक प्रेरणा से क्षमा याचना करने के उद्देश्य से आयोजित इस दिवस के कार्यक्रम के लिए राजघाट से अधिक उपयुक्त दूसरा स्थान नहीं हो सकता था और राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी से अधिक सात्विक दूसरा कोई राजनीतिज्ञ इसके उद्घाटन के लिये मिलना कठिन था। इस दिवस का शुभ आरम्भ इस भावना से किया गया कि प्रतिवर्ष किसी नियत दिवस पर यदि शुद्ध अन्तःकरण से सब लोग एक दूसरे के प्रति किये गये ज्ञात-अज्ञात अपराधों एवं भूलों के लिये क्षमायाचना करेंगे तो विश्व का वातावरण इस पवित्र भावना से प्रभावित हुए बिना न रहेगा और प्रत्येकव्यक्ति-व्यक्ति के रूप में विश्वमैत्रीके लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार यह सबसे बड़ी और सबसे अधिक पवित्र भावनामय भेंट दे सकता है। इसी कारण राष्ट्रपति ने इस आयोजन का स्वागत करते हुए इसको स्थायी बनाने पर जोर दिया।

आचार्य-श्री के प्रवचनों में इस बार एक अद्भुत और अलौकिक प्रेरणा निहित थी। उनके उद्गारों में विस्मयजनक आकर्षण पाया गया। उनकी तप पूत साधना में विश्व शक्ति विद्युत् शक्ति के समान विद्यमान थी। इसी कारण उनके प्रति बिना किसी प्रयास के अनायास ही छोटे बड़े सभी लोगों में स्वाभाविक आत्मीयता पैदा हो गयी। हर किसी ने उनको अपना पथ प्रदर्शक मान लिया। आचार्य श्री का व्यक्तित्व धर्मगुरु के साथ-साथ जन-नेता के रूप में भी निखर उठा और अणुव्रत आन्दोलन जनमन में नवीन जागृति क्योंकि प्रेरणा स्फूर्ति एवं क्रियाशीलता का स्रोत बन गया। समाचारपत्रों और रेडियो विभाग के सहयोग से इसको भी समर्थन मिला उससे जन के महत्व

एव उपयोगिता मे चार चाँद और लग गये ।

चालीस दिन के अत्यन्त व्यस्त एव व्यग्र कार्यक्रम से भी आचार्य श्री—दिल्ली की जनता की नैतिक भूख को पूरा नहीं कर सके । लोगों की प्रबल इच्छा थी कि आचार्य-श्री को अभी दिल्ली में ही कुछ दिन और रहना चाहिये और अपने प्रवचनोंकि लाभ से उसको वंचित नहीं करना चाहिये । पिलानी के उदार-नेता सेठ जुगलकिशोर जी बिडला ने भी आचार्य-श्री से दिल्ली मे कुछ स्थायी रूप से रहने का अनुरोध किया था । उस अनुरोध मे दिल्ली की जनता की आकांक्षा एव आग्रह प्रतिध्वनित होता था, परन्तु सरदार शहर मे माघ महोत्सव के आयोजन के कारण आचार्य-श्री का राजधानी मे अधिक दिन रहना सभव न हो सका और दिल्लीवासियो को अतृप्त छोडकर आचार्य श्री ७ जनवरी को सरदारशहर के लिए विदा हो गये । लौटते हुए आने की अपेक्षा विहार मे कठोरता कहीं अधिक उग्र हो गयी । वर्षा और कुहरे की प्राकृतिक अडचनों से अधिक बडी अडचन स्थान-स्थान पर रुकने के लिए किया गया लोगों का आग्रह था । आग्रह टाला जा सकता था , किन्तु वर्षा और कुहरे को कौन टालता ? इस कारण होनेवाली देरी को विहार की गति बढ़ाकर ही पूरा किया जा सकता था । रास्ते में सर्दी का प्रकोप भी कुछ कम न था । आचार्य-श्री ने अपने जीवनकाल में पहली बार नागलोई मे सर्दी के प्रकोप की शिकायत की । प्रात - काल उन्होंने कहा—"आज तो इतनी सर्दी लगी है कि इसके कारण रातभर जागरण करना पडा । यह पहला ही अवसर है कि इतने लम्बे समय तक सर्दी के कारण जागना पडा हो । पर यह खेद की बात नहीं है । खूब एकान्त का समय मिला । मनन, चिन्तन और स्वाध्याय मे खूब जी लगा । ऐसा एकान्त समय मुझे कभी ही मिला करता है, क्योंकि सारे साधु तो गहरी नींद में सोये हुये थे ।"

चिन्तन, मनन और साधना की यह कैसी ऊँची भावना है ?

लौटते हुए पिलानी मे जो चार दिन का प्रवास हुआ उसका विवरण

भी इस रूप में लिया गया है। भिवानी हरियाणा का एक प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र होने के कारण ही नहीं किन्तु वहाँ जो कार्यक्रम हुए, उनके कारण भी भिवानी के प्रवास का विशेष महत्व है। आचार्य-श्री ने वहाँ अपने पहुंचते ही प्रवचन में यह महत्वपूर्ण घोषणा की थी कि हमारा देश केवल कृषि प्रधान नहीं किन्तु ऋषि प्रधान है और उस के ऋषियों की अमर वाणी ने सदा ही मानव को सुख शान्ति का आत्मिक सन्देश प्रदान किया है।

माघ कृष्णा ११ (२६ जनवरी १९५७) को आचार्य-श्री सब सहित सानन्द सकुशल सरदारशहर वापिस पधार गये। अपनी इस धर्मयात्रा के सम्बन्ध में आचार्य-श्री ने सरदारशहर में एक प्रवचन में स्वयं यह कहा—मेरी यह यात्रा अत्यन्त आनन्ददायिनी रही। इसका एक मात्र कारण था—संकल्प की दृढ़ता, और इसी दृढ़ता के कारण अनेक बाधाओं के आने पर मैं भी समझता हूँ कि मेरा प्रत्येक कार्य बिल्कुल नियत समय पर हो गया। मैंने यहाँ से चलते वक्त संकल्प किया था कि मुझे देहली १ तारीख को पहुँचना है और ठीक उसी दिन वहाँ पहुँच गया। आने का भी मेरा निश्चय इसी प्रकार बिल्कुल पूरा हुआ। आप समझिये कि इतनी लम्बी यात्रा में घड़ी भी भी देरी नहीं हुई है और यदि ऐसा होता तो सम्भव है मेरे कार्यक्रम में बाधा आ सकती। पर मुझे इसकी खुशी है कि मेरी यात्रा बड़ी आनन्ददायी रही।

इस लम्बी और आनन्ददायी यात्रा का यह विवरण भी पाठकों के लिए वैसा ही प्रेरणादायक एवं स्फूर्तिदायक होना चाहिए जैसी कि आचार्य-श्री की यह यात्रा स्वयम् में थी। आचार्य-श्री के इस दिल्ली प्रवास से प्रत्यक्ष रूप में यह प्रमाणित हो गया कि अणुव्रत आन्दोलन समय की एक प्रबल माँग है और आचार्य-श्री ने उसको पूरा करने का बीड़ा उठाकर एक महान् कार्य का सम्पादन किया है। "नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति" की गीता की वाणी अणुव्रत

आन्दोलन पर सवा सोलह आने चरितार्थ हुई है । उपेक्षा, उपहास, निन्दा एव विरोध की घनी घटा को भेद कर अणुव्रत आन्दोलन एक निश्चित तथ्य के रूप मे सूर्य के समान प्रकट हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से अणुव्रत आन्दोलन में अणुआयुधों के प्रतिकार की शक्ति एव सामर्थ्य अनुभव की जाने लगी है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन कार्य मे अपने सहयोगी श्री प्रेमचन्द भारद्वाज (सयुक्त सम्पादक—"योजना"), श्री बाबू लाल जी शास्त्री, श्री सिद्ध-गोपाल जी काव्यतीर्थ और श्री प्रभात कुमार जी जोशी का जो अमूल्य सहयोग मुझे प्राप्त हुआ उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

४० ए हनुमान रोड
नई दिल्ली
१० अक्तूबर ५७

सत्यदेव विद्यालकार

आभार प्रदर्शन

"नवनिर्माण की पुकार" अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी की दिल्ली-यात्रा का संक्षिप्त विवरण है जो आचार्य श्री के प्रेरणादायी वचनों, दार्शनिक प्रवचनों, देश-विदेश के लब्ध प्रतिष्ठ जननेताओं और विचारकों के साथ जीवन-निर्माणात्मक नैतिक विषयों पर हुए वार्तालापों द्वारा मानव मात्र को चरित्र-निर्माण और अणुव्रतात्मक जागृति का सुगमात्मक मार्ग देता है।

यह विवरण बहुत पहले ही प्रकाशित हो जाना चाहिए था। लगभग चालीस दिन के नई दिल्ली के प्रवास में आचार्य श्री के पुण्य प्रभाव से राजधानी का कोना कोना प्रभावित हो उठा। इस प्रेरणादायक और महत्त्वपूर्ण विवरण के सम्पादन और प्रकाशन में सुप्रसिद्ध हिन्दी पत्रकार और यशस्वी लेखक भाई श्री सत्यदेव जी विद्यालंकार ने अपना अमूल्य सहयोग देकर आचार्य श्री के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति और अणुव्रत आन्दोलन के प्रति अपनी अनुरक्ति का एक और सहज व स्वाभाविक परिचय दिया है। उनका सहयोग आन्दोलन के साथ उसके प्रारम्भ से ही रहा है। हिन्दी के दार्शनिक कवि आदरणीय श्री बालकृष्ण शर्मा ने उपोद्घात लिखने की कृपा की है। मैं दोनों विद्वानों के प्रति सविनय आभार प्रदर्शित करता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक के सुरुचि सज्जित प्रकाशन में चूरू के सहृदय साहित्य प्रेमी श्री हिम्मतमल जी हुलासचन्दजी अमरसिंहजी सुराणा ने स्वर्गीय पूज्य श्री तिलोकचन्दजी सुराणा की पुण्य स्मृति में नैतिक सहयोग के साथ आर्थिक सहयोग देकर अपनी सांस्कृतिक एवं साहित्यिक सुरुचि का परिचय दिया है, यह उनके लिए अनुकरणीय है। मैं आदर्श साहित्य संघ की ओर से सादर आभार प्रकट करता हूँ।

—जयचन्दलाल दफ्तरी

व्यवस्थापक आदर्श साहित्य संघ

कहाँ — क्या

पहला प्रकरण

दूसरा प्रकरण

तीसरा प्रकरण

पहला प्रकरण

आयोजन (१) बौद्धगोष्ठ

श्रमण संस्कृति का मूल—अहिंसा

अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक जैन श्वेताम्बर तेरापन्थ के आचार्य श्री तुलसीगणी अपने ३१ शिष्यों तथा अनेक श्रावक श्राविकाओं के साथ २९ नवम्बर सन् १९५६ को नई दिल्ली के यंग मेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन हाल मे पधारे जहाँ कि बौद्धगोष्ठी का विशेष आयोजन किया गया था। आचार्य श्री के सरदार शहर से दो सौ मील का पैदल प्रवास करने के बाद नई दिल्ली पधारने पर यह पहला आयोजन था, जिसमे वे यात्रा से सीधे सम्मिलित हुए। स्वागत समारोह एव अभिनन्दन का आयोजन नहीं किया गया था, क्योंकि आचार्य श्री कामकाज के सम्मुख उसको कुछ भी महत्व नहीं देते। लम्बी यात्रा के बाद विश्राम करने का प्रश्न भी काम मे जुटने मे बाधक नहीं हो सकता था। फिर भी उपस्थित श्रावक श्राविकाओं ने अभिनन्दनपरक नारों से आचार्य श्री का स्वागत किया और वे नारे शीघ्र ही अत्यन्त शान्त एव गम्भीर वातावरण में विलीन हो गये। आयोजन के उपयुक्त वातावरण पहिले से ही बना हुआ था। आचार्य श्री का पदार्पण जमुना मे गगा के सगम की तरह हुआ, जिसमें इतनी बडी सख्या में जैन साधु और बौद्ध भिक्षु सम्भवत पहिली ही बार सम्मिलित हुए। काषाय (पीताम्बर) वस्त्रधारी बौद्ध भिक्षुओं के साथ शुभ्रवस्त्रधारी जैन मुनियों का समागम अत्यन्त भव्य, दिव्य, सात्विक एव मनोमुग्धकारी दृश्य उपस्थित कर रहा था।

आचार्य श्री के द्वार पर पहुँचते ही जर्मन विद्वान प्रो० हर्मन जैकोबी के दो शिष्य प्रो० ह्यासनोथ और प्रो० हॉफमैन स्वागत के लिये आगे आये। वे बहुत देर से बडी उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

भवन मे सामने शामियाने वाली कतार के विभिन्न भागों से समागत अनेक बौद्ध भिक्षु बैठे थे। पीछे राजधानी के सम्माननीय लोगों विदेशी राजदूतों, यूनेस्को कांग्रेस मे समागत प्रतिनिधियों पत्रकारों तथा श्रावक श्राविकाओं से हॉल खचाखच भर गया। नमस्कार मंत्र का उच्चारण होते ही समस्त लोग खड़े हो गये।

कुमपुर ध्वनि मे अति श्रद्धाशील उपस्थिति मे नमस्कार मंत्र का उच्चारण हुआ। अति शान्त वातावरण मे प्रो एम कृष्ण मूर्ति द्वारा आयोजन का उद्देश्य बताये जाने के बाद आचार्य श्री ने अपना प्रवचन प्रारम्भ करते हुए कहा —

बौद्ध सेमिनार के सदस्यो ! भाइयो और बहिनो ! आज मैं अभी अभी जो राजस्थान से दो सौ मील पैदल चलकर आया हूँ, इसका उद्देश्य यही है कि राजधानी मे दूर दूर के देशों से आये हुये विद्वानों से विचार विनिमय कर सकूं। आज यहाँ जो बौद्ध गोष्ठी का आयोजन किया गया है इसका लक्ष्य भी भारत मे विचारों का आदान प्रदान करना ही है अत उचित है कि मै आपको अपने जैन मुनियों और जैन धर्म का परिचय दूं।

जैन मुनियो का यह नियम होता है कि वे जीवन भर पैदल यात्रा करते हैं। किसी भी अवस्था मे अपना बोझ आप ही ढोते हैं। वे मधुकरी वृत्ति से घर घर भिक्षा मांगते हैं। वे उद्दिष्ट यानी अपने लिये बनाया हुआ भोजन नहीं लेते। जैन साधुओ के लिये वाहन चलाना सर्वथा वर्ज्य है। भगवान महावीर ने इसका दृढ़तापूर्वक विरोध किया है क्योंकि इससे वृत्तियाँ बिगड़ती हैं। जैन साधु पाँच महाव्रतों का पालन करते हुये जीवन यापन करते हैं, जैसा कि भगवान महावीर ने कहा है :—

अहिंस सच्चं च अतेणगं च
तत्तो य बम्भं अपरिग्गहं च।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाइं
चरेज्ज धम्मं जिणदेसियं विदू ॥

यह पद्य उत्तराध्ययन सूत्र का है, जिसका उपदेश भगवान महावीर ने अपने निर्वाण के अन्तिम समय दिया था।

आज मे ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत मे एक सस्कृति का विकास हुआ था, जिसका नाम था 'श्रमण सस्कृति'। जैन और बौद्ध उसी एक सस्कृति की दो धारायें हैं। यद्यपि आजीवक आदि और भी धाराएँ श्रमण सस्कृति की थीं, पर आज जैन और बौद्ध ये दो ही धाराएँ बच पाई हैं। श्रमण सस्कृति का मतलब है अपने अहिसक श्रम द्वारा जीवन यापन करना। इस दृष्टि से मुझे दोनो धाराओं मे बडा साम्य मालूम होता है। जिस प्रकार अहिसा का नाम लेते ही उसके साथ जैन और बौद्ध दोनों का नाम याद हो आता है उसी प्रकार भगवान महावीर और वुद्ध का नाम अपने आप आ जाता है। धम्मपद मे भगवान वुद्ध ने कहा है —

"अहिसा सत्व पाणाना अरि योति पवुच्चति।"

इसी तरह भगवान महावीर ने कहा है—

"अहिसा सत्व भूएसु सजमो।"

यह ठीक है कि भगवान महावीर ने अहिसा का सूक्ष्म विवेचन करते हुए कहा है—"स्थूल दृष्टि मे अहिसा का मतलव प्राणी रक्षा से लिया जाता है पर सूक्ष्म दृष्टि से अपनी आत्मा को बुराइयों से वचाना ही अहिसा है। जो लोग जीवन रक्षा के लिये हिसा करते हैं, वे तथ्य को नहीं जानते। जैसे अ न वचाने की दृष्टि से किया जाने वाला उपवास यथार्थ दृष्टि से उच्च नहीं है, उसी प्रकार प्राणी रक्षा के लिये की जाने वाली अहिसा भी उच्च नहीं है। उपवास करने पर अन्न तो अपने आप वच ही जाता है उसी प्रकार जीवन रक्षा तो अहिसा का प्रासगिक फल है। अतएव भगवान महावीर ने सयम और अहिसा को एक ही कहा है।

जातिवाद के विषय मे दोनों ही धाराओं मे बडा साम्य है। जैसे महात्मा बुद्ध ने कहा है —

न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मुना वसलो होइ, कम्मुना होति ब्राह्मणो॥

इसी प्रकार भगवान महावीर ने कहा है—

"कम्मुणा बम्भणो होइ कम्मुणा होई खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होई, सुद्दो हवई कम्मुणा॥

इसी प्रकार पुनर्जन्म कर्मवाद आदि में भी दोनों में बड़ी समानता है। इसके सिवाय इन दोनों में भेद भी है। जैन धर्म जहाँ कठिन चर्या को स्थान देता है, वहाँ बौद्ध धर्म मध्यम प्रतिपदा को मानता है। भगवान महावीर ने केवल कठिन चर्या पर ही जोर नहीं दिया है, ध्यान को भी बड़ा महत्व दिया है। उन्होंने कहा है—जो किसी से होने वाली शारीरिक तपस्या से जितने कर्म कटते हैं, उतने चार मिनट के ध्यान से कट जाते हैं। अतः उन्होंने ध्यान पर बड़ा जोर दिया है। मेरी दृष्टि से जैन धर्म आचार और विचार दोनों ही दृष्टियों से मध्यम प्रतिपदा है।

विचार की दृष्टि से जैन धर्म अनेकान्त में विश्वास करता है और आचार की दृष्टि से अणुव्रत का मार्ग भी बताता है क्योंकि महाव्रतों को सब पाल नहीं सकते। यद्यपि विवेचन तो अन्तर दृष्टि से होना चाहिये पर आज हमें समन्वय की बात अधिक देखनी चाहिये। इस प्रकार यदि हम समन्वय की तरफ ध्यान रखेंगे तो हमारे पास अहिंसा एक ऐसा तत्त्व है जिससे हम संसार का बहुत भला कर सकते हैं।

श्री एन   इन्द्रमुनि लाल ताव आचार्य श्री के भाषण का अंग्रेजी में अनुवाद करते जाते थे।

प्रवचन के बाद प्रो.   ग्लासनेप ने अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने बताया कि किस प्रकार उनकी जैन दर्शन में रुचि पैदा हुई। अपने द्वारा जैन दर्शन पर लिखी गई पुस्तक की भी उन्होंने चर्चा की। आज आचार्य श्री के गुरु कालूगणी और अपने गुरु डा. हर्मन जैकोबी के मिलन को याद कर वे अत्यन्त आनन्दविभोर हो रहे थे कि उन दोनों गुरुओं के दोनों शिष्य आज फिर मिल रहे हैं।

जैन धर्म और वौद्ध धर्म

इसके वाद जापान के वौद्ध भिक्षु फ्यूजी ने जापानी भाषा मे अपनी प्रसन्नता प्रगट की, जिसका हिन्दी अनुवाद उनके ही सायी एक भिक्षु कर रहे थे। अपने भाषण के अन्त मे उन्होंने एक प्रश्न आचार्य श्री के सामने रखा "जब वौद्ध और जैन धर्म वहुत कुछ समान हैं तो फिर वौद्ध धर्म की तरह जैन धर्म भी व्यापक पैमाने पर तथा भारत से वाहर क्यों नहीं फैला ?

आचार्य श्री ने उत्तर देते हुए कहा—पहले वौद्ध धर्म और जैन धर्म भारत मे वहुत फैले थे, यह वात इतिहास सिद्ध है। पर समय के प्रभाव मे वौद्ध धर्म विदेशों मे वहुत फैल गया। इसका कारण है कि वौद्ध भिक्षु स्वय विदेशो मे गये और अपने धर्म का प्रचार किया। जैन मुनि ऐसा नहीं कर सके। जिस धर्म के साधु स्वय उसका प्रचार नहीं करते वह धर्म फैल नहीं सकता। यही कारण है कि जैन धर्म अपने प्रभाव क्षेत्र भारत वर्ष मे ही रहा। अत्यधिक विरोधों के वावजूद भी यह भारत मे टिका रहा—यह उसकी विशेषता है।

जैन धर्म विदेशों मे नहीं फैल सका, इसका दूसरा कारण है—वौद्ध धर्म ने मध्यम मार्ग अगीकार किया अत वह जन साधारण के अनुकूल था और लोगो ने उसे स्वीकार कर लिया।

जैन धर्म मे भी मध्यम मार्ग का प्रतिपादन है, फिर भी तात्कालिक साधुओ द्वारा स्थापित मर्यादाओं के कारण वह इतना कठोर वन गया कि हर एक आदमी के लिये उसका पालन करना कठिन हो गया और वहुत कम लोग जैन धर्म को अपना सके। फिर भी मुझे खुशी है कि श्रमण सस्कृति के ही एक अग वौद्ध धर्म का विदेशों में प्रचार हुआ। दोनो ने जातिवाद और ईश्वर कर्तृत्व के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई। दोनो ही कर्मवाद और पुरुषार्थवाद को प्रश्रय देते हैं। यह उनमे वडी समानता है और यही मेरी खुशी का कारण है।

इस अवसर पर मैं एक प्रश्न बौद्ध भिक्षुओं से भी कर बैठा हूँ कि भारत में प्रचलित होकर भी बौद्ध धर्म भारत में अपना अस्तित्व क्यों नहीं रख सका ?

इसका उत्तर भारत के एक बौद्ध भिक्षु महोदय ने दिया। उन्होंने कहा—"मुझसे यह प्रश्न बहुधा पूछा जाता है और इसका उत्तर मैं यह दिया करता हूँ कि बौद्ध धर्म का अनुयायी हम उसे मानते हैं, जिसके हृदय में भगवान बुद्ध के प्रति श्रद्धा हो और यह भी सही है कि कोई भी भारतीय ऐसा न होगा जिसके हृदय में भगवान बुद्ध के प्रति श्रद्धा न हो। अतः हमारी दृष्टि से प्रत्येक भारतीय बौद्ध है। आचरण की बात तो यह है कि लोग जितना सदाचरण करते हैं वह बौद्ध धर्म की शिक्षा के विपरीत तो है नहीं अतः हम उसी को बौद्ध धर्म का आचरण व अस्तित्व मान लेते हैं।

आचार्य श्री ने कहा—हाँ मुझसे भी लोग बहुधा पूछते हैं कि जैन धर्म के अनुयायी इतने थोड़े क्यों हैं ? मैं उन्हें यह उत्तर दिया करता हूँ कि जो व्यक्ति सदाचारी और अहिंसा में विश्वास रखने वाले हैं वे सारे जैन हैं तो आप जैनों की संख्या थोड़ी क्यों मान लेते हैं, वे बहुत हैं।

मुनि श्री नगराज जी ने आचार्य श्री के दिल्ली आगमन पर हर्ष प्रकट करते हुए कहा—"भगीरथ ने इतनी बड़ी तपस्या की तो वह गंगा को धरती पर लाने में समर्थ हुआ किन्तु हमारे लिये कितनी सौभाग्य की बात है कि बिना परिश्रम किये ही तपस्या की यह गंगा स्वयं चलकर हमारे घर आ गई। आज मैं आचार्य श्री का जितना भी आभार मानूं उतना थोड़ा है। हम आचार्य श्री का स्वागत क्यों करें ? उनकी स्वयं की दृष्टि यह रहती है कि वे स्वागत नहीं, काम चाहते हैं। इसलिये हमने आज स्वागत समारोह नहीं रखा। मुझे आचार्य श्री ने यहाँ की रखवाली के लिये भेजा था। आज आचार्य श्री स्वयं ही पधार गये हैं, वे देख लें कि हमने अपना कर्तव्य कैसे निभाया है।

अणुअस्त्र बनाम अणुव्रत

१ दिसबर १९५६ को प्रेस सम्मेलन का आयोजन किया गया था। मुनि श्री नगराज जी ने अणुव्रत आंदोलन तथा उसके प्रवर्तक आचार्य श्री का परिचय दिया। फिर आचार्य प्रवर ने अणुव्रत आंदोलन की नैतिक क्रातिमूलक भावना का विश्लेषण करते हुए उसकी आज तक की गतिविधि एव बहुमुखी कार्यक्रमो से प्रेस प्रतिनिधियों को अवगत कराते हुए कहा—

आज का जन-जीवन समस्याओं से आक्रांत है। अमीरी और गरीबी की समस्या है। शोषक और शोषितों की समस्या है, तिस पर भी विश्व क्षितिज पर आज अणु-अस्त्रों की विभीषिका मडरा रही है। विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक तनाव बढ़ते जा रहे हैं। यह महा समस्या है। अणु अस्त्रो के निर्माण और उनके प्रयोगों ने समग्र विश्व को एकाएक मौत के मुंह पर खड़ा कर दिया है। यह सब क्यों ? यह इसलिये कि आज का विश्व भौतिक विकास के शिखर पर चढा है। आज उसके जीवन का भौतिक पक्ष परम पुष्ट है। परन्तु आध्यात्मिक और नैतिक विकास के अभाव मे उसकी स्थिति पक्षाघात के बीमार सी होती जा रही है। मानवता मरती जा रही है और दानवता पुष्ट होती जा रही है। जीवन के वरदान भी अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं। भारतीय चिन्तकों ने अध्यात्म और नैतिक सामर्थ्य को बढावा दिया है, परिणाम स्वरूप विश्व को दैवी सम्पदा मिली। पाश्चात्यों, विशेषत वैज्ञानिकों ने भूतवाद को बढ़ावा दिया। उसके परिणाम हैं—अणुबम और उद्जनबम। आज की सारी समस्याओ और विभीषिकाओं का समाधान मानव के नैतिक उदय में अंतर्निहित है। अणुव्रत आंदोलन नैतिक जागृति का एक क्रातिकारी कदम है। वह विश्व मे सुषुप्त नैतिकता को पुनर्जीवित करना

चाहता है। यदि ऐसा हुआ तो उद्योगपति मजदूरों का शोषण नहीं करेंगे भूमिपति किसानों पर बेरहम नहीं होंगे एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर बम बरसाने की बात नहीं सोचेगा और इस नैतिक उदय के नवप्रभात में "आत्मवत्सर्वभूतेषु—प्राणीमात्र को अपने जैसा समझो" "विशेष लाभ न ले सकते—इस तरह से मनुष्य को लाभ नहीं मिल सकता"—ये भावनाएँ घट घट में घर कर जायेंगी।

अणुव्रत आंदोलन को आरम्भ हुये लगभग ७ वर्ष हो गये। प्रारम्भ में यह लोगों को स्वप्निल लाभ लगता था किन्तु अब उसके व्यावहारिक होने में विश्वास जमने लगा है। आंदोलन का प्रथम वार्षिक अधिवेशन सात वर्ष पूर्व देहली में हुआ था। १२१ व्यक्तियों ने चोर बाजारी न करना, रिश्वत न लेना मिलावट न करना झूठा तोल माप न करना आदि समग्र प्रतिज्ञायें ली थीं। समाचार जगत् ने 'कलियुग में सतयुग का अवतरण' कहकर इस समाचार को अपने मुख पृष्ठ पर स्थान दिया था पर साथ साथ यह भी व्यक्त किया गया था कि किसी सतयुग का मूल्यांकन तभी होगा जब यह अपना स्थायित्व बना लेगा। आज मुझे आप पत्रकारों के बीच यह बताते हुये प्रसन्नता होती है कि अणुव्रत आंदोलन तब से अब तक विकासोन्मुख है। आज समग्र भारतवर्ष में मेरे सहित लगभग १२ शिष्य साधुगण सैकड़ों कार्यकर्त्ता व अनेकों संस्थायें नैतिक जागरण की पुनीत भावनाओं को आगे बढ़ाने में प्रयत्नशील हैं। आये दिन नये नये उन्मेष इस दिशा में होते जा रहे हैं। समग्र नियम लेने वाले अणुव्रतियों की संख्या लगभग ४ है और प्रारंभिक नियम लेने वाले सदस्यों की संख्या १ लाख से भी अधिक है। विगत दो वर्ष में मैंने विद्यार्थी वर्ग के चरित्र निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया। लगभग २ लाख विद्यार्थियों ने साक्षात् सम्पर्क में आकर नैतिक प्रेरणा प्राप्त की है। स्कूलों कालेजों में निर्धारित प्रतिज्ञायें भी ली हैं। इसी प्रकार हमारा यह वर्गीय कार्यक्रम मजदूरों, व्यापारियों, कर्मचारियों कैदियों पुलिस आदि विभिन्न वर्गों में सफलता से चल रहा

है। आदोलन के तथा प्रचार के और भी विभिन्न कार्यक्रम हैं।

अभी मैं कुछ विशेष लक्ष्य से ही देहली आया हूँ। भारतवर्ष सदा से नैतिक व आध्यात्मिक ज्योति का प्रसारक रहा है। भगवान महावीर और बुद्ध का शिक्षा आलोक दूर दूर तक समुद्रो पार पहुँचा। अभी देहली मे नया अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन हुआ है। यह बहुत सुन्दर होगा कि बाहर से आने वाले लोग भारतवर्ष के नैतिक सदेशो को विदेशो मे ले जायें। यह निर्यात सब के लिये हितकर होगा। लगता है भारतवर्ष मे नैतिक उपदेशों की बहुलता होने के कारण उनका भाव मदा सा होता जा रहा है। अन्य पदार्थों के निर्यात से जैसे भावो की तेजी आ जाती है, मैं सोचता हूं इस नैतिक निर्यात से देश मे भी उसका मूल्य बढ़ेगा। इसी हेतु ता० २-३-४ दिसबर को यहा अणुव्रत सेमीनार आयोजित किया गया है। आशा है भारतवर्ष का यह देश व्यापी आंदोलन विदेश मे भी गति पायेगा, जो कि समस्त मानव जाति के लिये हितकर है।

प्रवचन के पश्चात् प्रश्नोत्तर हुए। अन्त में श्री छगनलाल शास्त्री ने आभार प्रदर्शन किया।

आयोजन (३) अणुव्रत गोष्ठी का प्रारम्भ

नवनिर्माण का महान अनुष्ठान

२ दिसम्बर १९५६ के प्रातःकाल यग मेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन हाल मे अणुव्रत गोष्ठी का आयोजन किया गया था। आचार्य श्री पचमी समिति से निवृत्त होकर सीधे वहां पधारे।

एक तरफ स्टेज पर गृहस्थ कार्यकर्ता बैठे थे। दूसरी ओर काष्ठ पट्टों पर आचार्य श्री तथा उनसे नीचे साधु साध्वीगण बैठे थे। सामने

देश विदेश के विद्वान् विचारक, यूनेस्को कान्फ्रेन्स में आये प्रतिनिधि पत्रकार, आन्दोलन में निष्ठा रखनेवाले नागरिकों का विशाल जन-समूह उपस्थित था। वातावरण बड़ा गंभीर और आकर्षक था।

सर्वप्रथम आल इंडिया रेडियो दिल्ली की म्यूजिक डायरेक्टर श्रीमती मुटाटकर ने मंगलगान किया।

आज की समस्यायें

स्वागताध्यक्ष प्रो० एन० कृष्णमूर्ति के ओजस्वी स्वागत भाषण के बाद अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान् यूनेस्को के डायरेक्टर जनरल डा० लूथर इवेन्स ने गोष्ठी का उद्घाटन किया।

उन्होंने अपने भाषण में कहा—

संसार आज समस्याओं से उलझा है। अनेक प्रकार की समस्यायें उसके सामने हैं। पर आश्चर्य है कि उन्हें जानते हुए भी हम उन्हें सुलझा नहीं पा रहे हैं। सरकारें भी चाहती हैं कि उनके पारस्परिक सम्बन्ध कटु न हों कोई भी आक्रमण न करे पर वे उन्हें सफल करने का कोई हल प्रस्तुत नहीं कर सकी हैं। मनुष्य एक प्रयत्नशील प्राणी है। वह हमेशा से प्रयत्न करता रहा है। हम लोग यूनेस्को के द्वारा शान्ति के अनुकूल वातावरण बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। इधर अणुव्रत आन्दोलन भी प्रशंसनीय काम कर रहा है, यह बड़ी खुशी की बात है। मैं इसकी सफलता चाहता हूँ कि आपका यह सत्कार्य संसार में प्रेम और शान्ति का मार्ग दर्शन करे।

सुख और शान्ति का मूल

आचार्य श्री ने अपने मर्मस्पर्शी प्रवचन में कहा—

"मनुष्य का जीवन सरस भी है, नीरस भी है, सुख भी है, दुःख भी है, सब कुछ भी है, कुछ भी नहीं है।

जीवन कला है।

नीरस को सरस, दु ख को सुख, कुछ भी नहीं को सब कुछ बनाने वाला कलाकार है।

मनुष्य कलाकार है।

कला गूढ़ की अभिव्यक्ति है।

गूढ़ को अभिव्यक्त करने वाला कलाकार है, वह गूढ से भी गूढ है।

अतिगूढ को समझने के लिये पूर्व तैयारी अधिक चाहिये। अति स्पष्ट से अभिलषित विकास नहीं होता। इन दोनों से परे का मार्ग, 'व्रत' है। वह जीवन की कला है। असयम के घोर अधकार मे सयम की अर्धरेखायें भी पथ निश्चित बता देती हैं।

घोर हिंसा और सूक्ष्म अहिंसा के बीच का जो मार्ग है, वही बहुतों के लिये शक्य है।

अपरिमित सग्रह और अपरिग्रह के बीच का जो मार्ग है, वही बहुतों के लिये है।

युद्ध और सघर्षमय दुनिया में जीने वाले अहिंसा और अपरिग्रह की लौ न जला सकें—ऐसी बात नहीं है। अहिंसक होना अन्तिम दर्जे की वीरता है। हिंसक बने रहना पहले दर्जे की कमजोरी है। भय से भय बढ़ता है, घृणा से घृणा। क्रूरता का प्रतिफल क्रूरता और विरोध का प्रतिफल विरोध है। हिंसा के प्रति हिंसा का सिद्धांत फलित हो रहा है।

भयाकुल मनुष्य उन्मुक्त आकाश मे सो नहीं सकता। किवाड़ों से ब द मकानों मे और बडे बडे शस्त्र धारियों के पहरे मे सोता हुआ भी सुख से नींद नहीं ले सकता। शांति का प्रकाश अभय के सान्निध्य मे फैलता है।

मन और आत्मा को बेचकर शरीर की परिचर्या करने वाले लोग सुख के सामने शांति को आंखों से ओझल किये देते हैं। सुख शारीरिक स्रोतों से उत्पन्न होने वाली अनुभूति है। शांति का प्रतिष्ठान मन और आत्मा है। साधारण लोग शांति के लिये सुख को नहीं ठुकरा सकते, किन्तु अशांति पैदा करने वाले सुख से बच तो सकते हैं।

नहीं जाऊँगा। थोडी गहराई मे गये विना गति भी नहीं है। पेट को पकडे विना वाहरी उपचार से कुछ वनने का नहीं है।

सुख के वाहरी उपादानों को वढाने की दिशा मे अणु-युग का प्रवर्तन हुआ है। इसमे भयकरता के दर्शन होने लगे हैं। अणु वुरा नहीं है, वह भयकर भी नहीं है। भयकरता मनुष्य मे है। भय से भय आता है, अभय से अभय। अपने मन से भय को निकाल दीजिये, अणु की भयकरता नष्ट हो जायगी। मन मे भय वढता रहा तो अणु और अधिक भयंकर वन चलेगा। अणु अस्त्र वाले अणु अस्त्र वाले मे नहीं घवडाते। जिनके पास अणु अस्त्र नहीं हैं—वे अणु अस्त्र वालो से डरते हैं। यह अणु और स्थूल की टक्कर है। सफलता के जमाने मे विषमता नहीं हो सकती। इसीलिये भय वढ रहा है। अणु की टक्कर अणु से होने दीजिये, भय रहेगा ही नहीं।

स्थूल अस्त्रों से अणु-अस्त्रो का प्रतीकार नहीं हो सकता। अणु-अस्त्र अणु-अस्त्रो के प्रतिकार मे लगेंगे तो दोनो मिट जायेंगे। प्रतीकार के दोनों मार्ग गलत हैं।

अणुव्रत सग्रह की प्रवृत्ति को मर्यादा मे वांधता है। अधिकार और इच्छायें सिमट कर अपने क्षेत्र मे आजाती हैं, अभय का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। अणुवमो को हतवीर्य करने का यही सरल मार्ग है।

"अणुव्रतों के द्वारा अणुवमो की भयकरता का विनाश हो, अभय के द्वारा भय का विनाश हो और त्याग के द्वारा सग्रह का ह्रास हो", ये घोष उच्चतम सभ्यता, सस्कृति और कला के प्रतीक वनें और इस कार्य में सवका सहयोग जुडे तो जीवन की दिशा वदल सकती है।

अपनी शान्ति के लिये अणुव्रत अपनाइये, अपनी शान्ति के लिये अभय वनिये, अपनी शान्ति के लिये सग्रह को कम करिये। आपके अणुव्रतो की आभा दूसरो को भी आलोक देगी। आपका अभय भाव शत्रु को भी मित्र वनायेगा।

आप द्वारा किया गया सग्रह का अल्पीकरण अणु-आयुधों के लिये

अपनी मौत आप मरने की स्थिति पैदा करेगा। विश्व के विभिन्न चिन्तकों लेखकों कलाकारों से जो अपने अपने राष्ट्र की सजीव भावनाओं के प्रतीक बन कर यहाँ आये हैं मैं हृदय की गहरी संवेदना के साथ कहना चाहूँगा कि वे जीवन में व्रतों के प्रयोग" की दिशा को व्यापक बनाने में लगें। हमारे संयम से हमारा हित होगा, दूसरों को प्रेरणा मिलेगी जीवन-व्यापी दृष्टिकोण बनेगा तो व्यापक हित होगा। अहिंसा शान्ति और मैत्री के लिये यत्नशील व्यक्ति और संस्थाओं के सारे मिलकर प्रयत्न शृंखलित हों—यह मैं चाहता हूँ। राजनीतिक दलबन्दी से दूर रहकर विशुद्ध मानवता व भाईचारे की दृष्टि से कुछ अन्तर्राष्ट्रीय दिवस मनाये जायें। जैसे—

(१) अहिंसा दिवस—निःशस्त्रीकरण का प्रयोग किया जाय।

(२) मैत्री दिवस—अपनी भूलों के लिये क्षमा मांगी जाय और दूसरों को उनकी भूलों के लिये क्षमा दी जाय।

ये समारोह प्रेरणा के स्रोत बन सकते हैं और बिखरे प्रयत्नों को सामूहिक रूप दे सकते हैं। मैं अपनी भावना के प्रति सहयोगियों की सद्भावना के लिये कृतज्ञ हूँ। अहिंसा के प्रयत्नों की सफलता चाहता हूँ।

रचनात्मक उपक्रम

मुनि श्री नगराज जी ने अणुव्रत आन्दोलन के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुये बताया—

अणुव्रत आन्दोलन ने राष्ट्र में नैतिक विचार-जागृति का वातावरण लाने में उपयुक्त भूमिका तैयार की है। व्यक्ति व्यक्ति के जीवन-शोधन और नैतिक विकास के माध्यम से इसने जन जीवन को सही विकास की ओर आगे बढ़ने की एक दिशा दी है। यह जीवन-शुद्धि की सर्वांगीण रूपरेखा को लेकर चलने वाला एक रचनात्मक उपक्रम है जो जनजगत के नव निर्माण के संदेश के रूप में आगे बढ़ रहा है। यह निर्माण चरित्र-उत्थान पर आधारित है।

आत्मबल का स्रोत-अणुव्रत

इण्डियन नेशनल चर्च बम्बई के सर्वोच्च अधिकारी फादर डा० जे० एस० विलियम्स ने, जो स्वय अणुव्रती हैं, जोशीली भाषा मे अपने उद्‌गार प्रगट करते हुये कहा कि अणुव्रत आन्दोलन ने उनमे कितना आत्मबल और साहस फूंका है। यूरोप जैसे पश्चिम के ठण्डे मुल्कों की अपनी यात्रा मे भी उन्होने मादक पदार्थो को नहीं छुआ। इग्लैण्ड, फ्रास, स्वीडन, रूस आदि देशों की अपनी यात्रा के बीच वहाँ के लोगों को किस प्रकार उन्होंने अणुव्रत आन्दोलन के आदर्शा से अवगत कराया, इसका भी उन्होंने अपने भाषण मे उल्लेख किया।

अन्त मे अणुव्रत-समिति की ओर से श्री मोहनलाल कठौतिया ने समागत सज्जनों को धन्यवाद दिया। इस प्रकार अणुव्रत गोष्ठी की पहली बैठक का कार्यक्रम अत्यन्त आनन्दोत्साह पूर्ण वातावरण मे सम्पन हुआ।

आयाजन (४) राष्ट्रपति भवन में समारोह

जीवन शुद्धि का महान अनुष्ठान

आज २ दिसम्बर १९५६ को सूयग्रहण था अत गोचरी प्रथम प्रहर मे ही होगई थी और गोष्ठी के प्रात कालीन कार्यक्रम के बाद आचार्य श्री साधु-साध्वी एव श्रावक श्राविकाओं के साथ राष्ट्रपति भवन पधारे।

राष्ट्रपति जी और आचार्य श्री के बीच पन्द्रह मिनट तक एकांत मे बातचीत हुई। फिर आचार्य श्री और राष्ट्रपति जी साथ-साथ मुगल गार्डन मे, जहाँ आज का आयोजन रखा गया था, पधार गये।

भारत की आध्यात्मिकता

पहले आचार्य श्री ने आन्दोलन का परिचय देते हुये अपने भाषण में कहा—

मुझे प्रसन्नता है कि भारत के राष्ट्रपति अध्यात्म भावना के प्रतीक हैं। भारत एक अध्यात्म प्रधान देश है और आप श्री से यह चाहूँगा कि भारत की जो आध्यात्मिकता है वह प्रतिदिन बढ़ती जाये। इसमें साधुओं का सहयोग तो है ही मगर नेताओं का सहयोग भी जैसा कि आप का है, रहे तो निश्चय ही यह पूरा बढ़ सकती है। हमारे ऋषियों ने कहा है कि राज्यत्वम्—यह कोई सर्वोत्तम वस्तु नहीं है। सर्वोत्तम वस्तु है संयम। इसीलिए अणुव्रत आन्दोलन का घोष है— 'संयमः खलु जीवनम्' संयम ही जीवन है। वास्तव में संयम से बढ़कर और कोई धन नहीं है।

अणुव्रत आन्दोलन के लिये आज जनता की भावना बढ़ रही है, जैसा कि स्वयं राष्ट्रपति जी ने भी कहा था कि अब इसे जनता से मान्यता मिल गई है और यह उचित भी है। जब तक आन्दोलन को जनता से मान्यता नहीं मिलती तब तक यह फैल नहीं सकता।

आज से ७ वर्ष पूर्व जब इसका पहला अधिवेशन दिल्ली में हुआ था, तब हमें यह आशंका थी कि आन्दोलन में जाति, देश, वर्ण और रंग का कोई भेद न होते हुये भी लोग इसे साम्प्रदायिक मानकर इसमें सहयोग देंगे कि नहीं? पर राष्ट्रपति जी ने कहा था कि आपकी भावना सच्ची है अतः आप काम करते जाइये। लोगों की भावना अपने आप बदलती जायगी। हुआ भी ऐसा ही। अब लोग इसे साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं देखते हैं। यह देश में फैल रहा है। अभी दिल्ली आने का भी हमारा लक्ष्य यही है कि यूनेस्को के अधिवेशन का अवसर इसके लिये सर्वथा उचित है। अभी यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के लोग आये हुये हैं। उनके साथ पारस्परिक सम्पर्क एवं परिचय हो; काम का

राष्ट्रपति भवन का प्रसग भी इमी उद्देश्य से है। इससे राष्ट्रपति जी की अणुव्रत आन्दोलन के प्रति श्रद्धा स्वय प्रकट हो रही है।

आन्दोलन का अभिनन्दन

राष्ट्रपति जी ने अपने भाषण मे कहा —

पिछले कई वर्षो से अणुव्रत आन्दोलन के साथ मेरा परिचय रहा है। शुरूआत मे जब कार्य थोडा आगे बढा था, मैंने इसका स्वागत किया और अपने विचार बतलाये। जो काम आज तक हुआ है, वह सराहनीय है। मैं चाहूंगा इसका काम देश के सभी वर्गों मे फैले, जिससे सब इससे लाभान्वित हो सकें। इस आन्दोलन से हम दूसरों की भलाई करते हैं, इतना ही नहीं, अपने जीवन को भी शुद्ध करते हैं, अपने जीवन को बनाते हैं। सयम की जिन्दगी सबसे अच्छी जिन्दगी है। इसीलिये हम चाहते हैं कि सभी वर्गों मे इसका प्रचार हो। सबको इसके लिये प्रोत्साहित किया जाये।

हमारे देश मे कई तरह के लोग हैं। अणुव्रत आन्दोलन का काम पहले व्यापारियों मे किया गया। उनकी बुराइयो को दूर करने का प्रयत्न किया गया। ज्यों-ज्यों काम बढता गया, दूसरे वर्गों को भी लिया गया। अभी अभी जैसी मेरी आचार्य जी से बात हुई, कुछ और लोगो मे भी काम किया जावेगा। दो तरह के लोग होते हैं—कुछ ऐसे जो मामूली तौर से अच्छे होते हैं, उन्हें और अच्छा बना देना चाहिए। कुछ ऐसे लोग हैं, जो उस तरह के समाज के सपर्क से या जिनकी वैसी ही जिन्दगी रही है, इससे या दूसरे कारणो से बुराइयों मे पड़े हुए हैं, उन्हें सुधारना, ऊँचे रास्ते पर लाना मुश्किल है, पर हम चाहते हैं उनको भी अपने काम के दायरे मे लें और ऐसा आचार्य श्री ने विचार किया है।

अन्त में आपने कहा—"बुराई मत करो, नुकसान मत करो, जिन्दगी को अच्छा रखो"—यह हर कोई कह सकता है, परन्तु केवल

ऐसा कहने का असर नहीं पड़ता। असर केवल उनका पड़ता है जो जैसा कहते हैं वैसा करते भी हैं। इसलिये हमारे आचार्यों का धर्म गुरुओं का यह काम है कि वे लोगों में उद्बोधन पैदा करें। साधु-समाज धर्मगुरुओं का समाज जिनके जीवन में कोई दोष नहीं है वे ऐसा कर सकते हैं। हमारा देश धर्म परायण देश है। मामूली आदमी के बजाय धर्मगुरु या धर्माचार्य को कहते हैं, उसे लोग निष्ठा से सुनते हैं। मुझे विश्वास है आपकी बात लोग सुनेंगे। इसलिये जब मुझे मुझे इस आन्दोलन के बारे में मालूम हुआ मैंने इसका स्वागत किया। मुझे यह जानकर और भी खुशी हुई कि आप इस क्षेत्र को और बढ़ाने के सम्बन्ध में काम कर रहे हैं। जिन धर्मों में कोई बात ऐब हो, उन्हें मिटायें, मैं आशा करता हूँ इसमें आपको सफलता मिलेगी। अच्छे कामों में सबका सहयोग मिलता है और मिलेगा। सहयोग के अभाव से काम आरम्भ नहीं होता। आपका काम फले-फूले आगे बढ़े। मैं यह कामना करता हूँ।

मुनि श्री नगराज जी ने भी इस प्रसंग पर भाषण दिया। कुमारी कामिनी त्रिलकम् ने संस्कृत में भाषण किया। इस प्रकार अति स्वाभाविक वातावरण में आज का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

आयोजन (१) अणुव्रत गोष्ठी

अणुव्रत गोष्ठी की तीसरी बैठक

नैतिक विकास की महान योजना

'अणुव्रत गोष्ठी' का दूसरे दिन का समारोह ६ सितम्बर १९५६ को आचार्य प्रवर के सान्निध्य में हर्ष विभोर वातावरण में आरम्भ हुआ।

बम्बई निवासिनी श्रीमती कमला बहिन जवेरी तथा कुमारी इला

वहिन जवेरी एम० ए० ने मगलगान किया।

आज के अधिवेशन मे मुनि श्री नथमल जी, हिंदी जगत् के सुप्रसिद्ध कवि एव साहित्यकार, ससत्सदस्य श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राष्ट्र के सुप्रसिद्ध समाजवादी विचारक आचार्य जे० बी० कृपलानी, बम्बई की भूतपूर्व मेयर श्रीमती सुलोचना मोदी, 'जीवन साहित्य' के सपादक श्री यशपाल जैन, अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री पारस जैन तथा श्री छगनलाल शास्त्री ने निर्धारित विषय "नैतिक विकास की योजना" पर अपने-अपने विचार प्रकट किये।

नैतिक दीप

श्री नवीन जी ने आचार्य श्री के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा व भक्ति प्रदर्शित करते हुये कहा—"आचार्य प्रवर का व्यक्तित्व अगम्य है। आप एक असाधारण व्यक्ति हैं। निरतर दस दिन के लबे विहार से आप के पैर छिल गये, यह देखकर मैं गद्गद् हो उठा। मन में सहज ही प्रश्न उत्पन्न हुआ कि आखिर आचार्य जी इतना परिश्रम क्यो कर रहे हैं। कुछ सोचा, समाधान मिला कि महान् व्यक्ति अपने लिये नहीं जीते। जन साधारण के हित के लिये उनका जीवन होता है। प्रश्न समाहित हुआ।

कल आचार्य श्री का प्रवचन सुनकर मेरे हृदय मे श्रद्धा का स्रोत वह चला। उनके प्रवचन मे द्रष्टा की वाणी सुनाई दी। जो केवल पढ़ लेता है, वह ऐसा भाषण नहीं कर सकता, अनुभूति से ही ऐसा बोला जा सकता है। साधारण व्यक्ति आँखों देखी बात कहता है। इसीलिये उसकी वाणी का कोई महत्व नहीं रहता। अनुभूत वाणी में वेग होता है, उसका असर भी होता है। अनुभव तपस्या का फल है। आचार्य श्री का जीवन तपस्वी-जीवन है।

जीवन प्रगति का प्रतीक है। स्थिरता से ह्रास होता है। इसीलिये "चरैवेति चरैवेति" का मत्र सामने आया। अणुव्रत प्रगति के साधक हैं।

वे जीवन में विराग लाते हैं पलायन नहीं। व्रत छोटे हैं किन्तु उनमें प्रचण्ड शक्ति है। वे जीवन की छोटी-छोटी बातों को भी छूते हैं। इनको अच्छी तरह समझ लेने से जीवन 'सत्य शिव सुन्दरम्' बन सकता है।

अणुव्रती व्यक्ति सुधार से आगे बढ़ते हैं उनकी गति में वेग होता है। वे रुकते नहीं व्यक्ति से समष्टि की तरफ बढ़ते ही जाते हैं। जहाँ व्यक्ति और समष्टि में सामञ्जस्य नहीं होता, वहाँ मारामारी स्थिति पैदा हो जाती है। आज के युग में आचार्य विनोबा भावे तथा आचार्य श्री तुलसी इसी सामञ्जस्य के प्रतीक हैं। ऐसे नैतिक वीर संसार के तम को हरते रहे हैं और हरते रहेंगे।

भोग बनाम त्याग

मुनि श्री नगराज जी ने अपने भाषण में कहा—"आज हमारे सामने दो पक्ष हैं—एक आकर्षण का और दूसरा विकर्षण का। जितना आकर्षण भोग में है वह त्याग में नहीं—यह संस्कारों का परिणाम है। हिंसा और भोग के आकर्षण को प्रभाव शून्य बनाने के लिये अमिताभ बनना प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिये। धन का ढेर या अधिकारों की आकांक्षाएँ 'अमिताभ' नहीं बना सकतीं। आत्मा 'अमिताभ' है। उसे पाना सहज नहीं। अकिंचनता ही उसे प्राप्त करने का साधन है। अकिंचनता लादी नहीं जा सकती वह स्वयं आती है। व्रतों से जीवन 'अमिताभ' बनता है।

नैतिक उत्थान

श्रीमती सुशीला जोशी ने अपने भाषण में कहा—"आज देश में नाना तरह के आन्दोलनों की चर्चा है। किन्तु कोई भी आन्दोलन दुर्गत मानव के अनैतिक व्यवहारों को नहीं छूता। वे एक पक्ष को लेकर चलते हैं। अणुव्रत आन्दोलन ही एक ऐसा आन्दोलन है
नैतिक है। यह नैतिक उत्थान की बात करता है। कानून

छूता । उसकी गति व्यक्ति के ऊपर की तह तक ही होती है । व्रत हृदय मे घुसते हैं और चिपक जाते हैं ।

बाल्य जीवन सस्कारो को ग्रहण करने वाला जीवन होता है । उसे हम जिस प्रकार चाहें, उसी प्रकार मोड सकते हैं । मै चाहती हूँ आज की यह सभा सरकार से यह अपील करे कि ऐसा प्रवध किया जाए जिससे वच्चो को प्रारभ से ही अणुव्रत शिक्षा मिल सके ।

अणुव्रतो की महिमा

आचार्य जे० बी० कृपलानी ने अपनी विनोदपूर्ण भाषा मे अनूठे ढग से भाषण करते हुए कहा—

व्रत अच्छे हैं, पर मैं इनके लायक नहीं । मेरा जीवन राजनीति में रचा-पचा है । धर्म मे निष्ठा अवश्य है किन्तु उसमे मेरा प्रवेश नहीं है । मुझे राजनीति से सन्यास ले लेना चाहिये किन्तु मैं उसे छोड नहीं सकता । मैं मानता हूँ कि व्रतो के बिना दुनिया चल नहीं सकती । व्रतों को त्यागने से सर्वनाश हो जाता है । मैं व्यक्ति सुधार मे विश्वास नहीं रखता । सामूहिक सुधार को सत्य मान कर चलता हूँ । व्यक्ति सुधार की प्रक्रिया मे वह वेग और उत्साह नहीं रहता, जितना सामूहिक सुधार में रहता है । इसके तात्कालिक परिणाम भी लोगो को आकृष्ट कर लेते हैं । अणुव्रत आदोलन इस दिशामे मार्ग सूचक बने, ऐसी मेरी भावना है ।

सजीव कार्यक्रम

श्री यशपाल जैन ने अपने भाषण मे कहा—अणुव्रत आदोलन हमारी निगाह को वाहर से हटा कर अपने भीतर की ओर देखने की प्रेरणा देने का सजीव कार्यक्रम है । वैयक्तिक जीवन मे समाये गहरे दोषो के परिमार्जन की यह एक सफल योजना है ।

अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री पारख जैन ने अपने भाषण में कहा—आज हमारा जीवन दुकानदारी का जीवन ही बना है। सर्वत्र हम स्वार्थ साधने की धुन में लग रहे हैं। दुकानदारी के स्थान पर मेहमान-दारी का स्वार्थ के बदले निःस्वार्थ का जीवन हमारा बने अणुव्रत आन्दोलन हमें यह सिखाता है।

नैतिक प्रगति

श्री कृष्णलाल शास्त्री ने अपने भाषण में कहा—यदि जीवन में नैतिकता नहीं सदाचरण नहीं तो कैसा जीवन। वह केवल कहने भर को जीवन है। उसमें सारवत्ता और ओज नहीं होता। आज व्यक्ति की समाज की और राष्ट्र की कुछ ऐसी ही स्थिति बनती जा रही है। आज सर्वत्र दल और गरज मुखता दिखाई देती है। फलतः व्यक्ति सचाई से गिर रहा है, ईमान से हट भी रहा है, चरित्र निष्ठा से मुंह मोड़ रहा है, केवल भौतिक उपलब्धियों की प्राप्ति और स्वार्थ पूर्ति में लगा चल कर। इसलिये उसका जीवन आज व्यस्त-विन्यस्त है। उसकी व्यवहार चर्या और चरित्र के बीच लम्बी दरारें और गहरी खाइयां पड़ गई हैं जिन्हें पाटना आज अत्यन्त आवश्यक है। जिसके लिये नैतिक विकास और चारित्र्य जागृति का उज्ज्वल वातावरण अपेक्षित है। यह कहते प्रसन्नता होती है कि अणुव्रत आन्दोलन नैतिक विकास की एक सफल योजना है। यदि समाज राष्ट्र और जनजन ने इसे आत्मसात् किया तो यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि उसको एक नये परिष्कार, शुद्धि और शान्ति का वरदान प्राप्त होगा।

नैतिक निर्माण का आंदोलन

अंत में आचार्य प्रवर ने अपने उपसंहारात्मक भाषण में कहा—"अणुव्रतों के प्रति लोगों में निष्ठा बढ़ रही है। आन्दोलन के प्रति भाव उमड़-उमड़ कर आ रहे हैं—यह शुभ सूचना है। आज का जन जीवन

यह महसूस करने लगा है कि भौतिक सिद्धियाँ ही सब कुछ नहीं हैं। इससे परे भी कुछ 'अमिताभ' है, जिसे हमे पाना है। हमे यह नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमो में कितने नेता इकट्ठे होते हैं। हमे यह भी नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमों की क्या-क्या प्रशसायें होती हैं। परन्तु हमे सोचना यह है कि हमारे कार्यक्रमों से लोगों को क्या मिलता है। हमे यह सोचना है कि हम नैतिक उत्थान मे कितने सहायक बन सकते हैं।

मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि अणुव्रत आंदोलन इतना सीधा-सादा होने पर भी लोग इससे दूर रहते है। इसमे अपना हित जानते हुए भी वे नजदीक नहीं आते, यह क्यों ? अणुव्रती बनने में सकोच क्यों ? लोग शायद इसे साम्प्रदायिक समझते हों किन्तु आंदोलन के ७ वर्षों के सार्वजनिक कार्यक्रमों से यह भावना भी ढह चुकी है। अभी कल जब राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी से मिलना हुआ, तब आंदोलन के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था कि आदोलन के प्रति शुरू से मेरी निष्ठा रही है। जब कि लोग इसे जानते भी नहीं थे, तब से मैं इसका प्रशसक रहा हूं। इसका लगाव किसी सम्प्रदाय विशेष से न रहने के कारण ही यह व्यापक बन रहा है, यह खुशी की बात है।

आज राष्ट्र के नेता इसे असाम्प्रदायिक समझने लगे हैं और इसे उचित प्रश्रय भी मिल रहा है। आज का जन-जीवन विषाक्त है—यह मैं जानता हूँ। लोगों की दुर्बलताऐं भी मुझ से छिपी नहीं हैं। लोग कषायों से मुक्त नहीं हैं। वर्तमान स्थिति पर कवि का यह कथन पूरा उतरता है कि—

> "दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो,
> दुष्टेन लोभाख्य महोरगेण ।
> ग्रस्तोभिमानाजगरेण माया—
> जालेन बद्धोऽस्मि कथ भजे त्वाम् ॥"

"क्रोध की अग्नि से मानव का हृदय जल रहा है, लोभ की ज्वालाएँ सारे विवेक को भस्मसात् कर रही हैं। मानरूपी अजगर सारे जीवन को निगल रहा है और माया के पेचीदे जाल में फँसा मानव छटपटा रहा है।

ऐसी अवस्था में व्रतों का पालन सम्भव नहीं होता—ऐसा लोग सोचते हैं। यह नहीं भूल जाना चाहिए कि व्रत ही जीवन के प्राण हैं, उनके बिना जीवन सुखमय नहीं बन सकता और जीने की कला नहीं आ सकती तब तक जीवन मिट्टी के समान बना रहता है। अणुव्रत आत्मक जीवन को कला सिखाता है। बन्धनों से मुक्त करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य है।

व्रतों से व्यक्ति श्रमनिष्ठ बनता है। श्रम से जीवन हलका फुलका होता है। हमारा श्रम में पूर्ण विश्वास है। अभी-अभी मैं अपने इन शिष्यों व साथियों के साथ दो सौ मील की पैदल यात्रा करते हुए यहाँ आया हूँ। मेरे कन्धे थकते थे किन्तु इन साधुओं के कन्धे भारग्रस्त थे—फिर भी वे आनन्द का अनुभव करते थे। विहार के श्रम से वे थकते नहीं थे। वे श्रम को अपनी साधना का एक प्रमुख अंग समझते हैं। इस श्रममय साधना में उन्हें अपने लक्ष्य के दर्शन होते हैं। श्रम इनके जीवन का अविभाज्य अंग है। श्रम ही जीवन है यह हमारा बोध है। परन्तु श्रम सात्विक होना चाहिये तामसिक नहीं।

आज व्रतों के प्रति लोगों में निष्ठा बढ़ रही है यह ठीक है। किन्तु जब तक इनका सक्रिय प्रयोग जीवन में नहीं होगा तब तक बुराई मिटेगी नहीं। केवल व्रतों की पुस्तिका या लेने मात्र से कुछ भी बनने का नहीं है।

यह आन्दोलन विश्व में चल रहे अन्य आन्दोलनों से सर्वथा भिन्न है। यह नैतिक जीवन के प्रति केवल निष्ठा ही पैदा नहीं करता अपितु जीवन को नैतिक बनाने की दिशा में सक्रिय कदम उठाता है। यह जीवन को भारग्रस्त नहीं बनाता, भारमुक्त करता है। एक बार इसके

प्रवेश कर लेने पर व्यक्ति उससे छूटने का विचार नहीं करता। व्रत व्यक्ति मे चिपक जाते हैं। ज्यों-ज्यों श्रद्धा बढती है, त्यों-त्यो जीवन व्रतमय बनता जाता है। भूदान मे व्यक्ति कुछ भूमि का दान कर अपनी जिम्मेवारी से छूट सकता है किन्तु इस आदोलन से वह छूट नहीं सकता। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता है त्यों-त्यो जीवन मे जिम्मेवारियाँ बढ़ती जाती हैं।

मैं मानता हूँ कि व्यक्ति एकाएक व्रती नहीं बन सकता, किन्तु गूगा बेटा बाप को, बाप कहे तो लालन के अनुसार उसके प्रति अपनी भावना अच्छी रखे तो अवसर पर वह भी व्रती बन सकता है। मैं सदा आशावादी रहा हूँ। आज आदोलन के प्रति सद्भावनायें बढ रही हैं तो वह दिन भी दूर नहीं, जब कि समस्त वर्गों मे नीति की प्रतिष्ठा होगी।

व्रती बनने मे सकोच नहीं होना चाहिये। जन साधारण के बीच व्रतों को ग्रहण करना लोग आडम्बर समझते हैं, यह उनकी भूल है। जनसमूह के बीच किये गये सकल्पों से आत्मबल बढ़ता है, जिम्मेवारी आती है—ऐसा मेरा अनुभव है।

अणुव्रत-गोष्ठी आप को नाना प्रकार के विचार दे रही है। विचारो की क्राति आचार को उत्पन्न करती है। अणुव्रतो पर आप विचार करें। उसकी भावना को अपने मित्रो तक पहुँचायें और जीवन को तदनुकूल बनाने का प्रयास करें।

अणुव्रत गोष्ठी की अन्तिम बैठक

अहिंसा और विश्वशान्ति

४ दिसम्बर १९५६ को 'अणुव्रत गोष्ठी' का अन्तिम दिन का कार्यक्रम था। देश विदेश के सम्भ्रान्त सज्जनों के अतिरिक्त विशेषतः विभिन्न देशों के बौद्ध भिक्षु उपस्थित थे। पिछले दो दिनों से उपस्थिति अधिक थी। सामने की पंक्ति में चीवरधारी बौद्ध भिक्षु थे और उनके पीछे की पंक्तियों में राज्यकर्मचारी विशिष्ट अधिकारी व दूर दूर से आये सज्जन बैठे थे।

प्रारम्भ में बम्बई निवासी श्री रसिककुमार जवेरी ने अणुव्रत प्रार्थना का गान किया। आज के लिये निर्धारित विषय था—"अहिंसा और विश्वशान्ति"—जिस पर मुनि श्री बुद्धमल जी राष्ट्र के सुप्रसिद्ध विचारक—काका कालेलकर, अखिल भारतीय कांग्रेस के महामन्त्री श्री श्रीमन्नारायण, दिल्ली राज्य विधान सभा की भूतपूर्व अध्यक्षा डा॰ सुशीला नय्यर, हिन्दी जगत् में सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्र कुमार, डा॰ एम॰ कृष्ण मूर्ति, संसत्सदस्या श्रीमती सुचेता कृपलानी श्रीमती सावित्री देवी निगम तथा दिल्ली के जन सेवी श्री गोपीनाथ 'अमन' ने अपने विचार प्रकट किये।

काका कालेलकर ने कहा—"श्रमण और भिक्षु शान्ति-सेना के सैनिक हैं। नैतिक प्रसार और प्रचार के लिये उन्होंने जीवन को अपनाया है—यह उचित है। अणुव्रत-आन्दोलन में नैतिक विचार क्रान्ति के साथ साथ बौद्धिक अहिंसा पर भी बल दिया गया है—यह इसकी अपनी विशेषता है।

जीवन का आदोलन

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामत्री श्री श्रीमन्नारायण ने कहा —

प्रारभ से ही मैं इस गोष्ठी मे शामिल होने की भावना रखता था, किन्तु कार्यवश आ नहीं सका। अणुव्रत आंदोलन की जबसे मुझे जानकारी हुई है, तभी से मैं इसका प्रशसक रहा हूँ। इसके सबध में मेरा आकर्षण इसलिये हुआ कि यह आदोलन जीवन की छोटी छोटी बातों पर भी विशेष ध्यान देता है। बडी बातें करने वाले बहुत हैं, किन्तु छोटी बातों को महत्त्व देने वाले कम होते हैं।

यह आदोलन क्रमिक विकास को महत्त्व देता है—यह इसकी विशेषता है। एक साथ लक्ष्य पर नहीं पहुँचा जा सकता, एक एक कदम आगे बढ़ा जा सकता है। अभी कुछ दिन हुए मैं अणुव्रत आदोलन के सप्तम अधिवेशन में भाग लेने सरदार शहर गया था। मैंने देखा हजारो लोग नैतिक व्रतों को अपनाने के लिये तैयार होते हैं और अपना जीवन शुद्ध करते हैं। उन पर व्रत थोपे नहीं जाते, वे स्वय अपनी आत्म-प्रेरणा से व्रत ग्रहण करते हैं। उनमे जीवन शुद्धि की तडप मैंने देखी।

अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे आज पचशील की चर्चा है। मैं मानता हूँ कि अणुव्रत आदोलन अपने देश में पचशील का आदोलन है। इसका जितना ज्यादा प्रचार होगा, उतना ही देश का हित सम्भव है।

डा० सुशीला नायर ने कहा—प्रत्येक व्यक्ति धर्म की दुहाई देता है किन्तु धर्म का आचरण नहीं करता। मैं चाहती हूँ—धर्म के नाम की जगह धर्म का काम हो। कानून से सर्वोदय नहीं हो सकता। व्रतों से ऐसा ही सभव है। कानून से धन छीना जा सकता है प्राइवेट एटरप्राइज, के बदले स्टेट एटरप्राइज शुरू किया जा सकता है किन्तु सौहार्द या प्रेम नहीं पाया जा सकता। अणुव्रतों से दोनों साथ साथ सहज मे सध जाते हैं।

अणुव्रत आंदोलन जीवन के मूल्यों को बदलता है। हृदय और बुद्धि

का समन्वय हो, आचार और विचार का समन्वय हो, कथनी और करनी समन्वय हो—यही अणुव्रतों का ध्येय है। सेमिनार विचार-विमर्श के लिये किये जाते हैं। इनसे विचारों में क्रांति आती है। विचार जब सक्रिय बनते हैं तब जीवन प्रशस्त बनता है।

अहिंसा को चुनौती

हिन्दी जगत् के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमार ने अपने भाषण में कहा—अहिंसा का इतिहास भी हो सकता है और तत्त्ववाद भी। उसमें मुझे नहीं जाना है। इतिहास और तत्त्ववाद के माध्यम से देखने पर उसमें भटकाव आ जाता है। मैं अहिंसा को सजग रूप में जिसमें शक्ति है—चेतना है देखना चाहूँगा। आज हिंसा की अहिंसा के प्रति एक चुनौती है। जो हिंसा को नहीं मार सकती वह अहिंसा नहीं है। जो हिंसा से समझौता करे, उसे मैं अहिंसा नहीं मान सकता। सिद्धान्त की कसौटी व्यवहार है जो व्यवहार पर खरा सिद्ध नहीं होता वह सिद्धान्त कैसा? मुझे यह कहते प्रसन्नता है कि महाव्रत का मार्ग जगत् से एकदम निरपेक्ष नहीं है अणुव्रत उसका उदाहरण है। जल जीवन में किनारे होते हैं। यदि नदी के किनारे न हों तो उसका पानी रेगिस्तान में सूख जाय। किनारे नदी को बांधने वाले नहीं होने चाहिये वे उसको मर्यादा में रखने वाले होने चाहिये। ऐसे ही ये किनारे जीवन-चैतन्य को विकास देने वाले और दिशा देने वाले हो सकते हैं।

प्रो० एन० कृष्णमूर्ति ने अपने भाषण में कहा—जो जीवन अहिंसा से अभिव्याप्त है वही सच्चा जीवन है। अहिंसा की अभिव्याप्ति जीवन में आत्म चेतना जगाती है। आत्म जागृत व्यक्ति सहजतया से विकारों से परे हो जाता है।

मुनिश्री बुद्धमल जी ने अपने भाषण में कहा—यह विश्व के लिये परम हर्ष का दिन होगा जब यह मानव यह समझ जायेगा कि हिंसा के द्वारा उसे कभी शान्ति मिलने वाली नहीं है। शान्ति तभी होगी जब

यह हिंसा के विरुद्ध कमर कस कर उससे मुकाबला लेने के लिये सन्नद्ध होगा।

विश्वशांति का प्रतीक

ससत्सदस्या श्रीमती सावित्री देवी निगम ने कहा—अर्थबल, सैन्यबल या विज्ञान के बल पर आज भारत ऊंचा नहीं उठा है। उसकी महानता का कारण है संयम की साधना। आचार्य श्री तुलसी ने जो उपक्रम चालू किया है, वह बुनियादी कार्य है, इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। भारत में चलने वाले अन्य आंदोलनों ने बुराई को पकड़ा अवश्य है किन्तु जड़ उनके हाथ नहीं आ सकी। आचार्य श्री ने बुराई की जड़ को पकड़कर एक विशेष काम किया है। यह आंदोलन विश्वशांति का प्रतीक है, ऐसा मैं मानती हूँ और सबसे यह अपील करती हूँ कि वे ज्यादा से ज्यादा इसमें सहयोग देकर अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

जीवन शुद्धि

ससत्सदस्या श्रीमती सुचेता कृपलानी ने कहा—अणुव्रत आंदोलन जीवन शुद्धि का आंदोलन है। जब कार्य और कारण दोनों शुद्ध होते हैं तब परिणाम भी शुद्ध होता है। अणुव्रत आंदोलन के प्रवर्तक का व उनके साथी साधुओं का जीवन शुद्ध है, अणुव्रतों का कार्य क्रम भी पवित्र है, इसलिये इनके कहने का असर पड़ता है।

अणुव्रत आंदोलन के व्रत सार्वजनीन हैं। प्रत्येक वर्ग के लिये इसमें व्रत रखे गये हैं। यह इसकी अपनी विशेषता है। व्रतों की भाषा सरल व स्वाभाविक है। अहिंसा आदि व्रतों का विवेचन सामयिक व युगानुकूल है। अहिंसा की व्याख्या व व्रतों में शब्दों का संकलन मुझे बहुत ही प्रभावोत्पादक लगा। कहा गया है—जीव को मारना या पीड़ा पहुँचाना तो हिंसा है ही, किन्तु मानसिक असहिष्णुता भी हिंसा है। अधिकारों का दुरुपयोग भी हिंसा है। कम पैसों से अधिक श्रम लेना भी हिंसा है,

आदि आदि। इसी प्रकार प्रत्येक व्रत जीवन को छूते हैं। अणुव्रतियों का जीवन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। भूल पर आंदोलन का। बाकी प्रचार है। आचार्य श्री का सत् प्रयास सफल हो—यह मेरी कामना है।

श्री गोपीनाथ 'अमन' ने अपने भाषण में कहा—अणुव्रत आंदोलन व्यक्ति सुधार का आंदोलन है। व्यक्ति जाति और राष्ट्र का मूल है। व्यक्ति से आगे बढ़ता-बढ़ता सुधार जाति और राष्ट्र को भी अपनी परिधि में ले सकता है।

संयम सुख शान्ति का मूल

आचार्य प्रवर ने अपने उपसंहारात्मक भाषण में कहा—

"प्रकाश को प्रकाशित करने के लिये दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। यदि स्वयं में प्रकाश नहीं है तो वह दूसरों को भी प्रकाशित नहीं कर सकता। यही "व्यक्तिवादी सिद्धान्त" का आधार है। इसका फलित यह है—यदि व्यक्ति शुद्ध है तो समाज भी शुद्ध होगा यदि व्यक्ति मलिन है तो समाज भी मलिन होगा।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्" यह सच है। किन्तु सभी मनुष्य करके ही कहें—यह मुश्किल है। जो करता है उसे ही कहने का अधिकार है, यह एकान्ततया ठीक नहीं। अच्छा उपदेश सबको मान्य होना चाहिये। हम वीतराग नहीं, फिर भी उपदेश करते हैं। सुधर्मा स्वामी भगवान की वाणी के आधार पर बोलते थे। इसी प्रकार हम वीतराग न होने पर भी वीतराग की वाणी के आधार पर बोलते हैं यह अनुचित नहीं कहा जा सकता।

आज आडम्बर का युग है। प्रत्येक कार्य में आडम्बर दीखता है। त्यागी के जीवन में भी आडम्बर दीखता है। इसी भावना को स्पष्ट करते हुये एक कवि ने कितना सुन्दर कहा है :—

वैराग्य रंग परवंचनाय धर्मोपदेशो जनरंजनाय।
वादाय विद्याध्ययनं च मेऽभूत् कियद् ब्रुवे हास्यकरं स्वमीश॥

लोग विरक्त वनते हैं दूसरो को ठगने के लिये, धार्मिक उपदेश जन-रजन का साधन वना हुआ है, ज्ञानार्जन वाद विवाद के लिये किया जाता है, इससे अधिक हास्यास्पद स्थिति और क्या हो सकती है।

जव तक जीवन-व्यवहार मे दम्भ रहेगा, हिंसक वृत्तियां रहेंगी, तव तक शान्ति का समावेश जीवन मे हो सके, यह कम सभव लगता है। शान्ति —अहिंसा और सयम पर आधारित है। शास्त्रों मे कहा है—

हत्य सजए पाय सजए वाय सजय सजई दिए।
अज्झप्परए सुसभाहि अप्पा सुतत्य च विमाणइ जेंस भिक्खु ॥

हाय पैरों का सयम, वाणी का सयम, इद्रियों का सयम करने वाला व्यक्ति और जो अध्यात्म मे लीन रहना है, वही साधु है, महान् है। ऐसे व्यक्ति को ही शान्ति प्राप्त होती है।

सयम और अहिंसा के आदर्श वैयक्तिक जीवन को तो मानते ही हैं, उससे आगे वढ कर वे सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन मे भी शान्ति का स्रोत वहा देते हैं। मेरा विश्वास है कि विश्वशान्ति का इसी प्रकार प्रादुर्भाव होगा, व फलित होगी।

अणुवम वा हाइड्रोजन वम द्वारा शान्ति चाहने वाले भयकर अजगर के मुंह मे हाय डालकर अमृत प्रात करना चाहते हैं। यदि ससार शान्ति और सुख चाहता है तो उसे अणुव्रतों के मार्ग पर आना होगा, अन्यथा वह भटकता ही रहेगा। अन्त में मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि आप तटस्थ रहकर अणुव्रतों पर विचार करें और अपने मे उनको धारण करने का प्रयास करें।

अणुव्रत समिति के मन्त्री श्री जयचन्दलाल जी दफ्तरी ने त्रिदिवसीय कार्यक्रम का सिंहावलोकन करते हुये सवके प्रति आभार प्रदर्शन किया।

आल इडिया रेडियो दिल्ली के डिप्टी डायरेक्टर जनरल श्री० ए० के० सेन तया उनकी पत्नी श्रीमती भारतीदेवी आचार्य श्री के पास आये और नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि हम दोनो का नाम अणुव्रतियों की सूची मे लिख लीजिये। आचार्य प्रवर ने सहर्ष स्वीकार किया।

ग्राम का कार्यक्रम बहुत ही प्रभावोत्पादक रहा। अत्यन्त उल्लास व उत्साह के साथ कार्य को सम्पन्न होते देख स्थानीय व बाहर से आये हुये कर्मठ कार्यकर्ता हर्ष विभोर हो रहे थे। अपने प्रबल परिश्रम के सुन्दर परिणाम से वे प्रफुल्लित हो रहे थे। इस प्रकार अणुव्रत गोष्ठी का त्रिदिवसीय कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ।

प्रतिक्रिया

गोष्ठी की चर्चा प्रत्येक क्षेत्र में फैल गई। लोगों ने यह अनुभव किया कि आचार्य श्री तुलसी आज के युग के महान् व्यक्ति हैं जिन्होंने अपनी साधना के फलस्वरूप अणुव्रत आन्दोलन की देन से मानव जाति को कृतार्थ किया है। प्रत्येक वर्ग ने अणुव्रत आन्दोलन के कार्यक्रम का हृदय से स्वागत किया। दिल्ली के प्रमुख पत्रों ने गोष्ठी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उसके समाचारों को प्रमुखता दी।

समाचार पत्रों में प्रकाशित समाचारों को पढ़ कर अनेक व्यक्ति आन्दोलन में अपना सहयोग देने के लिये तैयार हुये और आचार्य प्रवर से मिले।

रेडियो का प्रोग्राम

४ दिसम्बर १९५६ की रात्रि को लगभग ।। बजे रेडियो प्रोग्राम था। आल इन्डिया रेडियो ने लगभग १५ मिनट तक अणुव्रत गोष्ठी के त्रिदिवसीय कार्यक्रम तथा राष्ट्रपति भवन के कार्यक्रम की संक्षिप्त झांकी प्रसारित की। आँखों देखा हाल इस शीर्षक के अन्तर्गत श्री जयचन्द्र लाल ने प्रायः सभी वक्ताओं के भाषणों का सार दिया।

सप्रू भवन में प्रधान मंत्री श्री नेहरू द्वारा उद्घाटन

१३ दिसम्बर की दुपहर को ३ बजे "राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण मूलक अणुव्रत सप्ताह" का उद्घाटन प्रधान मत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के हाथों से सम्पन्न होने वाला था। आचार्य श्री २-४५ बजे ही सप्रूभवन पधार गये थे और सप्रू भवन का हाल श्रोताओं से खचाखच भर चुका था। भवन के बाहर साधुओ की हस्त निर्मित वस्तुओं की एक प्रदर्शनी सी की गई थी, जिसमे सब वस्तुए व्यवस्थितरूप से रख दी गई थीं। आचार्य श्री वहां ही ठहर गये। थोडी ही देर मे पडित जी भी आ पहुंचे। उन्होंने साधुओ की निर्मित सब वस्तुओ को बड़े ध्यान से देखा, सूक्ष्माक्षर-पत्र को बहुत ही अधिक ध्यान से देखा और कहा कि यह बड़ा अद्भुत और आश्चर्यजनक है। इसमे एक इंच मे देसी कलम से १४०० अक्षर लिखे गए थे। फिर आचार्य श्री और पडित जी साथ-साथ हाल मे पधारे। सीढ़ियां आने पर पंडितजी ने आगे चलने का इशारा करते हुए कहा—आप चलिये। आचार्य श्री स्टेज पर बिछे छोटे से पाट पर बैठ गये। नेहरू जी पास मे बिछी हुई गद्दी के एक कोने पर बैठ गए।

श्रीमती कान्ता बहिन जवेरी तथा कु० इला बहिन जवेरी द्वारा गाये गए मंगल-गान से कार्यक्रम शुरू हुआ। अणुव्रत समिति के मत्री श्री जयचंदलाल दफ्तरी ने स्वागत भाषण किया। श्री मोहनलाल कठोतिया ने प्रधान मत्री को खादी की माला पहनाई।

उद्‌घाटन भाषण

भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने उद्‌घाटन करते हुए कहा—"आचार्य जी ! भाइयो तथा बहनो ! अपने मामूली कर्तव्य को छोड़ कर जो मैं यहाँ आया हूँ। यद्यपि मैं कल भारत से बाहर जाने वाला हूँ फिर भी मुझे यहाँ आना उचित मालूम हुआ। मैंने यह क्यों किया ? कुछ महीने पहले मेरा मुनि नगराज जी से मिलना हुआ था। दो चार दिन हुए आचार्य जी से भी मिलने का अवसर मिला। उन्होंने मुझे अणुव्रत आन्दोलन का हाल बताया। मुझे यह काम उचित लगा इसलिये मैंने यहाँ आना स्वीकार कर लिया। यद्यपि हमारा और आचार्य जी का काम का रास्ता अलग-अलग है पर कभी-कभी अलग-अलग रास्ते भी मिल जाते हैं और वास्तव में ही एक दूसरे की सहायता के बिना संसार का काम चल भी नहीं सकता। संसार में अनेक लोग अनेक प्रकार से अनेक काम करें तब ही सारा काम चल सकता है। पर संसार में इतने कुछ काम होते हुए भी कुछ बुनियादी बातें होती हैं जो सभी देश सभी समाज और सभी व्यक्तियों के लिए आवश्यक हैं। हम इतिहास में देखते हैं कि संसार में अनेक बार उत्थान और पतन आये हैं। पर हमारे बच्चों को इन बातों में हम अधिक को भूल जाते हैं। कुछ लोग अपने समय में भी हुये हैं और उनकी बात आज भी पूजी जाती है। वे लोग स्वयं तो अच्छे मार्ग पर चलते ही हैं पर दूसरों को भी अच्छा रास्ता दिखाते हैं।

कुछ लोग स्वयं को एक पक्ष से तथा देश व समाज को दूसरे पक्ष से मानते हैं। जब गांधी जी राजनीति में आये तब उन्होंने कहा—व्यक्ति और समाज को एक ही पक्ष से मानना चाहिये। यह ठीक ही था। उन्होंने स्वयं अच्छे रास्ते पर चलकर दूसरों को भी उस पर चलाने का प्रयत्न किया। उन्होंने स्वराज्य-आन्दोलन में भी इस बात को लिया और अपने विचार जनता में फैलाये। इससे कुछ सुधार हुआ। उन्होंने

अहिंसात्मक आन्दोलन से देश की ताकत को वढाया और हमारी विजय हुई। वह विजय वदले की भावना पैदा किये विना हुई।

दुनिया के इतिहास मे हम देखते हैं कि जो हारता है वह वदला लेना चाहता है, और ताकतवर वन कर वह वापिस विजयी पर हमला कर देता है। वह हार का फिर वदला लेना चाहता है। इस प्रकार यह लडाई चलती रहती है और शान्ति नहीं होती। आज दुनिया की शक्ति इतनी वढ गई है कि वह खत्म हो सकती है। इससे दुनियाँ की आँखें भी खुल गई हैं। वह देखती है कि अगर कहीं भी शक्ति काम मे आई तो सारा ससार श्मशान हो जायेगा। वास्तव मे ही हथियारों से शान्ति पैदा नहीं की जा सकती।

इसीलिये "यूनेस्को" के विधान मे कहा गया है—लडाई लोगो के दिमागों मे पैदा होती है। गाधीजी ने भी कहा था—तलवार हमारे दिमाग में है, उसे निकालो और काटो। इन वाहर की तलवारों से शान्ति होने वाली नहीं है।

देश क्या है ? वहुत से व्यक्तियो का समूह। जैसे वहाँ के लोग होंगे वैसा ही वह देश होगा, उससे दूसरा नहीं हो सकता। देश मे यदि व्यक्ति ऊँचे होंगे तो देश भी ऊँचा होगा। एक व्यक्ति भी अच्छा होगा तो उसका असर दूसरे पर पडेगा। अत हम ऐसा वायुमडल पैदा करें कि देश के सारे लोग अच्छे हों, देश अपने आप अच्छा हो जायेगा।

आज देश के सामने वडे-वडे काम हैं, उनमे सफलता तभी मिल सकती है, जव देश का चरित्र-वल अच्छा हो, वह कानून से नहीं वन सकता। हाँ, रास्ता जरूर वनता है। अत घूम फिर कर वात वहीं आ जाती है कि देश की जनता का चरित्र कैसा है ? हम वहुत दिनों तक दूसरो को धोखा नहीं दे सकते। किसी को एक दिन धोखा दिया जा सकता है पर हमेशा नहीं दिया जा सकता। अत हमें देश का चरित्र-वल अवश्य ऊँचा वनाना होगा।

इतनी कठिनाइयाँ हमारे सामने हैं तो हम सोचें कि हमे देश को

किस प्रकार का बनाना है। हमें भारत की बुनियाद ऐसी बनानी है, जो गहरी हो और बहे नहीं। विशेषतः हमें अपने नौजवानों को बनाना है क्योंकि हम तो अब बूढ़े हो गये हैं। कल का भारत आज के बालक और नौजवान ही होंगे। अतः हमें उन्हें ऐसे सांचे में ढालना है जिससे वे अच्छे हों। हम लोग ४ वर्ष तक उस ढांचे में रहे जो गांधीजी ने देश के सामने रखा था। उससे अच्छा या बुरा जो कुछ हुआ, हो गया है पर अब प्रश्न यह है कि जो काम हमें करने हैं उन्हें छोटे आदमी नहीं कर सकते। उनमें शक्ति और वीरता होनी चाहिये। अतः मूल में यही बात आ जाती है कि देश का चरित्र उन्नत हो।

यह काम अणुव्रत आन्दोलन से हो रहा है। मैंने सोचा—ऐसे अच्छे काम की जितनी तरक्की हो सकता ही अच्छा है। इसलिये मैं आशा करता हूँ—"अणुव्रत-आन्दोलन" का जो प्रचार हो रहा है उसमें पूरी तरह सफलता मिले।

आचार्य श्री का सन्देश

प्रधान मंत्री जी भाइयो और बहिनो! आज राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण मूलक अणुव्रत सप्ताह का उद्घाटन हुआ। भारत की राजधानी में यह चरित्र-निर्माण मूलक कार्यक्रम चले यह आवश्यक भी है, क्योंकि यहाँ की बात का असर सारे देश पर ही नहीं, सारे विश्व पर पड़ता है। अतः यह अच्छा कार्यक्रम यहाँ से चला, यह अच्छा ही हुआ। आज देश और विश्व की स्थिति के बारे में आप पढ़ते और सुनते हैं ही। अतः उसके बारे में मैं क्या कहूँ उसे सुधारने के लिये प्रत्येक प्रयत्न हो रहे हैं। भारत के प्रधान मंत्री विश्वशान्ति और विश्वमैत्री के लिये पंचशील का प्रचार कर ही रहे हैं और उन पर यह जिम्मेवारी भी है। उससे पहले कि हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में काम करें हमें अपने देश की बातें सोचनी चाहिये। देश में आज प्रत्येक कार्य करने हैं और उनके लिये सुदृढ़ आधार की आवश्यकता है।

लोग कहते हैं—आज अणुयुग है, परमाणु-युग है, पर मुझे लगता है, आज का युग अकर्मण्यता, असहिष्णुता और आलोचना का युग है। हमे इस वारे मे सोचना है। आज विद्यार्थी अध्यापको की आलोचना करते हैं और अध्यापक विद्यार्थियों की। जनता सरकार की आलोचना करती है और सरकार जनता की। पर मैं यह नहीं समझा कि सारे औरों की आलोचना करते हैं मगर अपने को क्यों नहीं देखते? कोई अपना थोडा सा भी अहित नहीं देख सकता। पिछले ही दिनो में प्रान्तीयता की झञ्झा ने देश के बडे-बडे लोगों को कँपा दिया। विद्यार्थी भी इसमे पीछे नहीं रहे। इसका क्या कारण है? क्या अति-राष्ट्रीयता ही तो अति-प्रांतीयता की जनक नहीं है? हमे यह असहिष्णुता मिटानी होगी, व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन को उन्नत बनाना होगा।

इसलिये मैं आप से कहना चाहूँगा—पहले आप अपना जीवन बनायें, फिर देश और उसके वाद विश्वमैत्री की बात सोचें। जब तक ऐसा नहीं होगा, तब तक कुछ नहीं हो सकता।

राष्ट्रों की सकीर्ण मनोवृत्ति को भी मिटाना होगा। एक राष्ट्र के हित को, यदि उससे दूसरे राष्ट्रों का अहित होता हो तो छोड़ना पडेगा। अपना अहित तो कौन करेगा? पर इतना ही हो गया तो मैं समझता हूँ, ससार शान्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सकेगा।

आज जो अनीति भारत मे ही नहीं, सारे ससार मे फैल रही है, उसका उन्मूलन आवश्यक है। सब लोग ऐसा चाहते हैं। अब प्रश्न यह है कि इसका उपाय क्या है? उपदेश इसका एक मार्ग था। हजारों वर्षो से यह चलता आ रहा है, पर आज हमारा काम प्राय दूसरों ने लिया है, जगह जगह नेता लोग ऊँचे स्वर मे उपदेश देते हैं। उनका असर क्यों नहीं पडता? बात स्पष्ट है—जब तक उनका निजी जीवन अच्छा नहीं होगा, तब तक उपदेश काम नहीं कर सकता। उनके जीवन का प्रतिबिम्ब जनता पर पडता है।

आज हम पैदल यात्रा करते हैं, यह बात लोगों को हास्यास्पद

लगती है। वे किसान को हमेशा पैदल चलते थे आज हमें पैदल चलते देखकर आश्चर्य करते हैं। अभी जब हम दिल्ली आ रहे थे तो रास्ते में हमें किसान लोग मिलते और कहते— आप मोटर में क्यों नहीं बैठ जाते? हमेशा श्रम करने वालों को भी पैदल चलना इतना भारी लगता है तो दूसरों की तो बात ही क्या की जाय?

लोग कहते हैं—जो काम मिनटों में हो जाता है उसके लिये आप इतना समय क्यों लगाते हैं? पर मैं कहता हूं जो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय काम करते हैं वे उन साधनों का उपयोग करते हैं पर मैं तो इतना बोझ नहीं लेता। पण्डितजी ने राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय बोझ भी अपने कंधों पर ले लिया है और उसे वे छोड़ भी नहीं सकते। उनका यह क्षेत्र है।

भारत ने हमेशा संसार का आध्यात्मिक नेतृत्व किया है, इसीलिये कहा गया है:—

"एतद् देश प्रसूतस्य, सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः"

नेहरूजी की ओर इशारा करते हुये आचार्य श्री ने कहा—आज विश्व में शान्ति के लिये भारत का नाम सबसे पहले आता है। अतः यह भारत के लिये गौरव की बात है धर्म के लिये गौरव की बात है। हां, तो वे उन साधनों का उपयोग करते हैं। पर मेरा काम तो कोटि कोटि जनता का दुःख दर्द जानना और सुनना है। अभी जब मैं गांवों से होकर आ रहा था लोग मुझ से पूछते थे कि महाराज हमारे पास वोट के लिये अनेक लोग आते हैं। हमें पता नहीं किसको वोट दें और किसको न दें। आप हमें बता दीजिये हम किसको वोट दें। मैंने कहा—मैं नहीं कहता कि तुम उसको वोट दो और उसको मत दो। पर एक बात जरूर कहूंगा कि वोट की बिक्री तो मत करो अर्थात् लोभ के बदले में वोट मत दो। यह आवश्यक है कि आज देश में ऐसा आन्दोलन चलाया जाये—मैंने इस आवश्यकता को अनुभव किया और इसी का

परिणाम है कि मैंने अणुव्रत-आन्दोलन का सूत्रपात किया। लोग कहेंगे--क्या आपने अणुव्रत चलाया ? नहीं।

पंडितजी से मैंने कहा—आपने पचशील चलाये। पडितजी ने कहा-नहीं, यह तो चलते आ रहे हैं। मैंने क्या चलाया। (क्यो पंडितजी आपने ऐसा कहा था न ? पंडितजी ने मुस्कराते हुये स्वीकार किया।) उसी प्रकार मैंने तो छोटे छोटे व्रतो का सगठन कर सारी जनता के सामने रख भर दिया है।

यह भी ध्यान रखा है कि इसमे धर्म, जाति, लिंग और रग का कोई भेद न रहे। आज जगह जगह पार्टीवाजी चल रही है। हमने सोचा—एक प्लेटफार्म ऐसा हो, जिस पर सब इकट्ठे हो सकें।

जर्मन दूतालय के लोगो से मैंने पूछा—क्या आपको यह जैनों का आन्दोलन लगा ? क्या इसमे कोई साम्प्रदायिकता है ? उन्होंने कहा—नहीं, यह तो हमारी बाइबिल के अनुकूल है। मुझे इससे खुशी हुई और इसीलिये जनता ने, नेताओं ने, साहित्यकारों ने, कवियो ने सभी ने इसमे सहयोग दिया।

मैं अपनी योजना को अंतिम नहीं मानता। कोई भी अच्छी बात, वह चाहे जनता से मिले या नेहरूजी से मिले, मैं उसका स्वागत करूंगा। मेरा काम और भावना तो यही है कि जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठे। और इसी के लिये मेरा प्रयास है।

देश की आज सबसे बडी आवश्यकता यह है कि हममे से प्रत्येक अपनी जिम्मेवारी को समझे। भारतीयों ने उसे अभी तक नहीं समझा। विदेशी लोग इसका बडा खयाल रखते हैं। अधिकतर भारतीयो को अभी तक चलने, उठने, बैठने और थूकने का भी ज्ञान नहीं।

महाव्रत की बात बहुत दूर है। हम अणुव्रतों की बात करते हैं। हम दार्शनिक चर्चायें—आत्मा और परमात्मा की बातें फिर कभी करेंगे। आज तो नैतिकता के छोटे छोटे नियमों की बातें करनी चाहिये। अगर इतना भी हो गया तो भी बहुत है।

बुद्ध ने अति-त्याग और अति-भोग के बीच मध्यम मार्ग का उपदेश दिया। अति-त्याग साधारण जनता के लिये असाध्य है और अति-भोग तो सर्वनाशक है ही। अतः हमने भी साधारण जनता के लिये छोटे छोटे व्रतों को लिया और मध्यम मार्ग को अपना कर इस काम का सूत्रपात किया।

नैतिक प्रतिष्ठापन के लिये सबसे बड़ी आवश्यकता है—छोटे छोटे बच्चों को सुधारने की। बचपन से ही अच्छे संस्कार डालना सहज है। बड़े होने पर समझाना बड़ा मुश्किल है। अतः शिक्षण संस्थाओं में प्रारम्भ से ही बच्चों को अणुव्रतों की शिक्षा मिलती रहे, ऐसा सोचा जाना चाहिये। इसमें राष्ट्र के नेताओं, विचारकों, कार्यकर्ताओं के सहयोग की अपेक्षा है।

इस अवसर पर मुनि श्री नगराजजी तथा अ० भा० कांग्रेस के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण के भी भाषण हुये।

मुनि श्री नगराज जी ने आन्दोलन पर बोलते हुये कहा—"अणुव्रत आन्दोलन को चलते सात वर्ष हुए हैं। इस बीच आचार्य प्रवर तथा उनके आज्ञानुवर्ती साधु-साध्वियों के सतत प्रयास से लाखों व्यक्ति इसमें सम्मिलित हुए हैं करोड़ों तक यह भावना पहुँची है। यह भारतीय संस्कृति के सत्य एवं अध्यात्म मूलक आधारों पर प्रतिष्ठित है। नैतिक और आध्यात्मिक आधार के बिना देश में चलती हर प्रकार की प्रगति फीकी है।

कांग्रेस के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण ने कहा— "मुझे इस आन्दोलन के प्रति बहुत पहले से आकर्षण हुआ। आज के जमाने में बड़ी बड़ी बातें करने वाले बहुत हैं पर काम बहुत कम। जब मैंने अणुव्रत आन्दोलन का नाम सुना तो काम—छोटी बातें करने वाले भी तैयार हैं। विद्यार्थियों में व्यापारियों में वकीलों में डाक्टरों में विभिन्न वर्ग के लोगों में इस आन्दोलन द्वारा जीवन सुधार का काम किया गया। जिनकी जैसी शक्ति थी उन्होंने वैसे व्रत लिये। मुझे यह बहुत अच्छा लगा। हमारे देश में अनेकों धार्मिक आन्दोलन चल रहे हैं पर जब तक चरित्र-निर्माण न हो,

तब तक आर्थिक आयोजनों से विशेष लाभ नहीं हो सकता। इसलिये मैं पचवर्षीय योजना की दृष्टि से भी इस आंदोलन को महत्त्व देता हूँ। आर्थिक विकास के साथ साथ यदि चरित्र सबधी गुणो का भी विकास हो तो सोने मे सुगध हो जाय।"

कुमारी यामिनी तिलकम् ने सस्कृत मे मगलाचरण किया तथा श्री गोपीनाथ अमन ने आभार प्रदर्शन किया। सभा सानद सपन्न हुई।

आयोजन (८) अणुव्रत म'नाग

दूसरा दिन

विद्यार्थी जीवन का निर्माण

१४ दिसम्बर १९५६ की प्रात ९ बजे मॉडर्न हाईस्कूल मे प्रवचन का कार्यक्रम था। आचार्य श्री ठीक समय पर वहाँ पधारे, विद्यार्थियों के सामूहिक गान से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। स्कूल के प्रिन्सीपल श्री एम० एन० कपूर के स्वागत भाषण के बाद (कांग्रेस के महामन्त्री श्री श्रीमन्नारायण की धर्मपत्नी) श्री मदालसा देवी ने आचार्य प्रवर व अणुव्रत-आन्दोलन की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुये अणुव्रत-सप्ताह की उपयोगिता पर प्रकाश डाला।

आचार्य श्री ने अपने प्रवचन मे कहा—मुझे प्रसन्नता है कि मैं आज विद्यार्थियों के बीच बोल रहा हूँ, विद्यार्थियों मे बोलना मेरी रुचि का विषय है। उनमे बोलना मैं पसन्द करता हूँ।

मैं जो कुछ बोलता हूँ, उसके दो आधार हैं—मेरा अपना अनुभव और आर्षवाणी आधार हीन बोलने मे कोई तथ्य नहीं होता, हृदय

नहीं होता, वेदना व तड़प नहीं होती। केवल ज्ञान मात्र रह जाता है। मुझे आज विद्यार्थी जीवन पर प्रकाश डालना है।

जैन सूत्रों में एक प्रकरण है—गौतम अपने गुरु से पूछता है—भगवन् शिक्षा कौन-कौन प्राप्त कर सकता है अथवा विद्यार्थी के क्या लक्षण हैं। त्रिकालदर्शी भगवान् ने कहा—

"वसे गुरुकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं।
पिय करे पिय वाई, से सिक्खं लद्धु मरिहई ॥"

जिसमें ये पांच लक्षण पाये जाते हैं वह विद्यार्थी है।

पुराने जमाने में यह परम्परा रही है कि विद्यार्थी गुरुकुलों में ही विद्याध्ययन करते थे। अपने माता-पिता से कोसों दूर रह कर निर्जन स्थान में जीवन की बातें सीखते थे। वहाँ केवल किताबी ज्ञान ही नहीं, जैसे खाना, सोना, पढ़ना, बैठना आदि आदि कार्यों का भी ज्ञान कराया जाता था। गुरुकुल के अधिष्ठाता उनका पालन व संवर्धन करते थे। गुरुजनों के सात्विक व सदाचारी होने का बालकों पर पूरा असर पड़ता था। दिन और रात उनके सहवास से उनका जीवन मंजता रहता था। किन्तु आज की स्थिति और है। आज का विद्यार्थी मुश्किल से ४-५ घंटे अध्यापकों के सम्पर्क में रह पाता है। शेष समय घर वालों के बीच बीतता है इसीलिये अध्यापकों के कथन व रहन-सहन का इतना असर नहीं होता, जितना घर वालों का होता है। पारिवारिक विचारों का शिकार भी उसे होना पड़ता है। यही कारण है कि आज का स्नातक जीवन के सही मूल्यों के आंकने में सक्षम नहीं होता। आज भी ऐसा सोचा जा रहा है कि यदि गुरुकुल की परम्परा का अनुसरण किया जाये तो सम्भव है विद्याध्ययन के क्षेत्र में कुछ परिवर्तन आ सके।

विद्यार्थी-जीवन साधना का जीवन है। मोक्ष-साधना उसका लक्ष्य होना चाहिये। इस ओर जैसे पक्षी की आंख ऐसा चिन्तन होना चाहिए। आप सोचेंगे कि कहाँ तो विद्यार्थी जीवन और कहाँ योगी की योग

साधना ? यह प्रश्न हो सकता है। किन्तु आपको यह जान लेना चहिए कि योग के विना एकाग्रता नहीं आती और एकाग्रता के अभाव मे विद्या का समुचित ग्रहण नहीं होता। वही विद्यार्थी अपने जीवन मे सफल हो सकता है, जो कि अपने अध्ययन, चिन्तन और मनन में एकाग्र रहता है। एकाग्रता से ग्रहण की हुई वातें नहीं भूलतीं। उनके सस्कार अमिट होते हैं।

आज विद्यार्थियो का जीवन एक रस नहीं है। वह कई भागों में विभक्त हो चुका है। राजनीति, समाज सुधार, अर्थनीति आदि आदि पचड़ों मे पडकर अपना अध्ययन भी वे पूरा नहीं कर पाते। न अध्ययन ही होता है और न राजनीति मे ही पूरा प्रवेश कर पाते हैं। आज का विद्यार्थी देश व विदेश की राजनीति के वारे मे सोचता है। उसे समझने का प्रयास भी करता है। किन्तु यह भूल जाता है कि उसका अध्ययन किस ओर जा रहा है। एक उदाहरण है —एक गांव में कई वृद्ध महिलाएं एक स्थान पर वैठी थीं। आपस में चर्चा चल पडी। उनका मुख्य विषय था—राजनीति। अपने-अपने मनोगत भावों को कह कर वे अपने आप मे सन्तोष का अनुभव करती थीं। गर्मागर्म वहस होने लगी। एक राहगीर उस ओर से गुजरा। विषय को भांपने मे उसे देर न लगी। व्यग कसते हुए उसने कहा—

ऍटयो पूणी राम, इतरो मतलव आपरो
की डोकरियां काम, राजनीति स्युं राजिया।

इसी प्रकार विद्यार्थियों को भी राजनीति से दूर रहना चाहिए।

विद्यार्थी का जीवन तपस्यामय हो, तपस्या का अर्थ भूखे रहना ही नहीं। मन, वचन और काया को सयत रखना भी तपस्या है। स्वाध्याय सत्-सेवा आदि कार्य भी तपस्या है।

अपनी छोटी से छोटी भी गलती को सहर्ष स्वीकार करना विद्यार्थी जीवन का वडा गुण है। गलती करना इतनी भूल नहीं, जितनी वडी भूल कि गलती को गलती न समझना तथा समझ लेने पर भी उसे

नहीं छोड़ना है। विद्यार्थी इससे बचें। इसी को पुष्ट करने के लिए रामायण की एक कथा आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ —

दो भाई विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल गये। बारह वर्ष तक अध्ययन किया। कुल पति की आज्ञा से वापिस घर लौटे। इस अवधि में बहुत से परिवर्तन हो चुके थे। आते आते उन्होंने एक विशाल अट्टालिका के झरोखे में बैठी हुई हास्य वदनि कन्या को देखा। मन में विकार उत्पन्न हुआ विद्यार्थी अवस्था को भूल वे नाना प्रकार के संकल्प विकल्प करने लगे। किन्तु ?

माता पिता के चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने देखा कि वही कन्या यहाँ भी उपस्थित है। मन चंचल हो उठा मन ही मन सोचने लगे—यह कन्या कौन है ? क्या इसे हम पा सकते हैं। साहस कर माँ से पूछा—*माँ यह कौन है ?* माँ ने कहा—बेटा यह तुम्हारी बहिन है। जब तुम पढ़ने के लिए गुरुकुल में गये थे तब इसका जन्म हुआ था। आज यह पूरे १२ वर्ष की हो गई है। यह कह कर माँ ने पुत्री की ओर संकेत करते हुए कहा—बेटी ये दोनों तेरे भाई हैं इन्हें प्रणाम कर। वह भाइयों के पैरों में पड़ गई। यह देख दोनों दंग रह गये।

अपनी मलिन भावनाओं को याद कर उन्होंने मन ही मन अपने आपको धिक्कारा। लज्जित हो, आँखें भूमि में गड़ाये हुये कुछ क्षण स्तब्ध से खड़े रहे। अपने किये का प्रायश्चित करने को उत्सुक हो उठे। उन्होंने यह निश्चय किया कि इस पाप के प्रायश्चित स्वरूप वे जीवनपर्यन्त ब्रह्मचारी रहेंगे। इस कठोर व्रत के संकल्पमात्र से उनमें स्फूर्ति व उत्साह उमड़ पड़ा। आगे क्या हुआ ? इससे हमें नहीं वास्ता है, इस उदाहरण से विद्यार्थी कुछ सीखें और इस शृंखला को अक्षुण्ण रखने में प्रयत्नशील रहें।

"विद्या ददाति विनयम्"—विद्या से विनय आती है। जो विद्या विनय नहीं देती वह अविद्या है। उसका विकास नहीं ह्रास होता है। विद्यार्थी को यह कभी नहीं समझना चाहिये कि उसमें समस्त ही ज्ञान

कुछ है। बड़े बूढ़ों की बातो पर ध्यान देना भी उसका परम कर्तव्य होना चाहिये।

मैं आज से ५ वर्ष पूर्व पंडित नेहरू से मिला था। कल फिर उनसे मिलने का मौका मिला। मैंने उनमे बहुत अन्तर पाया। मुझे ऐसा लगा कि वे प्रतिवर्ष नम्र बनते जा रहे हैं। उनमे भारतीय परम्परा व सभ्यता के प्रति कितना सम्मान है। कहाँ कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह वे केवल जानते ही नहीं, बल्कि तदनुकूल आचरण भी करते हैं। धर्माचार्य के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह आप उनसे सीखें। उनकी कोठी पर मैं गया था। वहाँ भी उन्होंने लगभग ४८ मिनट तक धार्मिक विषयों के विचार-विनिमय में कितना रस लिया, यह मैं जानता हूँ।

आपको भी चाहिए कि आप नम्र रहना सीखें। नम्रता के अभाव मे आचार और विचार मे सामन्जस्य नहीं रहता, शिष्यत्व की भावना नहीं होती, वहाँ वात्सल्य नहीं आता या यों कह दें, वात्सल्य के बिना नम्रता नहीं आती।

विद्यार्थी अपने आपको पवित्र रखें। "जीवन को शुद्ध बनायें"—यह मैं विद्यार्थियो के लिए नहीं कहूँगा। क्योंकि विद्यार्थी-जीवन बाल्य-जीवन है। वह प्राय पवित्र होता है। मैं उनको कहूँगा कि वे अपना जीवन अशुद्ध न बनाएँ।

तीसरा दिन

शान्ति का मार्ग

१५ सितम्बर १९५६ को मध्याह्न में भारत निर्वासित मन्त्रालय के अन्तर्गत आचार्य श्री का आगमन अधिकारियों के बीच सेन्ट्रल रेवेन्यू कि स्थान में प्रवचन था। करीब १ बजे आचार्य श्री वहाँ पधारे। आस-कर आयुक्त श्री एन. सी. चौधरी ने आचार्य श्री के स्वागत में भाषण दिया। आचार्यश्री ने उपस्थित अधिकारियों एवं कर्मचारियों को सम्बोधित करते हुए कहा—"आज आपके इस नये भवन में हम आपको और आप हम को कुछ विचित्र से लगते हैं। आज हमारा संगम भी तो नया है और जब तक परिचय नहीं हो जाता तब तक आश्चर्य होना स्वाभाविक भी है। एक बच्चा जब इस संसार में आता है तब पहले पहल उसे भी संसार कुछ विचित्र सा लगता है। धीरे-धीरे उसका परिचय संसार के साथ होने लगता है वह अपने वातावरण में रम-सा जाता है। अतः उचित है, पहले मैं आपको अपना परिचय दे दूँ। हम भी आपकी तरह भिन्न-भिन्न प्रान्तों में रहने वाले थे। क्योंकि साधु कोई जन्म से तो होता नहीं जिसे अपने अनुभव से संसार से विरक्ति हो जाती है वही साधु होता है।

हम लोग शरणार्थी भी हैं, क्योंकि हमारी कहीं पर भी कुछ घर बार नहीं है। पर हम सामान्य शरणार्थियों से भिन्न हैं। दिल्ली में एक बार बहुत से शरणार्थी मेरे पास आये और मुझे अपना दुःख सुनाने लगे। मैंने उनसे कहा—भाइयो आप और हम तो एक से हैं, क्योंकि हम दोनों ही शरणार्थी हैं। पर हम में और आप में एक बहुत बड़ा

अन्तर है। वह यह है कि आपकी जमीन जायदाव छुडायी गई है और हमने अपनी धन सम्पत्ति जानबूझकर छोडदी है। यही कारण है कि आपको तो दु:ख होता है और हमे प्रसन्नता।

हम लोग जैन हैं। "जिन" का मतलब है—विजेता। विजेता यानी जो अपने पर अनुशासन करे। जिसने अपने पर अनुशासन नहीं कर लिया है, उसे वास्तव मे दूसरो पर अनुशासन करने का अधिकार ही क्या है ? अपने स्वार्थ से दूसरो पर अनुशासन करने वाला कायर है। पर "जिन" विजेता अपने पर ही अनुशासन करते हैं, उनका ही धर्म जैनधर्म है।

आप कहेंगे कि—हम यहाँ क्यों आए ? हम यहाँ अपनी साधना के लिए आए हैं। हमारा सारा काम चलना, फिरना, खाना, पीना और प्रवचन करना साधना के लिए ही होत है। यहाँ जो प्रवचन करने आये हैं, यह आप पर कोई अहसान नहीं हैं। यह तो हमारी साधना ही है। आपसे भी हम कहना चाहते हैं, आप भी जो कुछ करें, साधना की ही भावना से करें।

आज की आवश्यकता

आज देश ने सबसे अधिक जो खोया है वह है ईमान और मानवता। ऊपर से तो सारे लोग बहुत अच्छे लगते हैं, पर अन्दर से केवल अस्थि-पजर मात्र रह गया है। सब दूसरो की आलोचना करने को तत्पर हैं, पर अपने आप को कोई नहीं देखता। व्यापारी लोग आपको कोसते हैं। वे सोचते हैं, हम तो इतनी मेहनत से पैसा कमाते हैं और आप लोग (इन्कम टैक्स आफिसर) आकर उसे साफ कर देते हैं। सचमुच आप लोग उन्हें यमदूत लगते हैं (श्रोताओं में हसी) पर वे स्वय यह नहीं सोचते कि वे कितने गरीबों के गले पर छुरी फेरते हैं। अभी मेरे सामने व्यापारी (बनिये) लोग नहीं हैं। पर जब वे मेरे सामने होते हैं, तो मैं उनकी भी अच्छी तरह से खबर लेता हूँ। मुझे दु:ख है कि आज

बनिये बदनाम हैं और उनके साथ साथ कभी-कभी हमें भी लोग कुछ बदनाम कर देते हैं क्योंकि लोग हमें भी बनियों के गुरु कहते हैं। हमारे अनुयायी सारे बनिये ही हैं ऐसा नहीं है।

बहुत से व्यापारी ऐसे भी हैं, जिन्हें पापका बिल्कुल भय नहीं है। उनका व्यापार बिल्कुल साफ है। अणुव्रत मनुष्य को अभय बनाता है। भय से भय बढ़ता है। अणुबम ने मनुष्य को भयभीत बना दिया तो विश्व के लोग हाईड्रोजन बम बनाकर अभय बनना चाहते हैं। पर अभय का रास्ता यह नहीं है। अणुव्रत अभय बनने का मार्ग है।

अणुव्रत आपको सन्यासी नहीं बनाता है। वह कहता है—जहाँ भी आप रहते हैं वहीं रहकर भी अपने पर नियंत्रण करें। अगर आपने यह कर लिया तो आपके घर और कार्यालय सब सुधर जायेंगे।

पहला अणुव्रत अहिंसा है। किसी को मार देना मात्र ही हिंसा नहीं है पर बुरा चिन्तन भी हिंसा है। अस्पृश्य मान कर करोड़ों का तिरस्कार करना हिंसा नहीं तो और क्या है? इस तिरस्कार की फिर प्रतिक्रिया भी होती है। आज जो सामूहिक रूप से धर्म परिवर्तन किया जा रहा है यह क्या है? क्या उन्होंने श्रद्धा से ऐसा किया है? श्रद्धा से व्यक्ति समझ सकता है पर इतने बड़े पैमाने पर धर्म-परिवर्तन निश्चय ही अपमान का प्रतिकार है। हिन्दू लोगों ने शूद्रों के साथ असद् व्यवहार किया उसका फल है कि आज वे लाखों की संख्या में बौद्ध बनते जा रहे हैं। जाति के आधार पर किसी को नीचा और अस्पृश्य मानना हिंसा है और व्यवहार विरुद्ध भी है। अगर इसी प्रकार कोई अस्पृश्य होता तो महावीर तो कभी भी अस्पृश्य-अस्पर्शित हो जाते।

भगवान् महावीर ने कहा— "कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा" अर्थात् कर्म से ब्राह्मण होता है और कर्म से ही क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी कर्म से ही होता है।

जीवन के मूल्य बदलो

आज बडा यह माना जाता है, जिसके पास पैसे हों, भवन हों, मोटर हों और जिसकी आवाज सब सुनते हों। पर जीवन के इस मूल्य मे परिवर्तन करना होगा। हमे पैसे को मनुष्य से बडा नहीं मानना है। बडा वह है—जो त्यागी है, सयमी है। यदि पैसे से ही मनुष्य बडा हो जाता तो हम अकिंचन भिक्षुओं की क्या गति होती, जिनके पास एक पैसा भी नहीं है। भारतीय सस्कृति मे सदा त्यागियों की पूजा होती आयी है। बडे बडे सम्राटों के सिर भी उन अकिंचन भिक्षुओं के सामने झुक जाते थे। अत आज भी हमे यह स्वीकार करना पडेगा कि बडा वह है, जो त्यागी है।

दूसरा व्रत है—सत्य। केवल सत्य बोलना मात्र ही सत्य नहीं है। सत्य का अर्थ है—जैसा सोचे, वैसा बोले। यदि ऐसा नहीं, तो मनुष्य ऊँचा नहीं बन सकता।

इसी प्रकार तीसरे व्रत अचौर्य का मतलब भी केवल चोरी नहीं करना ही नहीं है। अपने कामधन्धे मे ईमानदारी नहीं बरतना भी चोरी है। अपनी जिम्मेवारी के काम से दिल चुराना भी चोरी है।

चौथा व्रत है—ब्रह्मचर्य। आज के जीवन मे इसकी बडी कमी है। इसीलिये आज बचपन से यौवन आता ही नहीं, सीधा बुढ़ापा आ जाता है।

पाँचवाँ व्रत है—अपरिग्रह। इसका मतलब यह नहीं कि आप सन्यासी बन जायें। पर अपनी नि:सीम लालसाओं की सीमा तो करें।

आप आफिसर हैं। किसी व्यापारी पर अभियोग लगाया कि अपना घर भर लिया। उधर व्यापारी-गण अपनी रक्षा करते हैं—रिश्वत देकर। सरकार की आपको क्या चिन्ता? आप सोचते हैं—"पहले पेट पूजा पीछे काम दूजा।" पर अब ऐसे काम चलने वाला नहीं है। अब आप स्वतन्त्र हो गये। राष्ट्र की सारी जिम्मेवारी आपके कन्धों पर है। अब

आप दूसरों पर दोष नहीं मढ़ सकते। मन अपने आपको बनाना होगा।

सबसे पहली और महत्व की बात यह है कि आप रिश्वत न लें। मैं आपकी कठिनाइयों को जानता हूँ। यह कठिनाई केवल आपकी ही नहीं है प्रत्येक व्यक्ति के सामने अपनी-अपनी कठिनाइयाँ रहती हैं। बिना उनके सहे आप सुखी नहीं हो सकेंगे। जिस व्यक्ति ने इस तथ्य को समझ लिया है वह निश्चय ही एक वास्तविक शान्ति का अनुभव करेगा।

दूसरी बात आप दुर्व्यसनों से बचें। बीड़ी सिगरेट तो आज सभ्यता की चीज बन गई है। बहुत से लोगों से मैं पूछता हूँ—भाई तुम बीड़ी पीते हो। वे कहते हैं—हाँ महाराज। वैसे तो हम बीड़ी नहीं पीते पर कभी कभी जब दोस्तों के साथ बैठ जाते हैं तो सभ्यता के नाते पीनी पड़ती है। लानत है ऐसी सभ्यता को। क्या सभ्यता इसे ही कहा जाता है? और चाय तो आज बिछौने में ही चाहिये। बिना उसके तो दूसरे काम में हाथ लगाना ही मुश्किल हो जाता है। यह तो मानो आजकल रामबाण हो गई है। इसी प्रकार और भी बहुत सी नशीली चीजें हैं, जिनसे आप बचने की कोशिश करेंगे तो आपके जीवन में एक अच्छी शान्ति मिलेगी।

सेक्रेटरी श्री हरनाम शंकर के द्वारा किये गये आभार प्रदर्शन के साथ सभा विसर्जित हुई।

चौथा दिन

हरिजन—अनाम महाजन

१६ दिसम्बर १९५६ को दोपहर मे राष्ट्रीय चरित्र निर्माण अणुव्रत सप्ताह के अन्तर्गत हरिजन बस्ती मे वाल्मीकि मंदिर मे हरिजनों के बीच आचार्य श्री का प्रवचन हुआ।

पहले वाल्मीकि सभा के सेक्रेटरी श्री रतनलाल वाल्मीकि ने आचार्य श्री के स्वागत मे भाषण दिया।

आचार्य श्री ने अपना भाषण प्रारंभ करते हुये कहा—आप लोगों मे सुनने की उत्कंठा है, जिसका प्रमाण स्वयं आप लोगों की उपस्थिति है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। आप लोगों को समय कम मिलता है क्योंकि आपके जिम्मे सफाई का बहुत बड़ा काम है। दूसरे लोग जहाँ गन्दगी करते हैं, वहाँ आप लोग सफाई करते हैं। यह बड़े महत्त्व की बात है। इसे ऊँचे अर्थ मे लें तो गन्दगी मनुष्य के भीतर है, आत्मा में है। क्या कोई ऐसा भी हरिजन है जो उस गन्दगी को दूर कर सके। वही वास्तव में सच्चा हरिजन है।

हरिजन का अर्थ

गांधीजी ने आपका नाम हरिजन दिया। पर वास्तव मे इसका अर्थ क्या है, यह आपको समझना है। जैसा कि वैष्णव जन की परिभाषा मे गांधीजी एक भजन गाते थे—"वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर पराई जाने रे।" उसी प्रकार वास्तव में हरिजन वह है जो अपने आपको स्वच्छ रखकर दूसरों को भी स्वच्छ रखने का प्रयास करता रहे। ऐसे

हरिजन थोड़े ही मिलेंगे पर उनकी अत्यधिक आवश्यकता है।

आज नई दिल्ली के वाल्मीकि मंदिर में आप लोगों के बीच मैं पहली बार ही आया हूँ। वैसे मैं बहुत स्थानों पर हरिजनों के बीच जाता रहा हूँ। यहाँ भेंट में लेता ही लेता नहीं हूँ देता भी हूँ। देता तो मैं उपदेश हूँ और लेता उनसे भेंट हूँ। पर मैं रुपयों और फल फूलों की भेंट नहीं लेता। मुझे त्याग की भेंट चाहिये। आज ही लोक सभा के अध्यक्ष अय्यंगार आये तो उन्होंने मुझे फल भेंट करने चाहे। मैंने कहा—मुझे भक्ति और त्याग की भेंट चाहिये।

आपको लोग हरिजन कहते हैं पर मेरी दृष्टि में आप सबसे पहले मानव हैं। मनुष्य सबसे पहले मनुष्य है और पीछे वह सज्जन दुर्जन महाजन हरिजन है। मानव मौलिक चीज है दूसरी सब उपाधियाँ हैं।

सोचना यह है कि मानव कौन है? स्पष्ट है—जिसमें मानवता है, वह मानव है अन्यथा मानव का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। मानवता यह है कि मनुष्य दूसरों को भी अपने जैसा समझे। पर आज मानवता रह कहाँ गई है। आज तो करोड़ों आदमी अपने भाइयों को भाई नहीं समझते। वे उन्हें नीच और अस्पृश्य मान कर उनका तिरस्कार करने से भी नहीं सकुचाते। ये ऊँची-नीची कौम कब और क्यों हुईं? यह सब इतिहास का विषय है। मुझे उसमें नहीं जाना है। पर कुछ में भिन्न भिन्न जातियाँ कर्म के आधार पर कभी थीं यह निश्चित है। पहले हरिजन जैसा कोई नाम नहीं था। ये सब बाद की चीजें हैं। स्यात् पुराना नाम "महत्तर" था। जब से कर्म का व्यवस्थित विभाजन हुआ तब वह कर्म पर अवलम्बित था। कर्म करने वाले को महान् कहा जाता था। उनमें भी विशेष कर्म करता उसे महत्तर कहा जाता था। अब सफाई का काम करने वालों को महत्तर कहा जाने लगा। पर आज स्थिति दूसरी ही हो गई है। आप लोगों ने भी अपने आपको हीन मान लिया। आप समझते हैं—हम तो नीचे हैं। पर यह नम्रता क्यों? हीन वह है जो दुराचारी है व्यभिचारी है, कमीना है। आज

सफाई का काम करने मात्र से हीन और नीच कैसे हो गये ?

मुझे एक प्रसग याद आता है—एक बार एक चडालिनी चली जा रही थी। उसके हाथ मे खप्पर था, हाथ लहू से सने हुये थे। सिर पर मरा हुआ कुत्ता था और वह मार्ग को पानी से छींटती हुई जा रही थी। उसे देखकर एक ऋषि ने पूछा—

"कर खप्पर शिर श्वान है, लहु जु खरडे हत्य।
छटकत मग चडालिनी, ऋषि पूछत है वत्त।"

उसने तुरन्त उत्तर दिया—

"ऋषि तुम तो भोरे भये, नहिं जानत हो भेव।
कृतघ्नी की चरण रज, छटकत हूँ गुरुदेव।"

गुरुदेव आप इसका रहस्य नहीं जानते। मैं मार्ग पर जो पानी छिटक रही हूँ, इसका कारण है, आगे जो कृतघ्न मनुष्य चला जा रहा है; उसकी चरण रज मेरे पैरों पर न पड जाये। क्योंकि वह अस्पृश्य है।

अत सफाई का काम करने मात्र से कोई अस्पृश्य नहीं हो जाता। वास्तव में अस्पृश्य तो वह है जो कृतघ्नी है। केवल अच्छे कपडे पहन लेने मात्र से ही कोई ऊंचा नहीं हो जाता। दिन भर तो बेईमानी करे और आफिस मे जाकर ऊँचे आसन पर बैठकर अपने आपको ऊँचा मानने वाला वास्तव में ऊँचा नहीं है। अत आप अपने मन से यह भावना निकाल दें कि हम नीच हैं।

दूसरी बात है, आप लोग अपने आपको गरीब क्यों मानते हैं। क्या इसलिये कि आपके पास धन नहीं है ? तो हमे भी देखिये हमारे पास एक पैसा भी नहीं। हम पैदल चलते हैं। अब पूंजी की पूजा करने का जमाना लद चुका है। हाँ, आज सीटों का जमाना अवश्य है। आज वे आदमी बडे माने जाते हैं, जो शासकीय सीट पर हैं। पर यह भी गलत बात है। वे ही आदमी जिन्हें सीट लेनी होती है, पहले कितने लुभावने आश्वासन देते हैं और फिर गरीबों के सामने देखते तक नहीं। अत उन्हें ही बडा मानना कोई आवश्यक नहीं है। बडे वे ही हैं जो त्यागी

हैं। खाने को कहे भी तो मुश्किल से कमाते हैं फिर बड़ा आदमी बनने में तो बड़े त्याग की आवश्यकता है। अगर आपको बड़ा बनना है तो बहु-व्रती बनिये।

आप लोग इतना काम करते हैं, पर फिर भी रहते भूखे के भूखे हैं। इसका कारण क्या है? यही कारण है कि आप कमाते तो एक हाथ से हैं और गंवाते दो हाथों से हैं। इधर कमाया और उधर शराब में पी दिया। मांस मत खाइये। हां रोटी खाये बिना काम नहीं चल सकता। पर मांस भी कोई खाने की चीज है? तम्बाकू भी छोड़ने चाहिये। क्या यह पैसे, स्वास्थ्य और सबसे ज्यादा आत्मा के बरबाद होने का रास्ता नहीं है?

एक बात और—आप अपने वोट की बिक्री न करें। आप वोट किसी को दें इसमें मुझे आपसे कुछ नहीं कहना है। पर अपने आपको दूसरों के हाथ तो मत बेचिये।

कम से कम इतनी बातों को अपने जीवन में स्थान दे दिया तो मैं समझता हूँ कि आपका जीवन सुखी हो जायेगा। बिना आत्म-शुद्धि के कहीं भी शान्ति नहीं मिलने वाली है। चाहे आप कहीं चले जायें किसी धर्म को स्वीकार कर लें।

आपके साथ साथ आपके पास बैठने वाले भाइयों से भी मैं यही कहूंगा कि वे अस्पृश्यता जैसी मानसिक हिंसा का त्याग करें। हां, इस सम्बन्ध में आपसे भी मुझे कहना है। हरिजनों में भी आपस में छुआछूत है, यह अनुचित बात है। जब आप लोग भी इसके शिकार हैं, तब दूसरों को आप समानता की बात क्या कह सकते हैं। आप उसे मिटायेंगे तब ही आप बड़े हो सकेंगे। अपना बड़प्पन अपने हाथ में है। अगर आप किसी को भी छोटा नहीं मानते हैं तो आप स्वयं ही बड़े हो जाते हैं।

प्रवचन के अन्त में पचीसों (प्रायः सभी) हरिजनों ने वोट के लिये

रुपये लेने और शराब पीने का त्याग किया उससे थोड़े लोगों ने धूम्र-पान और उसमे थोड़े लोगों ने मास खाने का त्याग किया।

त्याग लेते समय कुछ बच्चे भी खड़े हो गये थे। उन्हें समझाते हुये आचार्य श्री ने कहा—अभी तुम छोटे हो, फिर बड़े हो पर भी इन्हें निभाना होगा। अत पूरा समझ लेना। कुछ छोटे लड़के, जो त्याग के महत्व को नहीं समझते थे, उन्हें प्रत्याख्यान नहीं करवाया गया।

आयोजन (११) अणुव्रत सप्ताह

पांचवां दिन

पाप का सुधार

१७ दिनवर १९५६ को नई दिल्ली से विहार कर आचार्य श्री नये बाजार पधारे। बीच में "राष्ट्रीय-चरित्र-निर्माण-अणुव्रत सप्ताह" के अन्तर्गत "सैन्ट्रल जेल" मे प्रवचन हुआ। प्रवचन प्रारम्भ करते हुए आचार्य श्री ने लगभग १५०० कैदियों को सम्बोधित करते हुए कहा—"आज के इस सुन्दर अवसर पर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। अपराधियो के बीच काम करने मे मेरी विशेष रुचि रही है। आप लोगो के बीच मेरा आने का पहला ही अवसर है। शायदआप लोगो का भी यह पहला ही अवसर होगा, जब कि एक धर्म गुरु आप के बीच उपदेश कर रहे हैं।

सब से पहले मैं आप से यह पूछना चाहूंगा कि आप आस्तिक हैं या नास्तिक ? नास्तिक वह है जो पुनर्जन्म, धर्म, कर्म मे विश्वास नहीं करता। जो इनमे विश्वास करता है वह आस्तिक है। शायद आप

लोगों में से अधिकतर आस्तिक होंगे। आप को सोचना है—ईश्वर क्या है? ईश्वर वही है, जो सर्वव्यापी है। इसीलिए हम सवेरे-सवेरे उसका स्मरण करते हैं। जब हमने मान लिया कि परमात्मा सारे संसार को देखता है तो उससे छिपकर काम करने वाला क्या नास्तिक नहीं है? अतः सब से पहले आपको यह सोचना है कि आपने क्या अपराध किया था? किसी दूसरे ने आप के अपराधों को देखा या नहीं? पर आप खुद अपने अपराधों को नहीं भूल सकते। इसी कारण आप को जेल की हवा खानी पड़ी है। यद्यपि मैं यह जानता हूँ कि समूचा संसार जेल खाना ही है क्योंकि शरीर भी तो बन्धन ही है। जिस दिन इससे छूटेंगे वह दिन धन्य होगा। पर इतना कह देने मात्र से काम नहीं चलेगा। यह निश्चय की भाषा है। व्यवहार की भाषा में जेल यही है, क्योंकि यहाँ अपराधी रहते हैं। मैं कहूँगा—आप अपना आत्म-निरीक्षण करें। जरा सोचिये—क्या आपने अपराध किया है? शायद आपकी आत्मा हाँ कहेगी। तब आप उसे छिपाइये मत। साफ-साफ कह दीजिये। आप यह देखते होंगे कि पुलिस ने आप को व्यर्थ ही जेल में डाल दिया है। पर आज आप उसे भूल जाइये। दूसरों की भूली गलती को भूल जाइये। अपने आप को देखिये कि अपना क्या अपराध हुआ? पाप के स्वीकार मात्र से आप की आत्मा कुछ हल्की हो जायेगी। पाप का पहला प्रायश्चित्त है—आत्म-ग्लानि। अतः अगर आप अपने पाप को स्वीकार कर लेते हैं, तो एक अंश में उसका प्रायश्चित्त हो जाता है।

रामायण में एक प्रसंग आता है—एक बार सीतेन्द्र अपने स्वर्ग से चल कर रावण आदि अपने पूर्व जन्म के सम्बन्धियों को देखने नरक में गया। वहाँ उसने देखा—सारे नैरयिक यातना में बुरी तरह जलते हैं और दुःख पाते हैं। उसके मन में दया आ गई। उसने चाहा कि वह रावण आदि को विमान में बिठा कर अपने स्वर्ग में ले जाये। पर अपने पाप के कारण वे ऊपर नहीं जा सके। सीतेन्द्र ने भी देखा कि वह रावण आदि को स्वर्ग में नहीं ले जा सकता और कहा—तुम स्वर्ग

मे तो नहीं जा सकते पर एक काम तो करो—आपस मे लड कर जो तुम दु ख पा रहे हो, यह तो मत करो। इससे कम से कम तुम्हारा अगला जन्म तो सुधरेगा। रावण ने उसकी बात मान ली।

इसी प्रकार हम आज यहां जेल मे आये हैं पर आप को जेल से छुडाने के लिये नहीं। हमारा कर्तव्य है कि हम आप को उपदेश दें और आप को दुर्व्यसनो से छुडायें। आप भी जेल से छूट नहीं सकते पर कम से कम अपने अपराधों को तो स्वीकार करें। इससे आप को आगे की लम्बी जेल से छुटकारा मिलेगा।

अपराध कई प्रकार के होते हैं—मानसिक, वाचिक और कायिक। मन मे बुरा चिन्तन करने वाला भी अपराधी है तो जो आदमी हत्या या चोरी करता है, वह तो साक्षात् अपराध है ही फिर वे चाहे जेल मे हों या बाहर। उसी प्रकार जो आदमी हत्या नहीं करता है, अहिंसक है, पर चाहे जेल में भेज दिया जाये, वह अपराधी नहीं होता। यह भी क्या पता कि आप अपराधी हैं या नहीं। मैं तो कई बार कहा करता हूं कि आज का सारा ससार ही अपराधी है। व्यापारी बाजार में अनीति करते हैं, क्या वे अपराधी नहीं हैं ? कानून का भग करने वाला हर कोई अपराधी है। तो आज ससार में कितने आदमी हैं, जो अपराध नहीं करते। पर कानून ही ऐसा है कि जिससे सारे पकड में नहीं आते या नहीं पकडे जाते। आप अपराधी इसलिये हैं कि आपका अपराध पकड लिया गया। अत व्यवहार की दृष्टि से यह स्पष्ट है कि आपने अपराध किया है। इसलिये आज आप को स्वय को टटोलना है।

हमने सोचा—जब हम सब वर्गों में काम करते हैं तो अपराधी लोगों को भी हमें सम्हालना चाहिये। हमारा यह दावा नहीं है कि हम आप को सुधार ही देंगे। प्रेरणा देना हमारा काम है। सुधरेंगे तो आप स्वय ही। मैं यह कहूँ कि मैं आप को सुधारता हूं, तो यह 'अह' होगा। रास्ता दिखाना मेरा काम है उस पर चलना आप का काम है। मैं क्या,

परमात्मा भी किसी को सुधार नहीं सकता यदि स्वयं व्यक्ति सुधरना न चाहे।

सुधार व्रतों से सम्भव है। अणुव्रत व्रतों का मार्ग है यह मान के ने । अति-त्याग और अति-भोग के ब च का यह मध्यम मार्ग है। अणुव्रती वह है जो छोटे व्रतों को ग्रहण करे। आप भी आज से अपने अपराधों को पुन न दुहराने की प्रेरणा लें खान-पान में अशुद्धि न करें। कम से कम उन चीजों को तो अवश्य छोड़िये जो दिमाग को बिगाड़ती हैं। इसके अलावा आप से मैं एक बात यह भी कहूँगा कि आप अपने व्यवहार को इतना विश्वस्त बनाइये जिससे कि आप के आस-पास रहने वाले अफसर आप पर विश्वास कर सकें तथा तो आप को नौकरी ही पड़ेगी। तो फिर अविश्वस्त बन कर आप क्यों बना रहे हैं।

आप के साथ-साथ उपस्थित अधिकारियों से मैं भी यह कहना चाहूँगा कि आप को कैदियों के साथ वैसा बर्ताव तो करना ही पड़ता है जैसा कानून कहता है। पर आप अपनी ओर से उनके साथ क्रूर व्यवहार न करें।

इसके बाद सभी लोगों ने दो मिनट तक आत्म-चिन्तन किया। कई कैदियों ने अपने-अपने अपराध स्वीकार भी किये और आगे वैसा न करने की शपथ ली। वातावरण बड़ा शान्त रहा।

तत्पश्चात् एक कैदी ने अपनी आत्म-कथा सुनाई। उसकी बोली में वेग था। एक ही सांस मे वह सब कुछ कह गया और आचार्य श्री से यह प्रार्थना की कि वे उच्च अधिकारियों से मिलकर कैदियों की स्थिति का भी दर्शन करें और उसमे कुछ सुधार हो, ऐसा प्रयत्न भी करें।

आज के इस अनोखे कार्य-क्रम मे केन्द्रीय रेलवे मंत्री श्री जगजीवन राम और राजस्थान के पुनर्वास मंत्री श्री मथुरादास माथुर ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये और अणुव्रत आन्दोलन के नवीन कार्यक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा की। कई बालक बालिकायें भी कार्यक्रम मे उपस्थित थीं।

आत्मा की आवाज

केन्द्रीय रेलमत्री श्री जगजीवनराम ने अपने भाषण मे कहा—"जिस काम को करते समय छिपाना चाहते हैं या काम करके जिसे छिपाना चाहते हैं, मेरे विचार मे वह अपराध है। सब की आत्मा हर वक्त यह बताती रहती है। पर होता यह है कि हम आत्मा की आवाज को दबा देते हैं। व्यक्ति अपराध क्यों करता है, समाज का ढांचा भी इसका एक कारण है। आज के समाज मे अनेकों बेढगी और बेहूदी बातें हैं, जिन्हें हमें बदलना है। आचार्य श्री तुलसी अणुव्रत-आदोलन द्वारा ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं इसलिये मुझे इस आदोलन मे दिलचस्पी है। आचार्य श्री का यह काम बडा सुन्दर है। मैं तो चाहता था कि जहाँ भी यह कार्यक्रम चले, उपस्थित रहूँ। पर ऐसा कर नहीं सका, दूसरा कार्य भार जो है। जेल के भाइयो से मैं कहना चाहूँगा कि वे जेल से निकलें तो कुछ सीख कर निकलें। बुराइयाँ नहीं, भलाइयाँ और चरित्र की बातें।

नैतिक दिशा

राजस्थान के पुनर्वास मत्री श्री अमृतलाल यादव ने अपने भाषण मे कहा—"जिन कैदी भाइयों ने खडे होकर आचार्य श्री के समक्ष प्रतिज्ञायें ली हैं, वे अपने मन में निश्चय कर लें—उसके अनुरूप उन्हें अपने आप को तैयार करना होगा। जीवन के आध्यात्मिक और नैतिक पहलुओं पर जैसा कि आचार्य श्री ने बताया, वे अमल करें और अपने भावी जीवन मे क्रियात्मक रूप से ईमानदारी, सचाई आदि अपनायें। अणुव्रत आदोलन वह आंदोलन है, जिसने दलित, शोषित और पीडित—सबको—मानव-मात्र को एक नैतिक दिशा प्रदान की है। आचार्य श्री तुलसी का यह गौरवशाली क़दम है।"

छठा दिन

महिलाओं का दायित्व

१८ सितम्बर १९५६ को "दीवान हाल" में दिल्ली प्रदेश कांग्रेस महिला समाज की ओर से महिलाओं में आचार्य श्री का प्रवचन हुआ। दिल्ली की अनेक कार्यकर्त्रियों के अलावा कांग्रेस-अध्यक्ष श्री ढेबर भाई भी प्रमुख वक्ता के रूप में उपस्थित थे। हाल खचाखच भरा था। दिल्ली प्रदेश कांग्रेस महिला समाज की संयोजिका श्रीमती सुशीला नैय्यर ने आचार्य श्री के स्वागत में भाषण दिया।

आचार्य श्री ने अपना प्रवचन प्रारम्भ करते हुए कहा—"आज सप्ताह के छठे दिन का कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य यही है कि आज जो देश का चारित्रिक वातावरण गन्दा हो गया है शुद्ध किया जाय। जब तक देश का चरित्र ऊँचा नहीं होगा, तब तक सारी विकास योजनाएँ बे-बुनियाद होंगी। इसीलिए हमने सोचा कि हमें देश में चरित्र का वातावरण बनाना चाहिए। वैसे तो जिम्मेवार व्यक्ति इस विषय में सोचते ही हैं, क्योंकि देश की बागडोर जिम्मेवार व्यक्तियों के हाथ में है। पर हमारी भी कुछ जिम्मेवारी है और इसलिए हमने सोचा—यह आन्दोलन अब की बार राजधानी में भी विशेष रूप से चलाना चाहिए। इसलिए हम राजस्थान से चलकर अभी अभी यहाँ आये और देश के विशिष्ट व्यक्तियों से विचार-विमर्श किया। उसी का यह परिणाम है कि हम जन-जन में नैतिक जागृति लाने की कोशिश कर रहे हैं।

हम हरिजनों से मिले। हम गन्दी बस्तियों के बीच भी गये।

हमें खुशी है कि यहां पर अनेको वन्दियों ने अपने अपराध स्वीकार किये और फिर से अपराध न करने की प्रतिज्ञा की। यहां पर मैंने एक वात कही थी—आज अपराधी कौन नहीं है। सारा ससार मुझे तो अपराधी ही दीखता है, ये वेचारे अपराध करते देख लिए गये। अत जेल मे डाल दिये गये। उनका सुधार भी आवश्यक है।

वहिनों से मैं कहूंगा—आपका सुधार वडा महत्व रखता है। एक वहिन के सुधार होने का मतलव है, एक परिवार का सुधार, अत आपको देश के नैतिक पतन से लडने के लिये तैयार रहना चाहिये। आप यह कहना छोड दें कि हम क्या कर सकती हैं। आप तो वहुत कुछ कर सकती हैं। कई भाई व्यापार मे अनैतिकता करते हैं। उनसे पूछा गया—आप अनैतिकता क्यो करते हैं ? तव उन्होंने कहा—हम क्या करें ? हमें औरतें तग करती हैं। उन्हें हमेशा नई फैशन चाहिये। नये जेवर और नये कपडे चाहिये। इसीलिये हमे अनैतिकता वरतनी पडती है उनका यह उत्तर सही हो, यह मैं नहीं मानता। पर आज हमे उन्हें नहीं देखना है। मैंने "सप्रू हाऊस" मे कहा था—आज आलोचना का युग है। हर एक दूसरे की आलोचना करने को तैयार है। जनता सरकार की आलोचना करती है। पर ज्यादातर वही लोग सरकार को कोसते हैं, जो स्वय रिश्वत देते हैं। इसी प्रकार सरकारी लोग जनता की आलोचना करते हैं। अध्यापक छात्रों की आलोचना करते हैं और छात्र अपने अध्यापकों की। पर अपनी आलोचना कोई नहीं करता। सव दूसरों की आलोचना करते हैं। अगर अपनी आलोचना करें तो देश सुदर हो जाय। आज दूरवीन वनने की आवश्यकता नहीं है, आइना वनने की आवश्यकता है। दूरवीन दूर की चीजें देखती है, आइना नजदीक की। आज अपने आपको नजदीक से देखने की आवश्यकता है।

कई लोग कहते हैं—इस प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति के सुधार से सारा ससार कव तक सुधरेगा ? पर आप वताइये कि इसके सिवाय परिवर्तन का और मार्ग ही क्या है ?

आज लाखों आदमी एक साथ धर्म परिवर्तन कर रहे हैं। पर मेरा इसमें विश्वास नहीं। धर्म-परिवर्तन इस प्रकार कभी सम्भव नहीं होगा। एक एक व्यक्ति जब धर्म के महत्व को समझेगा तब ही वास्तविक सुधार सम्भव है। एक एक व्यक्ति से समाज का सुधार होगा और फिर एक एक समाज से एक देश का सुधार होगा और फिर सारे राष्ट्र का। क्रान्ति की यह प्रक्रिया है। मकान की एक एक ईंट सही होगी तो मजबूत मकान बनेगा। अगर ईंटें ही कमजोर होंगी तो मकान धम्म से नीचे आ जाता है। इसी प्रकार यदि राष्ट्र का व्यक्ति व्यक्ति चरित्रवान होगा तो राष्ट्र अवश्य उन्नत होगा।

अगर आज बहनें यह संकल्प करलें कि हमें फैशन नहीं चाहिये हमारे लिये जनता का शोषण नहीं होना चाहिये तो मैं समझता हूँ यह बहुत बड़ी क्रान्ति होगी।

दूसरी बात यह है कि बहनें अपने आप में हीनता का अनुभव करती हैं यह क्यों? आप तो महापुरुषों की माताएं हैं। तब फिर आप में यह कायरता क्यों। बहनें तो पुरुषों से कई बातों में आगे हैं। भारत में चरित्र का स्थान पुरुषों से बहनों का ऊँचा है। तब फिर अपने आपको हीन मानना क्या अपराध नहीं है?

मैं बहुधा बहनों से यह सुनता हूँ कि उनका आदर नहीं होता। पर मैं आप से एक बात पूछूं कि आपके पुत्री हो जाये तो आपके मन में कितनी हीन भावना पैदा होती है। राजस्थान में एक कुप्रथा है कि लड़का पैदा होता है तो उसकी खुशी में थाली बजाई जाती है और लड़की पैदा होती है तो छाज पीटा जाता है। कहा जाता है—यह पत्थर कहाँ से आगया। और भी कितने हीन भाव मन में आते होंगे। तो फिर सोचिये आपके मन में ही यदि लड़की के प्रति हीन भावना है तो पुरुषों के मन में उच्च भावना होगी ही कैसे? अतः आप को स्वयं अपने मन से यह दुर्भावना निकाल देनी चाहिये। मैं समझ नहीं पाया, जबकि दोनों ही सृष्टि के अंग हैं, तो फिर उनमें यह भेदभाव क्यों?

तीसरी बात है—आप सोचती हैं कि हमारा उत्थान पुरुष करेंगे। पर यह बात निराधार है। अपना उत्थान व्यक्ति स्वय करने वाला है। कोई किसी का उत्थान नहीं कर सकता। उत्थान आखिर है क्या? अपनी कमियों को दूर किया कि उत्थान हुआ। हमें प्रगति नहीं करनी है। केवल अपनी दुर्गति को हटा देना है। यही वास्तव में प्रगति है और यह किसी दूसरे से होने वाली नहीं है।

रामायण में सीता जी के लिये कितना सुन्दर उदाहरण है। अरण्य में छोड देने के बाद राम स्वय सीता को याद करते हैं। वहाँ कितना सुन्दर चित्रण किया जाता है —

"भतो देण मत्रीश, सुकाम समारण दासो"

राम कहते हैं—सलाह देने के लिये सीता मेरे मत्री का काम करती थी। जब कभी उससे सलाह लेने का काम पडता, वह कितनी सुन्दर सलाह देती थी। पर वही सीता घर का काम करने के लिये दासी थी। आज स्त्रियाँ सोचती हैं कि घर का काम करना तो उनका है ही नहीं। कई बार हमारी ये बहनें कहती हैं—महाराज सेवा करने की इच्छा तो थी। पर करें क्या, साथ में कोई औरत नहीं है। इस प्रसग पर मुझे वह कथा याद आती है—

"एक व्यक्ति एक सेठ जी के पास गया और कहा—मुझे अमुक चीज चाहिये। सेठ जी ने कहा—हाँ भाई, वह चीज तो है पर देने वाला कोई आदमी नहीं है। वह हसा और कहने लगा—मैं तो आपको आदमी ही समझता था। व्यग को सेठ जी समझ गये।"

इसी प्रकार हमारी बहनें कहती हैं—उनके साथ काम काज करने के लिये कोई औरत नहीं है। तो मैं समझ नहीं पाया कि आप औरत हैं या और कोई। अत जब तक बहनों में स्वावलम्बन नहीं आएगा, तब तक वे वास्तविक उन्नति नहीं कर सकेंगी।

इसी प्रकार दहेज-प्रथा के बारे में भी मैं आपसे यह कहूँगा कि क्या यह नारी जाति के लिये कलक की बात नहीं है। रुपये पैसों के भेद

बकरियों की तरह मा: रखो को खरीदना और बेचना क्या धर्म की बात नहीं है। आप कहेंगी हम क्या करें, पुरुषों का दिमाग ही ऐसा है। बात ठीक है। पर एक बात तो आप कर सकती हैं—अपने पुत्रों की शादी में रकम तो कुछ न लें। अगर आप इतना भी कर सकीं तो वैदिक क्रान्ति में आप बड़ा भारी काम कर सकेंगी।

आप मेरी भावना को समझें और तदनुकूल जीवन बिताने का प्रयत्न करें।

आज के मानव का मूल्य

कांग्रेस के अध्यक्ष श्री ढेबर भाई ने कहा—"हम सबने महाराज श्री का प्रवचन सुना। सन्त तो कम ही बोलते हैं। पर जितने शब्दों का वजन दूसरा ही होता है। और सचमुच ही आचार्य श्री ने जो बातें कहीं वे बड़ी वजन वाली बातें हैं। अणुव्रत की बात उनके लिये नई नहीं है। फिर भी वे हमारे बीच आये। इसलिये नहीं कि यहां आने से उन्हें कोई स्वार्थ साधना है या इसलिये नहीं कि आपको अपना शिष्य बनाना है पर वे हमारी हालत देखकर अनुकम्पा से प्रेरित होकर ही यहां आये हैं।

मनुष्य ईश्वर की सबसे बड़ी कृति है। पर मनुष्य ने अपनी जाति को बिगाड़ने की जितनी हरकतें की है, उतनी शायद किसी ने नहीं की। आज बैल पत्थर, वृक्ष कोई भी अपने धर्म को नहीं भूले पर मनुष्य सब कुछ भूलकर आज कहां पहुंच गया है? यह मनुष्य जो अपने हाथ से सोना निकालता था आज सोने का गुलाम बन गया है। जो मनुष्य अपने हाथ से समृद्धि पैदा करता था, आज समृद्धि का गुलाम बन गया है। जो मनुष्य अपने हाथों से अपने पुरुषार्थ से संसार को बनाता है वही आज संसार का गुलाम बन गया है" "ऐसे तो मनुष्य जीवन अमूल्य है पर आज वह सबसे सस्ती चीज समझा जाता है।

आज मनुष्य का मूल्य बदल गया है। मनुष्यत्व की दृष्टि बदल गई

है। कभी मानवता की कद्र की जाती थी पर आज अभिनेता और अभिनेत्रियो की कद्र की जाती है।

कनॉट् सरकस में एक वार बच्चों, युवकों और वृद्धों की भीड जमा हो गई थी। उसे देखकर किसी ने समझा यहाँ नेहरू जी या कोई दूसरे वडे नेता आये होंगे। पर पूछने पर पता चला कि वहाँ तो अभिनेता और कई अभिनेत्रियाँ खडी थीं। अत लगता है, जीवन आज सूखा हो रहा है। हमें अन्दर से प्रेरणा नहीं मिलती। अत वह स्थान-स्थान पर सिनेमा में और दूसरी जगह मारा मारा भटकता फिरता है। आज हमें आवश्यकता है कि हम जीवन को रसमय वनायें और प्रतिपल रस लेना सीखें।"

आयोजन (१३) अणुव्रत सप्ताह

सातवां दिन

पैसे की भूख

१६ दिसम्वर १६५६ को आहार के पश्चात् दोपहर के दो वजे आचार्य प्रवर विक्रय कर कार्यालय में प्रवचन करने पधारे। वहाँ के सारे अधिकारी एव कर्मचारी एक खुले मैदान में इकट्ठे हो गए। लगभग ५०० की उपस्थिति थी। जैन मुनियों को नजदीक से देखने का उनके लिए पहला ही अवसर था। उनके चेहरों पर जिज्ञासा झलकती थी। विक्रय कर आयुक्त श्री डी० डी० कपिल के स्वागत भाषण के वाद आचार्य श्री ने अपने भाषण मे कहा—दूसरों को धोखा देना पाप है

किन्तु सबसे बड़ा पाप है अपने आप को धोखा देना। व्यक्ति दूसरों का बुरा करता है पर यह नहीं सोचता कि सबसे ज्यादा बुरा स्वयं का होता है। बुरे व्यक्ति से समाज बुरा बनता है बुरे समाज से राष्ट्र बुरा बनता है और बुरे राष्ट्र का प्रभाव अनेक राष्ट्रों पर पड़ता है। इसीलिए स्वयं को धोखा देने से बचना चाहिए। मैंने एक प्रवचन में कहा था—

आत्मको और सब को, संसार को धोखा न दो।
करके कथनी ठीक करनी मेल से आगे बढ़ो॥
व्यक्ति जाति व राष्ट्र का इससे सदा कल्याण है॥

जब तक कथनी और करनी में समानता नहीं आती तब तक धार्मिकता नहीं आती।

यह नारकीय जीवन है जिसमें मन-वाणी और काया का सामञ्जस्य नहीं, आत्मविश्वास नहीं, इंसानियत या मानवता नहीं।

यह स्वर्गीय जीवन है, जिसमें सत्य अहिंसा व प्रेम भरा हुआ है; जिसमें आत्म सम्मान है आत्म निष्ठा है।

आज मनुष्य की निष्ठा पैसे में है। वह सुख सुविधा व विलास चाहता है। विलास पैसे के बिना नहीं आता। पैसों का ढेर शोषण के बिना नहीं होगा। इसलिए अपनी विलास की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए शोषण भी करता है। कभी-कभी अपनी मानवता को भी बेच देता है। उसे पैसा चाहिए, वह कैसे भी क्यों न मिले वह यह नहीं सोचता। उसका ध्यान पैसे पर केन्द्रित है। इसी को बनाये रखने के लिये वह ज्यादा अव्यावहारिक बनता है। झूठी सभ्यता को अपनाने में कभी नहीं हिचकता। यहीं से बुराई का चक्र घूमने लगता है। घूमते-घूमते जब वह व्यक्तियों को कीर्तिकाय बना देता है तब बातों की बात याद आती है। उसके चिन्तन के प्रकार में एक मोड़ आता है और वह भोग से त्याग की ओर मुड़ता है। महाव्रतों को वह अपना नहीं सकता। अणुव्रतों की ओर गति करता है।

अतिभोग विनाश का कारण है और अति त्याग (महाव्रत) व्यापक

नहीं हो सकते। अणुव्रत बीच का मार्ग है, मध्यम प्रतिपदा है। ये छोटे-छोटे व्रत व्यापक बन सकते हैं। साधारण से साधारण व्यक्ति भी इन्हें अपना सकता है।

विशिष्ट अणुव्रती किसी भी कर की चोरी नहीं करता। राज्य-निषिद्ध वस्तुओं का व्यापार नहीं करता। कूट-तोल-माप नहीं करता, जीवन को आडम्बर युक्त नहीं कर सकता। इस प्रकार जीवन का प्रत्येक क्षेत्र पवित्र बनता चला जाता है और जीवन सुखी व भारमुक्त हो जाता है।

मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि आप अणुव्रतों को समझें। प्रवेशक अणुव्रती, अणुव्रती या विशिष्ट अणुव्रती इन तीनों में से किसी भी श्रेणी मे अपनी शक्ति के अनुसार सहयोग दें। व्रतों से घबराएं नहीं।

प्रश्नोत्तरों का भी कार्यक्रम रहा। व्रतों का वाचन हुआ। विक्रय कर कार्यालय मे प्रवचन कर आचार्य श्री मिनर्वा पधारे। उस समय राजस्थान के राज्यपाल सरदार गुरुमुख निहालसिंह दर्शनार्थ आये। लगभग २० मिनट तक बातचीत हुई। उन्होंने कहा—अब मैं आपके राजस्थान मे आ गया हूं। यदि संभव हुआ तो मर्यादा महोत्सव पर सरदार शहर आ सकूंगा।

आत्मतत्त्व का बोध

१६ दिसम्बर १९६६ को अपराह्न में दूसरा कार्यक्रम वकील-संघ की ओर से आयोजित किया गया।

सर्व प्रथम मुनि श्री नथमल जी ने परिचयात्मक भाषण दिया। वकील-संघ के अध्यक्ष श्री राधेलाल अग्रवाल ने स्वागत भाषण दिया। तदनन्तर आचार्य श्री ने प्रवचन प्रारम्भ करते हुए कहा—"आज सप्ताह का अंतिम दिन है। यहाँ पिछले दिनों विद्यार्थियों अध्यापकों हरिजनों तथा अन्यान्य धर्मीय लोगों के बीच इस नैतिक निर्माणकारी आन्दोलन का कार्यक्रम चला। यहाँ आज विशिष्ट बौद्धिक क्षेत्र के लोग—आप वकीलों वर्गों एवं मजिस्ट्रेटों के बीच यह कार्यक्रम रखा गया है, जिसे मैं आवश्यक समझता हूँ।

हम जिस देश में रहते हैं, उसे पुण्यभूमि कहा जाता है। आप पूछेंगे—क्यों? यहाँ पर सत्य और अहिंसा की जगमगाती ज्योति निरन्तर जलती रही है। दूसरे देशों को इसने सत्य और अहिंसा का पाठ पढ़ाया। यहाँ पर विध्वंसात्मक शस्त्रों का अन्वेषण नहीं हुआ, यहाँ की गवेषणा से आत्म-तत्त्व प्राप्त हुआ है। पश्चिम में एटमबम और हाईड्रोजन बम का आविष्कार हुआ वहाँ हमारे ऋषियों ने सत्य और अहिंसा का आविष्कार किया। केवल यह कहने भर के लिए नहीं, उन्होंने अपने जीवन में उतारा भी। अतएव यह कहा गया है—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अर्थात् संसार के लोगों को नीति और चरित्र की शिक्षा लेनी है तो वह भारती और सच्चरित्र भारतीय से ले। यही कारण है भारत ने संसार का आध्यात्मिक और नैतिक नेतृत्व किया था पर आज

खेद है कि भारत में बाहर से लोग नीति की शिक्षा देने आते हैं। कोई भी आये, उसकी हमे शिकायत नहीं। भारतीय सस्कृति ने बन्धु होकर रहने वालो का हमेशा स्वागत किया है। पर वास्तव मे जो भारतीय होगा, उसके मन मे दु ख होगा कि आज भारत की क्या दशा हो गई है ? मैं जानता हूँ कि आज भारत मे ऊँची ऊँची शिक्षाएँ चल रही हैं, पर इसके साथ-साथ यह भी जानता हूँ कि आज भारत मे आत्म-निरीक्षण की भावना बहुत कम हो गई है। हर कोई दूसरों को बुरा-भला कह देगा पर अपना आत्म-निरीक्षण करने को कोई तैयार नहीं। दर्शन केवल शिरस्फोटन के लिए नहीं है, वह देखने के लिए है, अपने आपको देखने के लिए है। अतएव भारतीय ऋषियो ने कहा है—

"अप्पाचेव दमेयत्वो, अप्पाहु खलु दुद्दमो।
अप्पादतो सुही होई, अस्सि लोए परत्यए

आत्मा का–अपने आपका ही दमन करना चाहिए। आत्मा निश्चय ही दुर्दमनीय है। जो अपने आप का दमन करता है, अपने आप को सयत बनाता है, वह इस लोक में और परलोक मे सुखी होता है।

दूसरों पर अनुशासन करने के लिए सब तैयार हैं, पर अपने पर कोई नहीं करता। वह विद्या ही क्या है जिससे इतना भी ध्यान न आए कि दूसरों को पीडा नहीं देनी चाहिए ? भारतीय सस्कृति मे कहा है —

"वर मे अप्पादतो, सजमेण तवेण य
माह परेहि दम्मतो, बधणेहि वहेहि य।

अर्थात् अच्छा हो अपने नियमों से हम अपना कट्रोल करें।
मत ना दूजे वध बन्धन से मानवता की शान हरें॥

बहुत से लोग मौत से घबराते हैं। पाँच क्षण के लिए भी दवाइयाँ लेकर जीवन की याचना करते रहते हैं। पर हमारे शास्त्रों मे बताया गया है–"मौत से लडो" जब तुम और काम करने मे समर्थ नहीं रहो, तब अनशन कर अपने शरीर का त्याग करदो।

अणुव्रत का मार्ग

महाव्रत की तो कल्पना ही शायद आप लोगों के लिये मुश्किल हो जायेगी। जीवन भर पैदल चलना, अपना बोझ स्वयं उठाना, चिकित्सा भी डाक्टर से नहीं करवाना, नौकर-मजदूर नहीं रखना, भोजन आदि के लिये किसी को तंग नहीं करना, केशलुंचन करना, रात को कुछ भी नहीं खाना न कुछ भी पीना। आप चले जायें पर अन्न नहीं खायें— यह साधुत्व का आदर्श है। पर अणुव्रत तो मध्यम मार्ग है। उसमें न तो इतना बड़ा त्याग है और न बहुत ज्यादा भोग के लिये छूट ही है। दोषों का निराकरण यथासम्भव करते रहो यही इसका उद्देश है। इसलिये यह प्रत्येक के लिये ग्रहण करने योग्य है। आप भी इसे ग्रहण कर सकते हैं।

आज लोगों में धर्म से अरुचि हो गई है। विशेषतः शिक्षित वर्ग तो धर्म को अफीम तक कह देते हैं। पर यह विरक्तता क्यों हुई? क्योंकि धर्म केवल धर्म स्थानों तक ही रह गया। जीवन-व्यवहार में वह नहीं उतरा। आज भी बाजार और कचहरी में, जीवन-व्यवहार में धर्म को भुला दिया जाता है। इसी कारण धर्म बदनाम हो गया। पर वह क्या धर्म जो केवल धर्मस्थानों में ही किया जा सके। उसकी हर क्षेत्र में आवश्यकता है। वकालत में भी ईमानदारी की बड़ी आवश्यकता है। वकालत में निष्ठा यह हो कि वह केवल अपने लाभ के लिये ही नहीं की जाय। इसका अर्थ यह हो कि मवक्किल बताये। सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बताना वकालत नहीं है धोखा है। हमारे ऐसे वकील अणुव्रती भी हैं जो कभी झूठा मामला नहीं लेते। झूठे गवाह तैयार नहीं कराते। आप कहेंगे यह तो मुश्किल है। हमारा वकालत का धंधा ही ऐसा है कि हमें सच-झूठ करनी ही पड़ती है। पर यह बात तो सबके लिये बराबर है। एक व्यापारी के लिये भी यही कठिनाई है। वह कहेगा—मिलावट किये बिना काम ही नहीं चलता। इसी

प्रकार की समस्या मिनिस्टरों के भी सामने हो सकती है। वैद्य, डाक्टर, भी तो यही कहेंगे। परन्तु यह बचाव अवैधानिक है। अत मैं आपसे भी यही कहूंगा कि जब तक आप नैतिकता के इन स्थूल व्रतो को नहीं अपना लेते तब तक मानवता आपसे बहुत दूर रहेगी। आज हम आत्मा, परमात्मा और पुनर्जन्म की बातो को छोडकर कम से कम व्यवहार की इन छोटी छोटी बातो पर तो ध्यान दें।

आप पूछेंगे—यह आन्दोलन किसका है ? उत्तर है—सबका है और इसीलिये आपका भी है। यह सर्व धर्म समन्वय की भावना को लेकर चलता है। अत किसी धर्म सम्प्रदाय विशेष का नहीं है।

अणुव्रत-आन्दोलन की दृष्टि है—जीवन के मूल्य बदलो। आज तो धन और सत्ता का महत्त्व बढ़ गया है, यह गलत बात है। जैसे दवा रोग मिटाने के लिये ही दी जाती है, उसी प्रकार धन केवल जीवन-निर्वाह के लिये है, दूसरों पर प्रतिष्ठा जमाने के लिये नहीं। प्रतिष्ठा और अणुव्रत दोनों एक साथ नहीं चल सकते। अणुव्रतों की दृष्टि से ऊँचा वह है जो चरित्रवान् है।

आप कहेंगे—हजारों वर्ष हो गये, उपदेश होते आये हैं। भगवान् महावीर आये, बुद्ध आये, महात्मा गाधी आये। उन्होंने अपना अपना उपदेश दिया। पर क्या बुराइयां ससार से मिट गईं ? आपका कहना ठीक है। पर मैं तो कर्मवादी हूं। कर्म को मानता हूं। कितना होता है, इसकी मुझे परवाह नहीं। काम करना हमारा कर्त्तव्य है। जितना भला होता है, उतना अच्छा है, उसे बुरा नहीं कहा जा सकता।

हम भी अपनी क्षमता के अनुसार काम करते हैं। विश्व कवि टैगोर ने एक जगह कहा है—

"सूर्य छिपने लगा, अधेरा होने लगा। सूर्य बोला—मैं तो चला जा रहा हूं। पीछे से अधेरा न हो जाय, कौन प्रकाश करेगा ? टिमटिमाते दीपक ने कहा—मैं जो हूं, अपनी शक्ति के अनुसार प्रकाश करूंगा।"

हम काम करते हैं। हां, इसमे

आपका सहयोग अपेक्षित है। अकेला मैं क्या कर सकता हूँ। श्री नेहरूजी से भी मैंने कहा—क्या आपका सहयोग इसमें अपेक्षित नहीं है?

उन्होंने पूछा—कैसा सहयोग?

मैंने कहा—हम राजनैतिक सहयोग नहीं चाहते।

उन्होंने कहा—मैं तो राजनीति में रचा-पचा व्यक्ति हूँ। मेरा सहयोग आपके क्या काम आयेगा?

मैंने कहा—पर मैं तो राजनैतिक जवाहरलाल का सहयोग नहीं चाहता. मैं तो व्यक्ति जवाहरलाल का सहयोग चाहता हूँ।

उन्होंने कहा—वह सहयोग तो है ही।

मैं इस भावना को शुभ-सूचक मानता हूँ। अतः इसी प्रकार आप लोगों से भी कहूँगा कि आप अपना सहयोग हमें दें।

उपस्थित वकीलों की संख्या १२५ १५ थी। और भी जज, मजिस्ट्रेट व अनेक सम्भ्रान्त नागरिक उपस्थित थे। प्रवचनोपरान्त प्रश्नोत्तर भी हुये। सभी ने पूरा पूरा रस लिया।

प्रश्नोत्तर

प्र हम काम करते हैं यह करने वाला कौन है?

उ आत्मा। दूसरे शब्दों में जो अहं का बोध करता है वही तत्त्व काम भी करता है।

प्र क्या अहंकार आत्मगुण है?

उ नहीं, वह आत्मा की दुष्प्रवृत्ति है

प्र शरीर में आत्मा का वास कहाँ है?

उ सारे ही शरीर में। जिस प्रकार तिलों में तेल सभी जगह व्याप्त रहता है उसी प्रकार आत्मा भी सारे शरीर में व्याप्त है।

प्र आत्मा क्या है?

उ चैतन्य गुण युक्त पदार्थ आत्मा है।

प्र "मैं यह कहता हूँ"— यह जो हमें बोध होता है, क्या यही आत्मा है?

उ० हां, यह आत्मा का एक गुण है। उसमें और भी अनेक गुण हैं जैसे श्रवण, दर्शन आदि।

प्र० कर्म करने में आत्मा स्वतत्र है या परतत्र ?

उ० स्वतत्र भी है और परतत्र भी।

प्र० आप अहिंसा का प्रचार करते हैं। पर कमजोरों मे उसके प्रचार की क्या आवश्यकता है ? अहिंसा के कारण ही तो भारत गुलाम हुआ था और आज भी वह पूरा सशक्त नहीं है। अत पहले भारत को बलवान् होने दीजिये, फिर अहिंसा का प्रचार कीजिये।

उ० मैं कायरता को अहिंसा नहीं मानता। डर कर छुपने वाला यदि अपने को अहिंसक कहे तो मैं उसे प्रथम दर्जे की कायरता कहता हूँ। और आज अगर हम हिंसा का प्रचार करने लगेंगे तो समूचा ससार क्या जगल नहीं हो जायेगा ? अणुव्रतों का मतलब यह तो नहीं है कि अपनी रक्षा मत करो। उसका मतलब तो है—कम से कम दूसरों पर तो प्रहार मत करो।

प्र० अणुव्रत का अर्थ है—नैतिकता का प्रसार। इस ओर सर्वोदय काम कर ही रहा है तो फिर उसके होते अणुव्रतों की क्या आवश्यकता हुई ?

उ० प्रत्येक आन्दोलन की अपनी अपनी सीमायें हुआ करती हैं। अत अणुव्रत-आन्दोलन की भी अपनी स्वतत्र सीमा है। सर्वोदय केवल नैतिक ही नहीं है, वह आर्थिक भी है। पर अणुव्रत विशुद्ध नैतिक ही है। एक डाक्टर सब प्रकार की चिकित्साओं मे निपुण है, फिर भी स्पेशलिस्ट (विशेषज्ञ) डाक्टरों की आवश्यकता होती है।

प्र० अणुव्रतों मे जो बातें बताई गई हैं, वे वेदों, उपनिषदो आदि धर्मग्रन्थों मे पहले ही बताई हुई हैं तो फिर अणुव्रत की क्या आवश्यकता है ? आवश्यकता तो ऐसे व्यक्तियों की है, जो अपने जीवन मे इन सब बातो का आचरण कर सकें ?

उ० मैं यह कब कहता हूँ कि यह नया है। पुराने शास्त्रों में जो

अच्छी अच्छी बातें हैं, उनका आज के युग की दृष्टि से मैंने चुनाव किया है। वैसे शास्त्रों में है तो सब कुछ, पर लोग आज उसे भूल गये। अतः अणुव्रतों के माध्यम से हम लोगों को उस ओर आकृष्ट करने का प्रयास करते हैं

ऐसे व्यक्ति एक-दो नहीं अनेक हैं जिन्होंने अनेक मार्मिक के मामले में भी अनैतिक आचरण नहीं किया झूठी साक्षी नहीं दी। वे सारे अणुव्रती हैं। और आप भी तो वैसे बन सकते हैं।

प्र क्या दिल्ली में भी ऐसे व्यक्ति हैं?

उ हाँ, एक नहीं, दसों ऐसे व्यक्ति मिलेंगे।

वकीलों के लिये इस तथ्य को स्वीकार करने के अलावा कुछ अवशेष था ही नहीं।

कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ।

आयोजन (१५)

आज के व्यापारी

राष्ट्रीय चरित्र निर्माण अणुव्रत सप्ताह के अन्तर्गत ता ९ दिसम्बर को प्रातः ९ बजे दिल्ली मर्केन्टाइल एसोसियेशन की ओर से आचार्य श्री के सान्निध्य में व्यापारी सम्मेलन का आयोजन रखा गया जिसमें दिल्ली तथा अन्यान्य स्थानों के विभिन्न क्षेत्रीय व्यापारी बड़ी संख्या में उपस्थित थे। भारत के वाणिज्य मंत्री श्री मोरार जी देसाई ने प्रमुख वक्ता के रूप में भाग लिया।

आचार्य श्री ने उपस्थित व्यापारियों को संबोधित करते हुए कहा—

"पैसा जीवन का चरम साध्य नहीं है। वह सामाजिक जीवन का साधन कहा जा सकता है। पर कहते खेद होता है-- आज स्थिति कुछ ऐसी बन गई है कि पैसा जीवन के लक्ष्य स्थान पर आरूढ हो गया है। पैसा जब एक मात्र ध्येय बन जाता है, तब उसका अर्जन करते समय न्याय-अन्याय, औचित्य अनौचित्य का ध्यान कोई रख सके, यह सभव नहीं है। इससे शोषण बढ़ता है, स्वार्थपरता बढती है, फलत जीवन गिरता है, उसका आत्म बल और सत्यनिष्ठा डगमगा जाती है। अब मैं मध्यम श्रेणी के कुछ अणुव्रतियो को यह कहते सुनता हूं कि अमुक व्यापारी के यहां नौकरी के लिये जाने पर उन्हें जवाब मिला कि व्यापार में झूठ से परहेज करने वालों की उनके यहां क्या उपयोगिता ? यह आज के व्यापारी मानस का चित्र है। पर मैं कहना चाहूंगा—यह उनकी भ्रात धारणा है। यह कायरता है। व्यापारी अपने जीवन मे सत्य की जितनी अधिक सन्धि पेश करेंगे, उनका जीवन उतना ही ऊंचा उठेगा। व्यापारियों की प्रतिष्ठा जो आज घटती जा रही है, पुन कायम होगी। वे सब तरह से लाभ मे होंगे। वास्तव में सत्य और ईमानदारी व्यापारी जीवन का भूषण है।

व्यापारियो की प्रतिष्ठा

केन्द्रीय वाणिज्य मत्री श्री मोरारजी देसाई ने अपने भाषण में कहा—"आज व्यापारी की इज्जत ठीक नहीं है, ऐसा आम तौर से कहा जाता है। पर व्यापारी ही कमजोर है, और सब ऊंचे हैं, मैं इसे ठीक नहीं मानता। समाज तालाब के पानी जैसा है। समाज के एक कोने का पानी खराब हो, दूसरे का अच्छा, ऐसा नहीं हो सकता। बात यह है, व्यापारी के पास पैसा होता है, वह ऊंचा माना जाता है। जो ऊपर के तबके के लोग होते हैं, पैसे आदि की दृष्टि से जो ऊंची स्थिति मे होते हैं, उनकी ओर सब की दृष्टि जाती है। सब को उनसे आशा रहती है, इसीलिये उनकी आलोचना होती है। उनको चाहिये कि वे ऊपर की

स्थिति के मालिक बनें व गुणों से ऊँचे बनें। नैतिकता की बुनियाद सचाई है। यह मनुष्य का स्वभाव है। झूठ क्या है अन्दर से यह मालूम हो जाता है पर उसे हम रोकते जाते हैं। झूठ की आदत पड़ जाती है, सचाई के प्रति निष्ठा कम हो जाती एक व्यक्ति को उससे (झूठ से) बचाने की कोशिश करनी है। अन्यान्य पेशों की तरह व्यापार भी जीवन चलाने का एक पेशा है और वह एक जरूरी काम है। यदि वह न हो तो लोगों को चीज कैसे मिले? पर यह झूठ के बिना नहीं चल सकता ऐसा कहने वालों को भरोसा नहीं है धर्म पर, सचाई पर। आज केवल व्यापारी ही नहीं हर एक आदमी चाहता है उसे जीवन के साधन अधिक से अधिक प्राप्त हों—मोटर गाड़ी उसके पास रहे, मुलायम कपड़े उसे मिलें खाना मनचाहा मिले चाहे पचे या नहीं। यह सब इसलिये कि उसका दिमाग कुछ ऐसा बन गया है वह सुविधा और आराम चाहता है इसलिये वह पैसे के पीछे पड़ा है। पर ध्यान रहे लोभ से आदमी कभी तृप्त नहीं होते, उससे तो दुःख बढ़ता है। व्यापारी भाई इतना समझ लें यदि वे सच का व्यवहार करेंगे तो पैसा तो उनको मिलेगा और जीवन भी उनका ऊँचा होगा। यदि सत्य को छोड़ा तो जीवन तो गिरेगा और पैसा भी नहीं रहेगा।

प्रस्तुत आयोजन में पूना के सर्वोदयवादी विचारक श्री रिषभदास राका ने श्री मोरारजी देसाई के परिचय से आरम्भ किया। दिल्ली मर्चेन्ट्स एसोसियेशन के अध्यक्ष रायसाहिब श्री मुख्यलाल मनूर ने समागत प्रतिनिधियों का स्वागत किया तथा श्री जयनलाल शास्त्री ने अणुव्रत सप्ताह के कार्यक्रम पर प्रकाश डाला।

दोपहर में दो बजे लक्ष्मी हायर सैकेण्ड्री स्कूल की सभाभवन में छात्राएँ आचार्य श्री का संदेश सुनने को बड़ा आभार आईं। अध्यापिकाएँ भी साथ थीं।

आचार्य श्री ने उन्हें जीवन उत्थान की प्रेरणा देते हुए बताया कि वे विवेक, विनय और नम्रता जैसे सद्गुणों का सेवन करें। बाहरी साज

प्रचार माना जाने लगा। युग ने करवट ली भारत में राजतंत्र मिटा, विदेशी हुकूमत हटी स्वतंत्रता पाई जनतांत्रिक आधार पर इसकी शासन व्यवस्था शुरू हुई। सब जानते हैं जनतंत्र का आधार है जन-मत। इस व्यवस्था का प्रकार चुनाव है। यदि चुनाव में अनैतिकता और अन्याय का समावेश रहे तो उससे फलित होने वाला जनतंत्र शुद्ध नहीं हो सकता। जैसा कि अणुव्रत आंदोलन का लक्ष्य है—लोक जीवन में नैतिक प्रतिष्ठा और चारित्रिक जागृति लाना चुनाव कार्य में भी इस शुद्धिमूलक भावना का प्रसार हो, एकमात्र इसके लिये हमारा यह प्रयास है। हमारा किसी दल पार्टी व पक्ष से कोई संबंध नहीं है। आध्यात्म प्रेरणा और सत्य निष्ठा जागृत करना हमारा कार्य है।

यह किसी से छिपा नहीं है कि चुनाव कार्य में कितनी अशुद्धि और अनैतिकता आई हुई है। दलगत और व्यक्तिगत स्वार्थ से मनुष्य इस कदर घिर जाता है कि वह सत्य न्याय और जनसेवा से पराङ्मुख होने लगता है। जनतंत्र के मूल आधार चुनावों में से अनैतिकता दूर हो सके, इस दृष्टि से उम्मीदवारों मतदाताओं व समर्थकों आदि के लिये कुछ नियम प्रस्तुत करता हूँ

उम्मीदवारों के लिये नियम

(१) रुपये-पैसे व अन्य अवैध प्रलोभन देकर मत ग्रहण नहीं करूंगा।

(२) किसी दल व उम्मीदवार के प्रति मिथ्या अश्लील व घृणा प्रचार नहीं करूंगा।

(३) धमकी व अन्य हिंसात्मक प्रभाव से किसी को मतदान के लिये प्रभावित नहीं करूंगा।

(४) मत-गणना में पर्चियों हेर-फेर करवाने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

(५) प्रतिपक्षी उम्मीदवार और उसके मतदाताओं को प्रलोभन व

भय आदि दिखा कर तथा शराब आदि पिलाकर तटस्थ करने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

(६) दूसरे उम्मीदवार या दल से अर्थ प्राप्त करने के लिये उम्मीदवार नहीं बनूँगा।

(७) सेवा भाव से रहित केवल व्यवसाय बुद्धि से उम्मीदवार नहीं बनूँगा।

(८) अनुचित व अवैध उपायों से पार्टी टिकिट लेने का प्रयत्न नहीं करूगा।

मतदाता और समर्थक के लिये नियम

(१) रुपये पैसे आदि लेकर या लेने का ठहराव कर मतदान न करूँगा और न करवाऊँगा।

(२) किसी उम्मीदवार या दल को झूठा भरोसा न दूँगा और न दिलवाऊँगा।

(३) जाली नाम से मतदान न करूँगा।

(४) अपने पक्ष या विपक्ष के किसी उम्मीदवार का अच्छा या बुरा असत्य प्रचार न करूँगा और न करवाऊँगा।

राष्ट्र के नेता इन पर विचार करें और इनके व्यापक प्रसार का प्रयास करें।"

चुनाव मुख्यायुक्त द्वारा समर्थन

चुनाव मुख्यायुक्त श्री सुकुमारसेन ने अपने भाषण मे कहा—"आचार्य श्री तुलसी ने जैसा अपने भाषण में बताया, आज के आयोजन का उद्देश्य है—चुनावों मे अपवित्रता न रहे इसका प्रसार करना। मुझे बहुत प्रसन्नता है कि सब राजनैतिक दलों के नेता इसमे सम्मिलित हुये हैं। हमारे देश में ब्रिटिश हकूमत के समय भी चुनाव होते थे पर तब हमारी हालत मालिकों की नहीं थी। आज हमारी हालत मालिकों की है। हमारे ऊपर भारी जिम्मेवारी है। चुनावों में हमारे देश

के वे आदर्श प्रतिबिम्बित हों जिन्हें हम सदियों से मानते आ रहे हैं। आचार्य श्री ने जो नैतिकतानुसार नियम प्रस्तुत किये हैं उन्हें बार-बार दुहराया जाये। जनता के सामने प्रतिज्ञा की जाय ताकि जनता के सान्निध्य में उन में शक्ति पैदा हो। प्रतिज्ञायें तोड़ने के लिये नहीं, पालने के लिये की जाएं। जो नियम आचार्य श्री ने रखे हैं मैं उनमें दो बातें और जोड़ने का निवेदन करूंगा।

(१) मतदाता यह प्रतिज्ञा करे कि मैं वोट अपने अन्तरात्मा की आवाज के अनुसार दूंगा, देश के लाभ को सोचते हुये दूंगा।

(२) मैं किसी ऐसे उम्मीदवार को वोट नहीं दूंगा जिसने उम्मीदवार के लिये निर्धारित व्रत नियम नहीं लिये हों।

मैं आशा करता हूं पार्टी इन बातों को ध्यान में रखेगी।

श्री ढेबर का कथन

कांग्रेस अध्यक्ष श्री यू. एन. ढेबर ने कहा—"मनुष्य की कोई प्रवृत्ति ऐसी न हो जो उसे गिराने वाली हो। हमारे उद्देश्य भी शुद्ध हों, साधन भी शुद्ध हों। शुद्ध उद्देश्य को हासिल करने के लिये अशुद्ध साधन का प्रयोग हुआ तो व्यक्ति को तो नुकसान होता ही है देश को भी उससे नुकसान होता है। गलत रास्ते से कोई अच्छा काम हो नहीं सकता। यह जरूरी है कि चुनावों में इस ओर पूरा ध्यान रहे। मैं आचार्य श्री को विश्वास दिलाना चाहूंगा कि इस ओर हमारी जो जिम्मेवारी है, उसे तथा बुनियादी बातों को समझते हुए सहयोग करेंगे।

साम्यवादी नेता का मत

साम्यवादी नेता श्री ए. के. गोपालन ने अपने भाषण में कहा—"यह अत्यन्त आवश्यक है कि चुनावों में पवित्रता और निष्पक्षता रहे। कहीं ऐसा न हो कि चुनावों में वोट पाने की गरज से उम्मीदवार इन प्रतिज्ञाओं को ले लें। जो प्रतिज्ञायें ले वह निभाये भी। रुपयों के लिये वोट देना सचमुच एक कलंक है। ये नियम चुनावों में पवित्रता लाने वाले

हूं। यदि मैं अपनी पार्टी की ओर से चुनाव लड़ूंगा तो इन नियमों के पालन की प्रतिज्ञा करता हूं। मेरी पार्टी मे यदि कोई विपरीत बात देखे तो मैं कहूंगा—वह हमे बताये, हम उसको रोकने का प्रयत्न करेंगे। मेरा एक सुझाव भी है कि जिस तरह उम्मीदवार व मतदाता के लिये प्रतिज्ञायें रखी गई हैं वैसे ही चुनाव विभाग के अधिकारियो के लिये भी नियम रखे जावें कि वे भी सचाई और नैतिकता का व्यवहार रखेंगे।"

आचार्य कृपलानी का अभिमत

प्रजा समाजवादी नेता आचार्य जे० बी० कृपलानी ने अपने भाषण मे कहा—"जहां उम्मीदवार व मतदाता के लिये नियम रखे गये हैं, एक्जीक्यूटिव कमेटी के मेम्बरो के लिये भी नियम रखे जायें, क्योंकि टिकट तो ये ही देने वाले हैं, उसी तरह मंत्रियों के लिये भी नियम रखे जाने चाहियें कि वे सरकारी साधनों का चुनाव मे उपयोग न करें।"

अ० भा० अणुव्रत समिति के मंत्री श्री जयचन्दलाल दफ्तरी ने समागत नेताओं एवं अन्य महानुभावों के प्रति आभार प्रदर्शन किया। श्री छगनलाल शास्त्री ने आज के कार्यक्रम पर प्रकाश डाला।

चुनाव शुद्धि नियम

चुनाव संबंधी नियम परिवर्तन-परिवर्धन आदि के पश्चात् निम्नांकित रूप में देश मे सर्वत्र प्रसारित हुए—

उम्मीदवारो के लिये नियम

(१) रुपये-पैसे व अन्य अवैध प्रलोभन देकर मत ग्रहण नहीं करूंगा।

(२) किसी दल व उम्मीदवार के प्रति मिथ्या, अश्लील व भद्दा प्रचार नहीं करूंगा।

(३) धमकी व अन्य हिंसात्मक उपाय से किसी को मतदान के लिये प्रभावित नहीं करूंगा।

(४) मतगणना में पर्चियों हेर-फेर करवाने का प्रयत्न नहीं करेगा।

(५) प्रतिपक्षी उम्मीदवार और उसके मतदाताओं को प्रलोभन व भय आदि दिखाकर तथा शराब आदि पिलाकर तटस्थ करने का प्रयत्न नहीं करेगा।

(६) दूसरे उम्मीदवार या दल से अर्थ प्राप्त करने के लिये उम्मीदवार नहीं बनूंगा।

(७) सेवा-भाव से रहित केवल व्यवसाय बुद्धि से उम्मीदवार नहीं बनूंगा।

(८) अनुचित व अवैध उपायों से पार्टी टिकिट लेने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

(९) अपने प्रतिवर्ती (एजेन्ट) समर्थक और कार्यकर्ताओं को इन व्रतों की भावनाओं का उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दूंगा।

मतदाताओं के लिये नियम

(१) रुपये-पैसे आदि लेकर या लेने का ठहराव कर मतदान नहीं करूंगा।

(२) किसी उम्मीदवार या दल को झूठा भरोसा नहीं दूंगा।

(३) जाली नाम से मतदान नहीं करूंगा।

समर्थकों के लिये नियम

(१) अपने पक्ष या विपक्ष के किसी उम्मीदवार का असत्य प्रचार नहीं करूंगा।

(२) अनैतिक उपायों से दूसरे की सभा को भंग करने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

(३) उम्मीदवार सम्बन्धी सारे नियमों का पालन करूंगा।

चुनाव-अधिकारियों के लिये नियम

(१) अपने कर्तव्य-पालन में पक्षपात, प्रलोभन व भय को प्रश्रय नहीं दूंगा।

करूँगा।

आयोजन (१७)

संस्कृति का रूप

२८ दिसम्बर १९५९ को सायकालीन प्रार्थना के बाद सामूहिक ध्यान का कार्यक्रम रखा गया था। आचार्य प्रवर ने कहा—"आंख मूद लेना ही ध्यान नहीं है। ध्यान मे आत्म-शोधन के लिए चिन्तन होना चाहिये। प्रत्येक को यह सोचना जरूरी है कि समूचे दिन और रात मे किसी के साथ प्रतिकूल व्यवहार तो नहीं किया। यदि भूल हुई है, तो उसका प्रायश्चित्त किया या नहीं। उसके साथ साथ आगे उन भूलो को न दुहराने की प्रतिज्ञा या दृढ सकल्प भी करना चाहिये। यही यहां अपेक्षित है।"

ध्यान का कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ। साधु सब बैठे ही थे। आचार्य श्री ने कहा—"पांच मिनट का समय दिया जाता है। सब यह सोचें और मुझे बतायें कि सस्कृति क्या है?" आदेश पाकर सब सोचने लग गये। बारी बारी से एक एक से आचार्य श्री ने पूछना आरम्भ किया। तब सब ने अपने अपने विचार बताये। वे सक्षेप में इस प्रकार हैं —

१-—जीने की कला सस्कृति है।

२—जीवन की आनन्दानुभूति सस्कृति है।

३—विशुद्ध आचार परम्परा सस्कृति है।

४—प्रचलित परम्पराएँ संस्कृति हैं।

५—प्राप्त बुद्धि के विचार संस्कृति हैं।

जो विद्वान् आचार्य श्री से वार्तालाप करने आये थे उन्होंने चर्चा में रस लिया और अपने विचार भी व्यक्त किये। विद्वानों के अनुरोध पर दूसरे दिन भी इस विषय पर चर्चा करने का निश्चय किया गया। दूसरे दिन भी अनेक परिभाषाएँ सामने आईं। आचार्य प्रवर ने विषय को स्पष्ट करते हुए कहा—"यह विषय बड़ा जटिल है। अनेक परिभाषाएँ की गईं फिर भी समाधान नहीं हो सका। और विचार किया जाना चाहिये।

[illegible] (१

कार्यकर्ताओं का दायित्व

आचार्य प्रवर २९ सितम्बर १९५९ को कम्लीनगर से नया बाजार होकर नई दिल्ली पधारे। 'बारा खम्भा रोड' पर विराजना हुआ। दोपहर में श्री एन. [illegible] आचार्य श्री के दर्शन करने आये।

आचार्य श्री अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामन्त्री श्री श्रीमन्नारायण जी अग्रवाल के घर पधारे। वहाँ उनके साथ अत्यन्त आत्मीयता से बातचीत हुई। चुनाव के विषय में उन्होंने कहा—"अब की बार कांग्रेस के अधिवेशन पर जिस समय हो मैं अवश्य इसकी चर्चा करूँगा। श्रीमती सुचेता कृपलानी भी वहीं आ गईं। लगभग १ घंटे तक अनेक विषयों पर चर्चा हुई। उनके आग्रह पर आचार्य श्री ने वहाँ गोचरी भी की।

संसत् सदस्य श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के घर

श्री श्रीमन्नारायण जी के घर से लौटते वक्त नवीन जी का घर बीच में आ गया। उनके आग्रह पर थोडी देर आचार्य श्री वहाँ भी विराजे। कई प्रश्नोत्तर भी हुए। कविताएँ भी सुनाईं।

उसके बाद "भारत सेवक समाज" के केन्द्रीय कार्यालय मे उसके कार्यकर्ताओं के बीच प्रवचन करने पधारे। मन्त्री श्री चांदीवाला जी ने आचार्य श्री व साथ मे आये साधुओं का हार्दिक स्वागत किया।

भारत सेवक समाज में

भारत सेवक समाज दिल्ली की ओर से दोपहर में ३ बजे आचार्य श्री के सान्निध्य में एक सभा का आयोजन रखा गया, जिसमें भारत सेवक समाज के विभिन्न क्षेत्रीय सयोजकों तथा प्रमुख कार्यकर्ताओं ने भाग लिया।

प्रारम्भ में श्री छगनलाल शास्त्री ने अणुव्रत आन्दोलन की गतिविधि और चुनावों में अनैतिकता निवारण के लिये आचार्य श्री की ओर से प्रस्तुत किये गये कार्यक्रम पर प्रकाश डाला।

पश्चात् भारत सेवक समाज के अग्रणी श्री ब्रज कृष्ण चाँदीवाला ने कार्यकर्ताओं की ओर से आचार्य श्री का स्वागत किया। आचार्य श्री ने कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुये कहा—

"कार्यकर्ताओं पर बहुत बडी जिम्मेवारी है, बहुत बडा उद्देश्य उनके सामने है। इसके लिये सबसे पहले उन्हें अपना जीवन बनाना होगा। जब तक जीवन मे सत्यनिष्ठा, विश्वास, सादगी और सयतवृत्ति नहीं होगी, तब तक दूसरों को उनसे क्या प्रेरणा मिल सकेगी? आरामतलबी और सुविधावाद कार्यकर्ता के मार्ग में अवरोध पैदा करने वाले दुस्तर रोडे हैं जिनसे कार्यकर्ताओं को बचना है। कार्यकर्ताओं को यह अच्छी तरह समझ लेना है कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य चरित्रनिर्माण का है। देश के लोगों का चरित्र जब तक समुन्नत नहीं होगा, देश तब तक ऊंचा

नहीं बढ सकेगा। कितने खेद और आश्चर्य का विषय है कहाँ एक ओर बड़ी-बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में संलग्न दिखाई देता है दूसरी ओर उसका अपना जीवन बिखर जा रहा है उसका उसे भान तक नहीं। दीपक तले अंधेरा—जैसी विचित्र बात है।

कार्यकर्ताओं से एक विशेष बात मैं और कहूंगा कार्यकर्ता—पद, प्रतिष्ठा, और नाम की भावना उन में न हो। जहाँ ये भावनाएं आ जाती हैं वहाँ कार्यकर्ताओं का जीवन सुन्दर और आदर्श नहीं रह पाता। उसमें गिरावट आ जाती है। कार्यकर्ता इन बुराइयों से बचें।

आचार्य श्री के प्रवचन के पश्चात् श्री ब्रजकृष्ण चांदीवाला ने चुनावों में नैतिकता और अनैतिकता निवारण के लिये आचार्य श्री द्वारा उद्बोधित नियमों को कार्यकर्ताओं को पढ़कर सुनाया और कहा कि "भारत सेवक समाज की ओर से इन नियमों को हम प्रकाशित करेंगे। अपनी शाखाओं में इन्हें भेजेंगे, जिससे विभिन्न स्थानों पर लोगों को इनसे अवगत कराया जा सके।

अन्त में अ० भा० अणुव्रत समिति के मन्त्री श्री जयचन्द लाल दफ्तरी ने चरित्र-विकास के लक्ष्य को लेकर विभिन्न संस्थाओं के कार्यकर्ताओं से पारस्परिक समन्वय से काम करने की अपील की तथा इसके लिये अपने व अपने साथियों के सहयोग की भावना प्रकट की।

मैत्री दिवस का विराट समारोह

विश्वशान्ति की ओर एक ठोस कदम

आचार्य श्री के दिल्ली पधारने का लाभ उठाते हुये जो विविध आयोजन किये गये उनमे सब से अधिक महत्वपूर्ण आयोजन की व्यवस्था राजधानी के प्रमुख सास्कृतिक एव ऐतिहासिक स्थल पर की गयी। विश्ववद्य महात्मा गाधी की समाधि के कारण राजघाट को सहज ही में अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हो गया है और देशविदेश से आने वाले प्राय· सभी यात्री तथा राजनीतिज्ञ व कूटनीतिज्ञ उस समाधि के दर्शन करके अपनी पुष्पाञ्जलि अर्पित कर अपने को धन्य मानते हैं। ऐसे पुनीत स्थल पर आज के अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन की विशेष व्यवस्था की गयी। यह आयोजन था "मैत्री दिवस" का, जिसका प्रयोजन है वर्ष मे एक बार अपनी समस्त ज्ञात-अज्ञात भूलों तथा अपराधों के लिये एक-दूसरे से क्षमा माँग कर विश्व मैत्री के लिए वातावरण को पवित्र एव अनुकल बनाना। सम्भवत हमारे देश में महात्मा गाधी की हत्या से अधिक बडा कोई दूसरा अपराध मानव समाज के प्रति नहीं किया गया है। इसी कारण इस आयोजन की व्यवस्था राजघाट पर गान्धी जी की समाधि पर की गयी थी। आचार्य श्री की यह मान्यता है कि इस प्रकार मानव अपनी भूलों एव अपराधों का परिमार्जन करते हुए विश्वशाति की स्थापना मे बहुत बडा सहयोग दे सकता है और विश्व की एक महान समस्या के हल करने मे अपने कर्तव्य का यत्किञ्चित् पालन कर सकता है। विश्वशान्ति के प्रति उसकी सच्चाई और ईमानदारी का यह एक प्रबल प्रमाण हो सकता है। आचार्य श्री ने राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री तथा अन्य नेताओं एव विदेशी राजनीतिज्ञों के साथ भी इस सम्बन्ध

में जो चर्चा वार्ता की थी उसी का परिणाम यह शुभ मंगलमय आयोजन था और राष्ट्रपति ने इसका उद्घाटन करने के लिए अपनी सहर्ष सहमति प्रदान की थी।

१ सितम्बर १९५५ प्रातः बाराखंबा रोड से चलकर आचार्य श्री दरियागंज में श्री प्रभुदयाल जी डाबड़ी वालों के मकान पर थोड़ी देर विराजे। वहाँ से महात्मा गांधी की समाधि राजघाट पर पधारे। स्विटजरलैंड के राजदूत मोसियो ह्यूगो बालमना ने वहाँ आचार्य श्री के दर्शन किये। उनसे लोगों ने "मैत्री-दिवस" के उपलक्ष में बोलने के लिये कहा। वे सहमत न हुए। परन्तु आचार्य श्री से समारोह की पूरी जानकारी पाकर बोलने के लिए सहमत हो गये।

प्रधानमन्त्री श्री नेहरू ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी और कृष्णा बहिन को विशेष रूप से आयोजन में सम्मिलित होने के लिये भेजा था। उन्होंने आचार्य श्री से कुछ बातचीत की। थोड़ी ही देर में राष्ट्रपति भी पधारे। आचार्य श्री व राष्ट्रपति जी साथ-साथ सभास्थल पर आकर विराजे।

करीब ढाई-तीन हजार की उपस्थिति थी। अत्यन्त मनोरम वातावरण में कुछ मान्य व्यक्तियों का पाठ करने के बाद आचार्य श्री ने अपना स्फूर्तिप्रद भाषण प्रारम्भ किया।

विश्वव्यापी आतंक और उसका उपाय

"राष्ट्रपति जी भाइयो और बहिनों !

आज हम सब यहाँ मैत्री-दिवस मनाने के लिये एकत्रित हुये हैं। मैत्री की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं सभी लोग इससे परिचित हैं। मित्र के नाम में ही स्वयं कितना प्यार भरा हुआ है और मित्र के साथ बात कर हर मनुष्य कैसे स्वर्गीय सुख का अनुभव करता है जैसा बसन्त और बहारों में रस भरता होगा। वास्तव में मैत्री कितनी सुन्दर होती है। पर आज लोग इसे भूलते जा रहे हैं। अतः आवश्यक है कि

हम उन्हें पुन सचेत करें। इसीलिये आज मैत्री-दिवस समारोह रखा गया है।

आज दुनिया की स्थिति के बारे में कुछ भी कहना आवश्यक नहीं है क्योंकि नये-नये वैज्ञानिक साधनों के कारण ससार के एक क्षेत्र की बात दूसरे क्षेत्र मे आसानी से अति शीघ्रतया जानी जा सकती है अत सभी लोग स्थिति से परिचित हैं ही।

आज लोगों के दिमाग मे दो बातें है। पहली—अपने जीवन की सुरक्षा का भय और दूसरी भविष्य की आशका। इसी कारण आज मनुष्य आतकित है। राष्ट्रो मे भी एक दूसरे के प्रति भय का वातावरण फैला हुआ है।

पडित नेहरू के विचारो से हमने जाना कि अन्तर्राष्ट्रीय तनाव अब कुछ कम है। परन्तु स्थिति अब भी विषम बनी हुई है। इसका मूल कारण क्या है? इसका मूल है—भय। भय का भूत जब मनुष्य के सिर पर सवार हो जाता है तो मनुष्य अपने को भूल जाता है। उससे उसमे अविश्वास बढ़ता है। उसी के गर्भ मे से शीतयुद्ध पैदा होता है और आगे चलकर वह "गर्म युद्ध" के रूप में परिवर्तित हो जाता है। विचारो का युद्ध साक्षात् युद्ध का रूप ले लेता है।

मनुष्य युद्ध के परिणामो से परिचित है। अत वह उससे भयभीत है। कोई यह नहीं चाहता कि युद्ध हो। अत कई लोग इस विषय पर अपनी अपनी दृष्टि से सोचते हैं, पर मिलता कुछ नहीं। लोग सही कारण सोच नहीं पाते। इसका कारण भी भय है।

मैंने भी इस पर विचार करने का प्रयास किया है, मुझे तो यही लगा कि उसका मूल कारण केवल भय ही है। शस्त्रास्त्रों की तैयारी का मूल कारण भी भय ही है। यदि मनुष्य भयहीन हो तो शस्त्रास्त्रों की तैयारी का कोई प्रश्न पैदा ही नहीं होता। आज सब लोग शांति की बात करते हैं। पर शांति की इन बातों में भी परस्पर कटाक्ष और आक्षेप होते हैं। यह सर्वथा अवांछनीय है। मैंने सोचा—यह क्या है?

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह भय संसार में अथवा आम जनता में नहीं है, केवल कुछ व्यक्तियों में है, जो नेता हैं और जिन पर संसार के नीति निर्धारण अथवा उसके निर्माण की जिम्मेदारी है। आम जनता भय को नहीं जानती। वह अपने वर्तमान युद्ध पर ज्यादा सोचती है। पर इन नेताओं के चिन्तन से भय पैदा होता है और बढ़े हुये वैज्ञानिक साधनों के द्वारा उसका प्रचार होने में देरी नहीं लगती।

भय से भय बढ़ता है, वैर से वैर बढ़ता है। अतः अवैर-अहिंसा के द्वारा ही वैर-हिंसा खत्म हो सकती है। सत्य और अहिंसा जो भारतीय संस्कृति का मूल है और कोई भी धर्म जिसके बिना नहीं चल सकता— शांति का रास्ता है। मैं मानता हूँ सब धर्म एक नहीं हो सकते सब राजनीति भी एक नहीं हो सकती। अतएव पंचशील के सिद्धांत सामने आये और सहअस्तित्व की भावना का उदय हुआ। पर यह तब सभी कामयाब हो सकता है, जबकि इसकी नींव में सत्य और अहिंसा हो। जिस प्रकार बिना नींव के मकान नहीं खड़ा रह सकता उसी प्रकार बिना भूमिका के सहअस्तित्व भी नहीं ठहर सकता। प्रश्न यह हो सकता है कि वह भूमिका क्या है? मेरी समझ में वह भूमिका है

सद्भावना, सहिष्णुता और समन्वय।

इन तीन बातों के आधार पर अभय की बड़ी इमारत खड़ी की जा सकती है। पर इन्हें भी कैसे पैदा किया जाय। क्योंकि सहिष्णुता से सद्भावना, सद्भावना से समन्वय और उससे अभय यह शांति का मार्ग है। इन्हें लाने के लिये और भी बड़े बड़े तरीके हो सकते हैं पर यह सब बड़े आदमियों का काम है। हम अकिंचन और पैदल चलने वाले इसे कैसे सोचें? इन बड़े-बड़े सोचने वाले आदमियों में राष्ट्रपति भी एक हैं, जो अभी हमारे बीच में उपस्थित हैं। हमने सोचा—बड़ी-बड़ी नहीं छोटी योजना ही अपने हाथ में लें जिससे मानव के मध्य जन संसार का कुछ पथ-प्रदर्शन हो सके। जब घूमते और अनेकों विचारकों से बात करने के बाद आखिर एक रास्ता हमें सूझ पड़ा कि कम से कम हम लोगों में इसके

सम्बन्ध मे एक भावना को पैदा करें और उसी भावना को लोगों के सामने रखने के लिये 'मैत्रीदिवस' का आयोजन किया जाए। मैं यह मानता हूँ कि यह कोई रामबाण दवा नहीं है परन्तु एक रास्ता जरूर है। इसके लिये हम एक दिन तय करें कि जिस दिन मनुष्य कुछ याद करे और कुछ भूले भी। होना तो यह चाहिये कि मनुष्य अपनी प्रतिदिन की दिनचर्या को देखे। जिस प्रकार एक व्यापारी रोज अपना खाता मिलाता है और साधु रोज अपनी भूलों के लिये प्रतिक्रमण करते हैं, उसी प्रकार हर एक अपने प्रतिदिन के जीवन की आलोचना करे। लोगों के लिये कम से कम एक दिन तो ऐसा हो, जिस पर वे वर्ष भर मे हुई अपनी भूलो की क्षमा दूसरों से मांगे और दूसरों को अपनी ओर से क्षमा करें।

मैत्री बड़े सुख का कारण है पर वह तब तक नहीं हो सकती, जब तक कि मनुष्य विगत की अपनी भूलों को भूल जाने के लिये विनम्र और क्षमाशील नहीं हो जाता, साथ साथ मे दूसरो को स्वय भूलने का प्रयास नहीं करता।

यह कार्यक्रम ऊपर और नीचे दोनों ओर से होना आवश्यक है। (ऊपर याने बड़े लोगों से और नीचे यानी सामान्य लोगों से) यद्यपि मेरी दृष्टि में मनुष्य ऊँचा और नीचा कोई नहीं होता, पर आम दृष्टि से यह दोनो ओर से होना आवश्यक है। ऊँचे लोगों के लिये तो यह और भी जरूरी है क्योंकि ऊपर का पानी स्वय नीचे आता है। बड़े लोगों में यदि क्षमा की भावना पैदा होगी तो छोटे लोग तो उनका अनुकरण अवश्य करेंगे। अत मैं दोनो ही से कहूँगा कि वे इस बात पर गहराई से सोचें। इसके लिये तीन बातें जरूरी हैं—

(१) प्रत्येक मनुष्य अपनी ओर से सारे प्राणियों को अभय दान करे।

(२) अपनी भूलों के लिये दूसरों से क्षमा याचना करे।

(३) दूसरों की भूलों को स्वय क्षमा करे।

मैं मानता हूँ, यह कोई बड़ी बात नहीं है, एक छोटी सी बात है।

पर हमें आदि में छोटे काम से शुरू करना चाहिये। आगे चलकर यह स्वयं बड़ा बन जाता है। अतः आज हम इसका प्रयोग करें। यह छोटा आरम्भ भी आगे बड़ा रूप ले सकता है।

आज के लिये दो बातें

अभी अभी राज्य पुनर्गठन को लेकर देश में जो कटुता फैली वह किसी से छिपी नहीं है। सामने चुनाव का प्रश्न आ रहा है। उसमें भी कटुता की संभावना हो सकती है। अतः भूत और भविष्य के बीच आज हम मैत्री की ऐसी भावना बनायें जिससे एक सुन्दर वातावरण बन जाय।

अणुव्रत आंदोलन के द्वारा हम जो कुछ कर रहे हैं, उससे इन दोनों बातों के प्रसार का अच्छा मौका मिलता है।"

विश्वमैत्री का महत्त्व

राष्ट्रपति ने अपने भाषण में कहा—

"आचार्य जी ! भाइयो तथा बहिनो !

सबसे पहले मैं आपको इस मंगल दिवस के आयोजन के लिये बधाई देना चाहता हूँ।

मैं मानता हूँ कि हमारे देश में आज अधिक से अधिक जिस चीज की आवश्यकता है वह है मैत्री। अतः उसके लिये जो कुछ भी किया जा सके, वह स्वागत करने योग्य है। मैं सोचता था कि आपके पत्र-पत्रिकाओं में जो 'फ्रैटरनिटी' शब्द का प्रयोग हुआ है और दूसरी भाषा में जिसको हमने मैत्री कहा है, इसमें कोई भेद है या दोनों एक ही हैं। फ्रैटरनिटी का अर्थ है—भ्रातृभाव। वह जन्मजात होता है। क्योंकि एक मनुष्य जन्म से ही दूसरे मनुष्य का भाई है। अतः उनके बीच में जन्म से ही एक दूसरे के साथ भ्रातृभाव होना चाहिये और होता भी है। पर हम सोचते हैं कि कई बार भाई-भाई में भी इतना वैमनस्य हो जाता है कि उसका कोई ठिकाना नहीं रहता। उनके आपस में मिलने की

मैत्रीभाव कहते हैं। अत हम देखते हैं कि मैत्रीभाव जन्मजात नहीं होता। उसे स्वेच्छापूर्वक लाया जा सकता है। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति, एक समाज का दूसरे समाज के प्रति और एक प्राणी का दूसरे प्राणी के प्रति। अत यह भ्रातृभाव से ज्यादा है और स्वेच्छापूर्वक होने से जब तक कायम रखना चाहें, रखा जा सकता है। जैसे इसका जन्म स्वेच्छा से होता है वैसे ही अत भी। अतएव यह आवश्यक हो जाता है कि मैत्रीभाव को केवल जन्म ही नहीं पोषण भी दिया जाय। इस के लिये निरतर प्रयत्न और प्रयास किया जाना चाहिये। आज के कार्यक्रम का महत्त्व स्वय स्पष्ट है और इसीलिये मैंने इसका स्वागत किया। आशा करता हूँ कि भविष्य मे भी इसे जारी रखा जाए और अधिक बढ़ाया जाये।

आचार्य श्री ने यह ठीक ही कहा कि मनुष्य अपने हृदय मे ही भय को पैदा करता और बढ़ाता है। आज जो शस्त्रास्त्र बनाये जा रहे हैं, उनका भी यही कारण है। एक राष्ट्र सोचता है, मेरे पास दूसरे से कम शस्त्र हैं। अत वह उनके बढ़ाने के प्रयास मे लग जाता है। फिर वह उससे कुछ आगे बढ़ना चाहता है और बढ़ जाता है। इससे एक बात और पैदा होती है कि फिर वह किसी दूसरे को बडा देखना नहीं चाहता। इस प्रकार एक दूसरे को दबाने के लिये अनेक राष्ट्र खडे हो जाते हैं और अशाति पैदा कर देते हैं। इसी कारण जो प्रयत्न आज चल रहे हैं, उनसे लाभ नहीं होता। हमारे देश मे यह कहावत प्रचलित है, कि कीचड को कीचड से नहीं धोया जा सकता। उसे धोने के लिये तो जल की आवश्यकता होती है। हिंसा को हिंसा से नहीं, अहिंसा से मिटाया जा सकता है। हिंसा को हिंसा से मिटाने की कोशिश की गई तो वह दूसरा कदम भी हिंसा ही हो जाता है। फिर उसे मिटाने के लिये हिंसा की गई तो तीसरा कदम भी हिंसा हो जायगा। इस प्रकार हिंसा का कोई अत नहीं हो सकता। अगर उसे पहले ही कदम में रोक दिया जाय तो वहीं पर उसकी जड खत्म हो सकती है। इस प्रकार मैत्री भावना हिंसा को

जड़ से निकाल सकती है। इतिहास में हम इसके एक नहीं अनेक उदाहरण देख सकते हैं।

उन्नति एक-मुखी नहीं हो सकती। वह चतुर्मुखी होती है। हमें शिक्षा और सम्पत्ति सृजन में ही नहीं भावना में भी उन्नति करनी चाहिये। आज भारत के लिये एक नवयुग है क्रान्ति का युग है, जिसमें हमें हर प्रकार की उन्नति करनी है। उसमें हमारी सद्भावना सबसे अधिक जरूरी है। उसके बिना और किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती। विष को बोकर हम उससे विष ही पायेंगे अतः हमें उसे जड़ से ही सुधारना है जिससे आगे हमें सुन्दर फल मिले।

यह हमारे देश के सौभाग्य की बात है कि धर्माचार्यों के मन में यह भावना पैदा हुई है। सम्प्रदाय से उठकर वे समस्त मानव समाज के लिये काम करते हैं। वैसे वे जो कुछ करें सो करें। पर उसकी जड़ में सद्भावना रखें। यदि यह प्रयास सफल हो गया तो सब अन्य प्रयास भी सफल हो जायेंगे।

आपके आन्दोलन का मैं हमेशा से समर्थक रहा हूँ और इसके लिये आज अगर मुझे कोई पद देना चाहें, तो मैं समर्थक का पद लेना चाहूँगा।

हमारी पुरानी परम्परा है कि यहाँ देश और विदेश से अनेकों मत धर्म आये। उन्हें देश भर के लोगों ने ग्रहण करके रखा। भाषा की दृष्टि से भी एक भारत में ही उतनी भाषाएँ बोली जाती हैं जितनी कि सारे यूरोप में। धर्म के सम्बन्ध में भी संसार में जितने धर्म हैं उनके अनुयायी लाखों की संख्या में हमारे यहाँ रहते हैं। इसी प्रकार रहन-सहन और पहनावे की दृष्टि से भी अनेक प्रकार के लोग हमारे देश में बसते हैं। इन सबसे मिलकर हमारी संस्कृति बनी है। सहिष्णुता को हमने हमेशा आदर्श माना है, यह केवल विचारों में ही नहीं जीवन में भी। इसी का फल है कि हमारे देश में जितना वैविध्य है, उतना और किसी दूसरे देश में नहीं है। हिन्दुओं की विधि में केवल इतना नहीं है कि वह

किसी विधान विशेष को ही मान्यता दी है। एक प्रांत और एक जाति मे ही नहीं, एक खानदान मे भी अलग-अलग रिवाज हैं और हिन्दू विधि ने उन सबको मान्यता दी है। यह सहिष्णुता के विना कैसे सभव हो सकता था। अत हमारी यह परपरा आपस में घुल-मिल गई है। आज तो इसके वारे मे हम जानने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। इसीलिये हमारा ससार के प्रति उत्तरदायित्व अधिक हो जाता है कि हम अपनी भावना सब लोगों में पहुंचाएं। यह हमारी परपरा के रूप मे चली आई है। प्रश्न यह है कि आज हम इसको आधुनिक जामा कैसे पहनाए, जिससे मानव समाज इसे समझे और अपनाए।

महात्मा जी ने यही काम किया था। उन्होंने प्राचीन चीजों को नई भाषा में रखा। हम लोगों ने, जो पश्चिमी रग मे रग गये थे— उसका महत्व समझा और विदेशों में तो इसमे कई लोग हम से भी अधिक रस लेते हैं। आज उसी वात को जागृत करने का आचार्य जी ने प्रयत्न किया है और कर रहे हैं। मैं इस प्रयत्न का स्वागत करता हूं।

मैत्रीदिन के पीछे उसे परिपुष्ट करने का और भी तौर-तरीका सोचा जाना चाहिये। मुझे विश्वास और आशा है कि इस काम मे अपने को सभी प्रकार के लोगों की सद्भावना मिलेगी क्योंकि यह दिल की वात है, जो आज कुछ ढक गई है पर वहुत जल्दी ही उसका ढका जाना दूर हो सकता है और वह वहुत प्रकाश देगी। अन्त में मैं यही आशा करता हूं कि आपका यह प्रयास सफल हो।"

इसके वाद फिनलैण्ड के राजदूत मोसिय ह्यूगो वालवन्ना तथा रामकृष्ण मिशन दिल्ली के स्वामी रगनाथानद जी ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये। अन्त मे अणुव्रत समिति के मत्री श्री जयचद लाल दफ्तरी ने सव को धन्यवाद दिया और वडे ही उल्लासित वातावरण मे आयोजन सानन्द सम्पन्न हुआ।

आयोजन सम्पन्न होने के वाद वहां से आचार्य श्री हैदरकुली में लाला द्वारकादास मगलराम के यहां पधारे। आहार के वाद कई घरों में

मभिनवन विदधाना श्रमन्दमानद सन्दोहमनुविन्दाम । श्रार्यावर्तमिम निखिलभूमण्डलमौलिमण्डनतामापादयन्त्यस्याध्यात्मिकी परम्परा भवादृशैरेव तपोराशिभिरहर्दिवमुपचीयत इति न कस्याप्यविदित । श्राणवशारुणा-द्यस्त्रजालसजातमहाप्रयलातक शके विनाशजलधराक्रांत इवास्मिन् धरणीतले समीरायते श्रीमतां वाणी । एकतोऽणुव्रतान्दोलन समुत्तोलनेन सर्वमि जीवनम् श्रन्यतश्च मैत्रीभावनाप्रसारणेन परस्परोपग्रहमुपदिशन्ती श्रीमतामुपदेशपयस्विनी द्वेषदावानलशान्तये धरणीतलमाप्लावयन्तीव दरीदृश्यते ।

मुनिवर्या

श्रीमतां कठोर सयम, निवृत्तिप्रधानानि व्रतानि प्रतिपद निग्रहन्तीं च दिनचर्यामालोकमालोक प्राचीनभारतीय सस्कृते रादर्श प्रत्यक्षमिव समालोकमाना भृश गौरवमनुभवाम । सन्यासाश्रम स्थितेनाऽपि लोकोद्धार परायणेन मनस्विना किक तु शक्यत इति भवता महान् श्रादर्श उपस्थित । दर्शितच श्रीमता यल्लोकसेवा निवृत्त्योर्नास्ति कश्चनविरोध । यदि भारतीय सन्यासिवर्ग श्रीमतां चरण चिन्हाननुवर्तेत, भारत पुनरपि निखिललोक-मूर्धन्यता समासादयेत् इति नास्ति सन्देहलवोऽपि ।

विद्यानिधय,

भवादृशै मन्त्रद्रष्टृभिर्जीवनस्य यानि रहस्यानि साक्षात्कृतानि दीर्घ-काालमननेन यानि तत्वानि सदासादितानि, 'सत्यम् शिव सुदरम्' स्वरूपाया भारतीयसस्कृते प्रसाराय ये य उपाया समालम्बिता, श्रार्याणां धर्मतरौ यानि यानि सुरभीणि पुष्पाणि विकासितानि मधुराणि च फलानि समुद्भावितानि, तानि सर्वाणि गीर्वाणवाण्यां सन्निबद्धानीव राराजन्ते । सभ्यताया समुन्मेषकालादारभ्य श्रद्यावधि सर्वेषां सस्कृति समुत्थापकानां स्वरोऽनयैव तन्व्या जेगीयमान श्रूयते । भारतस्य सांस्कृतिक समुत्थानेन समेहमपि सुख समुच्छ्वसेतेति स्वाभाविकम् । तदर्थं भवादृशां ज्योति-र्धराणां कृपाकटाक्ष मपेक्षते । श्रीमता चरण चचरीका —

अखिलभारतीय सस्कृत साहित्य सम्मेलन सदस्या

ऋषियों का मार्ग

आचार्य प्रवर ने उत्तर में बोलते हुए कहा—

भारतीय संस्कृति में वही मार्ग अनुकरणीय है जिस पर ऋषि और महात्माओं के पद-चिन्ह जिस पर पड़े। यह मार्ग है आत्मचेतना और अन्तर जागृति का। यह वह सरणि है, जिस पर भारतीय परम्परा का इतिहास अवस्थित है। चाहे कैसा भी युग क्यों न हो, इस युग परम्परा का सर्वथा विलोप भारतीयों में हो नहीं सकता। उस पर आवरण पड़ सकता है जैसा कि इस समय पड़ रहा है। इसलिए मैं विद्वानों से कहूँगा कि भारत की अन्तर जागृतिमयी संस्कृति के परिवर्द्धन और परिपोषण के लिये दृढ़-प्रयत्न होते हुए वे राष्ट्र की अध्यात्म परम्परा को आगे बढ़ाएँ, अपना निजी जीवन उस पर ढालें और औरों को भी इस ओर प्रेरित करें। आप लोगों ने मेरा अभिनन्दन किया। आप जानते हैं, मैं एक अकिंचन व्यक्ति हूँ पादचारी हूँ वैभव विलास से सर्वथा शून्य। मेरा कैसा अभिनन्दन है? मैं चाहूँगा कि जन जागृति के जो उदात्त विचार मैं देना चाहता हूँ जिनको लेकर मैं चल रहा हूँ उन्हें आप अपने जीवन में उतारें, औरों तक पहुँचाने में सहयोगी बनें। इसको ही मैं सच्चा अभिनन्दन मानूँगा।

साहित्य गोष्ठी का भी आयोजन किया गया था। मुनि श्री नथमल जी, श्री बुद्धमल जी तथा श्री नगराज जी ने उपस्थित विद्वानों द्वारा दिये गये विषयों और समस्याओं पर तत्काल संस्कृत में आशु कविताएँ कीं। मुनि श्री नथमल जी, प० वासुदेव शास्त्री एम ए एम ओ० एल प्रो एस कृष्णमूर्ति, डा सत्यव्रत व्याकरणाचार्य एम ए पी एच डी, श्री जगन्नाथ शास्त्री काव्यतीर्थ श्री धर्मदेव शास्त्री तथा आचार्य श्यामलाल शास्त्री ने संस्कृत में भाषण दिये।

मुनि श्री दुलीचन्द जी श्री सुखलाल जी, मणिमित्र तथा बच्चन ने कविता पाठ किया।

साहित्य गोष्ठी

४ जनवरी १९५७ को ६ बजे आचार्य श्री के अभिनन्दन के निमित्त हिन्दी भवन की ओर से १६ बाराखम्भा रोड पर साहित्यकारों एव कवियो की विशेष गोष्ठी का आयोजन किया गया । जीवन साहित्य के सम्पादक श्री यशपाल जैन ने अभिनन्दन भाषण दिया ।

मुनि श्री नथमल जी, श्री दुलीचन्द जी, श्री बुद्धमल जी, श्री नगराज जी, श्री सागरमल जी, श्री हर्षचन्द जी, श्री मानमल जी, श्री मनोहरलाल जी तथा श्री गोपीनाथ जी अमन, श्री ललित मोहन जोशी, श्री रमेशचन्द, श्री रामेश्वर अशांत आदि कवियो ने अपनी कविताएँ प्रस्तुत कीं ।

आचार्य प्रवर ने कवियों एव साहित्यकारो को उनके महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व मे अवगत कराते हुए कहा कि—स्वय अपने जीवन को आत्मनिर्माण मे लगाते हुए जन-जन को अन्तर्मुख बनाने मे वे अपनी प्रतिभा और कल्पना को सत् प्रयुक्त करें । अणुव्रत आन्दोलन आत्मनिर्माण और अन्तर्मुखता का आन्दोलन है, जिस पर उन्हें मनन एव अनुशीलन करना है ।

अन्त मे हिन्दी भवन की मन्त्रिणी श्रीमती सत्यवती मलिक ने आभार प्रदर्शन करते हुए कहा—

मैं यह नहीं समझती थी कि आपके सत इतनी गभीर एव हृदयस्पर्शी कवितायें करते हैं । आपके सघ में साहित्य विकास का जो सर्वतोमुखी प्रयास चल रहा है, वह स्तुत्य है । मैं उससे बहुत प्रभावित हुई ।

———

विदाई समारोह

महत्वशील साधना

७ जनवरी १९५७ को आचार्य श्री दिल्ली से राजस्थान के लिए प्रस्थान करेंगे इसलिये ६ जनवरी १९५७ को प्रातःकाल कान्स्टीट्यूशन भवन में सैकड़ों भाई बहिनों की उपस्थिति में विदाई समारोह का आयोजन किया गया। सब के मुख पर खेद-मिश्रित प्रसन्नता दीख रही थी। प्रसन्नता इसलिये थी कि आचार्य प्रवर का दिल्ली प्रवास पूर्ण सफल रहा। देश में ही नहीं विदेशों में भी नैतिक भावना का काफी प्रसार हुआ। खेद इसीलिये था कि आचार्य श्री उन्हें छोड़ कर जा रहे हैं। आचार्य श्री का विदाई सन्देश सुनने के लिये सभी उत्सुक थे। आचार्य श्री ने कहा—

"मैं उस साधक, साधना और प्रगति को अधिक महत्वशील मानता हूँ जो केवल अकेला ही अपना-पथ पर न बढ़ता हुआ औरों को भी उस विकास और प्रगति की राह पर बढ़ने की प्रेरणा दे। यही कारण है कि अणुव्रत आन्दोलन के रूप में जन-जन के अन्दर आचरण का कार्यक्रम लिये मैं पर्यटन कर रहा हूँ। मुझे प्रसन्नता है कि आंदोलन की भावना दिल्ली के विभिन्न क्षेत्र वर्ग और समाज के लोगों में व्यापक रूप से फैली। मैं मानता हूँ दिल्ली केवल एक राष्ट्रीय ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र है और मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि ऐसे क्षेत्रों में इस प्रकार के नीतिनिष्ठ और चरित्र विकास के कार्यक्रमों का ज्यादा से ज्यादा फैलाव हो। मैं कहना चाहूँगा कि नैतिक भावना का दिल्ली में जो प्रसार हुआ है लोग उसे भूलें नहीं।

जातीयता और ऊँच नीच की भावना ने राष्ट्र का बहुत विनाश किया

है। अणुव्रत आंदोलन साम्प्रदायिक मतवाद और जातीय कटुता से दूर जीवन-जागरण का प्रशस्त पथ है, जिस पर मानव मात्र को चलने का अधिकार है। यह धर्म का व्यावहारिक रूप है, जिसकी जन-जन मे महती आवश्यकता है, क्योंकि धर्म के ऊँचे सिद्धात जब तक जीवन मे नहीं उतरते, तब तक उसका केवल नाम रहने से कुछ बनने का नहीं है।

यहाँ के कार्यक्रमों को पूर्ण सफल बनाने मे यहाँ पर स्थित मुनि श्री नगराज जी, मुनि श्री महेन्द्र जी तथा उनके सहयोगी संतों ने बहुत परिश्रम किया, बहुत से व्यक्तियों से संपर्क साधा और आदोलन की भावना उन्हें समझाई। साथ-साथ यहाँ के स्थानीय कार्यकर्ताओं तथा इस अवसर पर बाहर से आये हुये कार्यकर्त्ताओं ने भी नैतिक भावना के प्रसार में बहुत परिश्रम किया है। इससे दूसरो को भी प्रेरणा लेनी चाहिये। धार्मिक तत्त्वों का प्रचार करना जीवन का भी ध्येय होना चाहिए।

मुनि श्री नगराज जी और मुनि श्री महेन्द्र जी ने भी इस अवसर पर अपने विचार प्रकट किये। श्री मोहनलाल जी कठौतिया, श्री जयचन्दलाल जी दफ्तरी तथा प्रो० एम० कृष्णमूर्ति ने भी अपने श्रद्धा-भक्ति सम्पन्न भाव व्यक्त किए।

आयोजन (२३)

पिलानी में संस्कृत साहित्य गोष्ठी

आकाश प्रात काल से ही प्राय मेघाच्छन्न था। रुक-रुक कर बूँदें पड रही थीं। आशंका थी कि कहीं आज के कार्य-क्रम मे विघ्न न आ जाए। आज १८ जनवरी १९५७ का प्रात कालीन आयोजन बिरला माटेसरी पब्लिक स्कूल मे था। उसके बाद वर्षा जोर से पडने लगी।

गोष्ठी भी पूरी तरह से नहीं हो सकी। अतः ग्यारह बजे का सेण्ट्रल आडिटोरियम हॉल के प्रवचन का कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा। इधर हाल मे विद्या विहार के हजारो छात्र इकट्ठे हो गये थे। जब उन्हें पता चला कि आचार्य श्री आज नहीं आ सकेंगे तो उन्हें निराशा हुई। आचार्य श्री के इधर के कार्यक्रमो से वे परिचित थे अतः प्रवचन सुनने के लिये अति उत्सुक थे। पहले दिन कुहरे के कारण आने मे देर हो गई थी। दूसरे दिन वर्षा के कारण प्रवचन नहीं हो सका था। दूसरे कार्यक्रम भी नहीं हो सके थे। लोगो मे इतनी उत्कंठा थी कि अगर आचार्य श्री बाहर नहीं आ सकें तो वहाँ उनके स्थान पर ही कुछ कार्यक्रम कर लेना चाहिए। किन्तु यह भी नहीं किया जा सका। अतः उसी दिन तीसरे पहर चार बजे 'संस्कृत साहित्य गोष्ठी' का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। गोष्ठी मे बिरला विद्या विहार के संस्कृत प्राध्यापक, श्याम वेद वेदांग संस्कृत महाविद्यालय के पण्डित छात्र एवं आयुर्वेद कालेज के विद्वान् व विद्यार्थी सोत्साह उपस्थित थे।

सर्व प्रथम मुनि श्री दुलीचन्दजी ने सुमधुर स्वर से एक संस्कृत गीतिका का गान किया। पश्चात् श्री कन्हैयालाल शास्त्री काव्यतीर्थ ने आचार्य प्रवर के निर्देशन मे साधु साध्वीगण मे चल रही संस्कृत साहित्य के बहुमुखी विकास अनुशीलन साहित्य सृजन आदि विविध प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला। वेद वेदांग संस्कृत महाविद्यालय के प्रधान आचार्य श्री अनन्तदेव शास्त्री व्याकरणाचार्य ने आचार्य प्रवर के प्रति सम्मान मे भाषण किया। वेदवेदांग संस्कृत महाविद्यालय के एक छात्र श्री रामस्वरूप शर्मा ने संस्कृत प्रचार के विषय में अपने विचार प्रकट किये। मुनि श्री सुखलाल जी ने संस्कृत भाषा की उपयोगिता के बारे मे बताया। मुनि श्री नथमल जी तथा मुनि श्री बुद्धमल जी ने तत्काल प्रदत्त विषयों पर आशु कविता की।

मुनि श्री नथमल जी ने अपने भाषण मे बताया—आज जो पण्डितों और प्रोफेसरों का भेद है यह जब तक नहीं मिट जाता तब तक संस्कृत

भाषा प्रगति नहीं कर सकती। पण्डित लोग केवल व्याकरण मे उलझे रहते हैं और प्रोफेसर लोग व्याकरण की उपेक्षा कर देते हैं। ये दोनो पक्ष उचित नहीं हैं। व्याकरण ही कोई भाषा नहीं है और व्याकरण की उपेक्षा से भी भाषा नहीं बन सकती। अत मध्यम मार्ग ऐसा होना चाहिये, जिससे यह भेद मिटे और सस्कृत भाषा विकास कर सके। सस्कृत का महत्व केवल इसलिये ही नहीं कि वह लालित्यमयी भाषा है। इसका महत्त्व इसलिये है कि इसके साहित्य मे अध्यात्म अनुभूति उचित मात्रा मे प्रस्फुटित हुई है।

मुनि श्री ने अपनी आशु कविता मे सस्कृत की गरिमा गाते हुए कहा—आज देवता तो हमारे सामने हैं नहीं, जिनसे हम उनकी वाणी को जान सकें और इधर सस्कृत को लोग देव-भाषा मानते हैं तो यहां मैं "क प्रमाण मन्ये"—किसको प्रमाण मानूं ?

इतना सुनते ही वहां उपस्थित एक सस्कृत पण्डित आवेश में आकर बोल उठे—यहां आपने "प्रमाण" शब्द का जो नपुसक लिंग का है, पुल्लिग 'कम्' विशेषण कैसे कर दिया। मुनि श्री ने उन्हें समझाया कि यह प्रमाण का विशेषण नहीं है। यहां मैंने "क पुरुष प्रमाण मन्ये" इस पुरुष शब्द को ध्यान मे रखकर क विशेषण का प्रयोग किया है। पण्डित जी विवाद करने पर उतारू हो गये। कहने लगे—बिना विशेष्य के आपने विशेषण का प्रयोग कैसे किया ? मुनि श्री ने उन्हें समझाया—ऐसा होता है, यह साहित्य का दोष नहीं है। वे कहने लगे पद्य मे ऐसा नहीं होता। चर्चा मे कुछ तेजी पैदा हो गई। पण्डित जी ने फिर आवेश मे पूछा कि देव कौन होता है ?

मुनि श्री ने कहा—हम तो अपने आगमों पर श्रद्धाशील हैं अत मानते हैं कि देव भी होते हैं।

उन्होंने कहा—नहीं, यह बात गलत है। देव तो वे ही हैं, जो सस्कृत भाषा बोलते हैं। फिर बहस चल पड़ी। उन्हें समझाया गया कि केवल सस्कृत बोलने वाले ही देव नहीं होते। अगर इसी से देव हो जाते

हाँ तो हम मनुष्य भी देव हो जायेंगे जो संस्कृत बोलते हैं, पर ऐसा नहीं है। हम मनुष्य हैं, यह स्पष्ट है। मुस्कराते हुये आचार्य श्री ने कहा—यदि संस्कृत में बोलनेमात्र से ही कोई देव हो जाता हो तब तो विदेशों में भी अनेक लोग संस्कृत बोलते हैं। क्या वे देव हो गए?

इसकी बार पंडित जी सकपकाये। कहने लगे—नहीं, देव तो भारतवासी ही हो सकते हैं। वे तो सब म्लेच्छ हैं। आचार्य श्री ने कहा तब आप संस्कृत बोलनेमात्र से किसी को देव कैसे मान लेते हैं? यदि मानते हैं तो उन्हें भी आप को देव मानना पड़ेगा। वे कहने लगे—नहीं वे संस्कृत बोलते तो हैं पर उनका संस्कृत के प्रति अनुराग और विश्वास नहीं है।

आचार्य श्री—नहीं, यह बात गलत है। अनेक विदेशी विद्वान् संस्कृत से अच्छा अनुराग रखते हैं। यह बात आप कैसे कह सकते हैं कि उनको संस्कृत से अनुराग नहीं है। इस बात पर वे टाल मटोल करने लगे। इधर प्रवचन भी काफी हो चुका था। वैसे व्याकरण पर अच्छा गहरा अधिकार जमाये हुए थे। फिर भी छिल चुका था। आचार्य श्री ने बात के विषय का उपसंहार करते हुए गोष्ठी को समाप्त किया। आचार्य श्री ने बहस में कटुता पैदा नहीं होने दी।

गोष्ठी के बाद एक संस्कृत प्रोफेसर मिलने आये। वे कहने लगे—हम प्रोफेसरों और पंडितों में यही तो अन्तर है। एक शब्द के लिए उन्होंने सारा समय विवाद किया। अच्छा प्रकरण चल रहा था। बड़ा आनन्द आ रहा था। शब्द की गलती भी हो सकती है पर वह तुच्छ है। उसमें उलझ जाना उचित नहीं है। पर पंडित लोगों की यह प्रवृत्ति रहती है। असल में तो कोई गलती थी भी नहीं थी। पर क्या किया जाए? एक ओर से वे संस्कृत विकास की ऊँची-ऊँची बातें करते हैं और उसके लिये इच्छुक होते हैं, दूसरी ओर वास्तव में ऐसी कलह कर लेते हैं। इसी कारण संस्कृत का विकास कम हुआ है।

दूसरा प्रकरण

प्रवचन (१)

श्रमण संस्कृति का स्वरूप

चेतना के जगत मे हिंसा और अहिंसा का झमेला नहीं है। वहां अतर और बाहर का द्वद्व नहीं है। स्वभाव ही सब कुछ है। वहां पहुंचने पर बाहर का आकर्षण मिट जाता है।

पौद्गलिक जगत् में चेतन और अचेतन का द्वद्व है, इसलिये यहां हिंसा भी है और अहिंसा भी है। बाहरी आकर्षण हिंसा को लाता है, उसकी मात्रा बढ़ती है तब उसका निषेध होता है। वह अहिंसा है।

अहिंसा का अर्थ है— बाहरी आकर्षण से मुक्ति। बाहरी पदार्थों के प्रति खिचाव होता है, इसीलिये तो मनुष्य सग्रह करता है। सग्रह के लिये शोषण और युद्ध करता है।

अहिंसा और अध्यात्म को अव्यावहारिक मानने वाले वे ही लोग हैं, जो बाहर से अधिक घुले मिले हैं। उनकी दृष्टि में जीवन के स्थूल पहलू ही अधिक मूल्यवान हैं।

बाहरी आकर्षण हिंसा है। बाहर से आसक्ति, परिग्रह और उसके समर्थन का आग्रह-एकान्तवाद, कठिनाइयों के मूल ये तीन हैं और सारे दोष इनके पत्र-पुष्प हैं।

आज का विश्व विपदाओं के कगार पर खड़ा है। उसे अशान्ति से उबारने के लिये "अनेकात दृष्टि" सहारा बन सकती है। बाहरी पदार्थों के बिना जीवन नहीं चल सकता। गृहस्थ जीवन में उनकी पूर्ण उपेक्षा नहीं की जा सकती, पूरा निषेध नहीं किया जा सकता, यह एक तथ्य है। किन्तु उनके प्रति जो अत्यधिक झुकाव है वही सारी दुविधाएँ पैदा करता है।

अहिंसा आकर्षण की दूरी से नापी जाती है, वह केवल योग्य वस्तुओं

की दूरी से नहीं मापी जा सकती। मूर्च्छा का ममत्व स्वयं परिग्रह है। वस्तु का संग्रह हो या न हो, ममत्व से जुड़ी हुई वस्तुएँ भी परिग्रह हैं।

भगवान् महावीर ने कहा— हिंसा और परिग्रह दोनों सत्य की उप-लब्धि में बाधा हैं। इन्हें नहीं त्यागने वाला धार्मिक नहीं बन सकता। वृक्ष के बाहरी उपचार से वृक्ष के मूल का विनाश नहीं होता। भगवान् ने कहा— धीर ! तू दुःख के अग्र और मूल दोनों को उखाड़ फेंक। (अग्गं च मूलं च विगिंच धीरे।)

असुख और अशान्ति ये दोनों महा भयकारक हैं। (अकर्म अशांति निभाव न प्रश्रय)। इसका प्रवाह कर्म से है। कर्म का प्रवाह मोह से है। प्रिय और अप्रिय पदार्थों से सुख चाहने वाला शान्ति नहीं पा सकता और सुख भी नहीं पा सकता। सुख इन्द्रिय और मन की अनुभूति है। वह प्रियता की कोटि का तत्त्व है। शान्ति आत्मा की सम्पूर्ति है। सुख-दुःख व लाभ-अलाभ जीवन-मृत्यु, सत्कार्य-असत्कार्य, आदि आदि उतरती-चढ़ती सभी अवस्थाओं में वृत्तियों की समता जो है वह शान्ति है।

प्रिय और प्रतिकूल संयोगों से जो विचार तरंगों की जो अकं-पनता है वह शान्ति है। आत्म-निर्भरता और स्वावलम्बन शान्ति है। अभय संतृप्ति का अर्थ है— शान्ति की अनुभूति। यह भय, श्रम और काम—स्वावलम्बन या वैयक्तिकता के आधार पर टिकी हुई है। भगवान् ने कहा श्रामण्य का सार उपशम है। उपशम जो है वही श्रामण्य है।

'उपशमसार श्रामण्य'

सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्रकी आराधना जो है वही जैन धर्म है।

अनेकान्त अनाग्रह और सम्यग्दर्शन का जो विचार है वही जैन दर्शन है

अहिंसा, अपरिग्रह और अभय की जो साधना है वही जैन दर्शन का मुक्ति मार्ग है।

मित्र मैत्री का मार्ग यही है। वैयक्तिक दुर्बलताओं को जीते बिना

विजय नहीं। विजय के विना शाति श्रौर श्रखड की उपलब्धि नहीं—जैन धर्म का यही मर्म है।

स्याद्वादो विद्यते यस्मिन्, पक्षपातो न विद्यते।
नास्त्यन्यपीडन किञ्चित् जैन धर्म स उच्यते ॥
श्रासवो भव हेतु स्यात्, सम्वरो मोक्ष कारणम्।
इतीय मार्हती दृष्टि सर्व मन्यत् प्रवञ्चनम् ॥

श्राचार्यश्री का यह प्रवचन ३० नवम्वर १९५६ को सप्रू भवन मे जैन गोष्ठी मे दोपहर के समय हुश्रा। देरी हो जाने के कारण श्राचार्य श्री ने श्राहार एक ही समय किया।

जैन गोष्ठी के मत्री डा० किशोर ने श्राचार्य श्री से वहाँ पधारने के लिए निवेदन किया था। वाद मे स्थिति ने कुछ पलटा खाया। श्रन्य जैन सम्प्रदायो के साधुश्रो ने या उनके श्रावको ने भी वहाँ श्राने का श्राग्रह किया। श्राचार्य श्री ने कहा—श्रगर वे श्राएँ तो मुझे तो वहाँ न जाने या जाने मे कोई श्रापत्ति नही। श्रपनी श्रात्मा का पूरा श्रालोचन करने के वाद मुझे मेरे एक प्रदेश मे भी कोई दुर्भावना नही लगती, मेरी दृष्टि मे भी सही काम होना चाहिये, चाहे वे करें या हम करें। पर खेद है कि जैन समाज मे, विशेपतया साधुश्रो में भी श्रभी समन्वय की वृत्ति नही श्राई है।

श्रत मे वहाँ के कार्यकर्ताश्रो ने श्राचार्य श्री की उपस्थिति श्रावश्यक समझी। उनके निवेदन पर श्राचार्य श्री वहाँ पधार गये। दिगम्वर श्राचार्य श्री १०८ देशभूपरण जी भी श्राये थे। काका कालेलकर के उद्घाटन भापरण के वाद श्राचार्य श्री देशभूपरण जी ने मगल प्रवचन किया। फिर श्राचार्य श्री का श्रमरण सस्कृति तथा जैन धर्म के स्वरूप पर सारगर्भित प्रवचन हुश्रा।

दिन थोडा रह जाने के काररण प्रवचन के वाद श्राचार्य श्री वापस पधार गये। पीछे मे प्रो० एस० कृष्णमूर्ति ने प्रवचन का श्रग्रेजी मे श्रनुवाद किया।

प्रतिक्रमण के बाद टी. डी. सी. के एक प्रोफेसर श्री सुन्दर शोभा दर्शनार्थ आये। आचार्य प्रवर ने उन्हें अणुव्रत आन्दोलन की जानकारी दी। फिर प्रार्थना के बाद जैन सेमिनार के अध्यक्ष भारत के प्रमुख उद्योगपति श्री साहू शान्तिप्रसाद जी जैन आचार्य श्री के दर्शनार्थ आये। उन्होंने जैन साहित्य और समाज के बारे में काफी चर्चा की।

प्रवचन (५)

धर्म व नीति

दिल्ली मे मैं तीन बार आया हूँ पहिले पहल मैं जब आया तब अणुव्रत आन्दोलन का पहिला वार्षिक अधिवेशन हुआ था। दूसरी बार मैं यहाँ चातुर्मास करने आया और अब तीसरी बार मै एक बहुत लम्बी यात्रा तय करके आ रहा हूँ। दिल्ली मे मेरे न आने पर भी हमारे साधुओं ने यहाँ अच्छा कार्य किया है। विभिन्न कार्यकर्ताओं से आन्दोलन की जानकारी और निकटता भी पैदा हुई है। मैं चाहता हूँ हमारा यह क्रम जारी रहना चाहिए। कई लोग कहते हैं कि साधुओं को इस से क्या मतलब ? उन्हें तो जगल मे एकान्तवास और ध्यान करना चाहिए। पर यह सही नहीं है। भगवान महावीर ने कहा है—साधुओं का कार्य है साधना करना। वह जगल में भी हो सकती है और लोगों के बीच मे भी "साध्नोति स्वपरकार्याणीति साधु" साधु वही है जो अपना और दूसरों का भी कार्य साधे। अत साधु का अपना काम करना भी साधना है और दूसरो के आत्मपुरुषार्थक कामों मे सहायक होना भी साधना है।

शास्त्रों मे चार प्रकार के मनुष्य बतलाये गये है। एक प्रकार के मनुष्य आत्मानुकम्पी—जो अपनी ही चिन्ता करने वाले होते है। दूसरे

परानुकम्पी—जो दूसरों की ही चिन्ता करने वाले होते हैं। तीसरे उभयानुकम्पी—जो अपनी भी और दूसरों की भी चिन्ता करने वाले होते हैं। चौथे प्रकार के मनुष्य जो न आत्मानुकम्पी हैं न परानुकम्पी—न अपनी ही चिन्ता करते हैं और न पर की ही। इसमें आज के साधू तीसरे प्रकार के होने चाहिए अर्थात् ये अपना हित भी साधें और दूसरों का भी। अपनी साधना के साथ साथ वे लोगों में आकर कुल कार्य करें। यह हमारी साधना के सर्वथा अनुकूल है।

आज यह हमारा मुख्य कार्य है—मानवता हीन मानव समाज में मानवता की पुन प्रतिष्ठा करना। आज मानव ने सबसे बडी चीज जो खोई है, वह है—मानवता। इसलिए आज भी सबसे बडी आवश्यकता है कि उसे प्राप्त किया जाय। मुझे आश्चर्य होता है कि आज उन छोटी छोटी बातों के लिए भी हमे उपदेश करने पडते हैं, जो सहज ही जीवन मे होनी चाहिए। एक मनुष्य दूसरे के साथ विश्वासघात करते नहीं सकुचाता। इससे बढकर और क्या वतन होगा। यह वर्तमान युग का जमाने का रग है। पर हमे निराश होने की आवश्यकता नहीं। हमे कर्तव्य करना है। और उस खोई हुई मानवता को पुन प्राप्त करना है। इसी कारण आज नीति की प्रतिष्ठा करना आवश्यक हो गया है। पर यह अध्यात्म की भूमि के विना टिक नहीं सकती। वहुत से लोग स्वार्थ के लिए नीति का अवलवन करते हैं। पर यह स्थायी नहीं होता। जब तक स्वार्थ सिद्ध होता है तब तक नीति का अवलम्वन किया जाता है। और स्वार्थ साधना के वन्द होते ही नीति की साधना भी वन्द हो जाती है।

गांधी जी ने एक बार कहा था—अहिंसा मेरा व्यक्तिगत धर्म है। कांग्रेस ने उसे नीति के रूप मे स्वीकार किया है। यह उसका धर्म नहीं है। इसी का यह परिणाम है कि आज गांधी जी के चले जाने के वाद कांग्रेस के ये व्यक्ति, जिनसे कुछ आशा थी, अहिंसा को भुला वैठे हैं। अगर कांग्रेस ने इस को धर्म के रूप मे स्वीकार किया होता तो आज अहिंसा को इस प्रकार भुलाया नहीं जाता। पर यह केवल नीति

थी। और वह स्थायी कैसे हो सकती थी ?

व्यवहार शुद्धि के बिना आंतरिक शुद्धि स्थायी नहीं बन सकती। अतएव शास्त्रों में कहा है—"धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई" धर्म शुद्ध अन्तःकरण में स्थित होता है। जिसवत्ती है, मिट्टी के दीप के लिए दोनों की बाती आवश्यक है। उसी प्रकार नैतिक व्यवहार के लिए अध्यात्म की भूमिका की नितांत अपेक्षा है अन्यथा वह टिक नहीं सकता।

यह कहा जा सकता है कि धर्म से आत्मा पवित्र बनती है या आत्मा में धर्म टिक सकता है ? क्योंकि धर्म को आत्म की शुद्धि का साधन माना गया है पर बिना आत्मा को पवित्र किये वह व्यक्ति में ठहरेगा कैसे ?

अतः अनुभव आत्मोत्थान कहता है कि आत्मा की शुद्धि करो। धर्म शुद्धि के साधन हैं। शुभ मत ग्रहण करो। वैसे आत्मशुद्धि और धर्म दो चीजें नहीं हैं। आत्मा की पूर्ण शुद्धि ही धर्म का पूर्ण स्वरूप है।

केवल व्यवहार शुद्धि से दोनों की जड़ नहीं कटती। अतएव भगवान ने कहा है "छिन्द मूलंच विगिंच धीरो" और मुख्य दोष के अग्र और मूल दोनों का उन्मूलन करें।

जैन दर्शन में दोष शमन के दो प्रकार बताए गये हैं। पहिला उपशम और दूसरा क्षपक। पहले गुण स्थान से चढ़ने वाला जीव मोह का नाश नहीं करता उपशमन करता है। वह उपशम श्रेणी का आश्रय लेता है। उस श्रेणी से ग्यारहवें गुण स्थान तक चला जाता है। पर उसे वापिस नीचे गिरना पड़ता है। पर क्षपक श्रेणी से चढ़ने वाला जीव नीचे नहीं गिरता। वह सिद्धि के उन्नत शिखर पर पहुँच जाता है। इसी प्रकार धर्म से केवल व्यवहार शुद्धि के लिए पालन करने वाले दोषों का पूर्ण शमन नहीं कर सकते। अवसर आने पर वे दोष पुनः उभर ही आते हैं। पर आन्तरिक शुद्धि से होने वाली व्यवहार शुद्धि स्थायी और सर्वांग होती है अतः धर्म को केवल व्यवहार शुद्धि के लिए करना रोग का सर्वनाशक उपाय नहीं है।

लोग पूछते हैं—इतने वर्ष हो गये, अनेकों ऋषि-मुनियों ने अहिंसा का उपदेश किया। पर उसका फल क्या हुआ ? क्या अशांति ससार से मिट गई। पर सोचना है अगर अहिंसा ने कुछ नहीं किया तो हिंसा से भी आखिर कौनसी शान्ति स्थापित हो गई। वह भी तो हजारों वर्षों से चलती आ रही है। पर तत्व यह है कि जितने साधन हिंसा को मिले उन में से अगर उनका थोडा अश भी अहिंसा को मिल जाता तो न जाने ससार मे क्या से क्या हो जाता।

थोडे बहुत साधन उपलब्ध हैं, पर उनमे भी आज सहयोग नहीं है। जितनी भी अहिंसक शक्तियां हैं वे आपस मे मिलती नहीं। हिंसक शक्तियां विना मिलाए आपस में मिल जाती हैं। जितने साधन आज अहिंसा को प्राप्त हैं, उतनों का समुचित उपयोग हो, तो भी बहुत काम किया जा सकता है। आज उनके मिलने की बडी आवश्यकता है।

अहिंसा का आचरण क्यो ?

प्रश्न है, अहिंसा का आचरण क्यों किया जाए ? उत्तर भी सीधा है—अभय बनने के लिए अहिंसा का आचरण करो। यद्यपि अहिंसा मनुष्य को अभय बनाती है, फिर भी सब जगह अभय होना अच्छा नहीं। इसलिए कहा गया है कि पाप से भय खाओ। जो पाप से डरता हो वही अहिंसा की पूर्ण साधना कर सकता है। शास्त्रों में कहा है—पाप से डरने वाला ही मृत्यु से मुक्त बनता है। अणुव्रतों की साधना अभय की ओर सफल प्रयास है। कुछ लोग आशका भी करते हैं कि अणुव्रत नया तो है ही नहीं फिर चलने की क्या आवश्यकता हुई। मैं पूछता हूं ससार में आखिर नया क्या है ? आचार्य—हेमचन्द्र ने भगवान की स्तुति करते हुये कहा है—

यथा स्थित वस्तु दिशन्नधीश।
नताद‍ृशकौशल _माश्रितोऽस्ति।
तुरग शृंगा ण्युपपादयद्भ्यो-
नम परेभ्यो नव पण्डितेभ्य ॥

सब कुछ अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। सत्य व्रत की परम्परा भी पुरानी है। पर आज के युग में जब संसार अणुबम से भय भीत है अणुव्रत की अत्यधिक आवश्यकता है। अणुव्रत अभय बनाता है। आप अपने मन से भय को निकाल दें तो संसार में कोई भय है ही नहीं। और यह व्रतों से ही पैदा की जा सकती है।

आज १ दिसम्बर १९५५ को प्रातः काल पंचमी समिति से निवृत होकर आचार्य श्री नार्थ एवेन्यू एम. पी. क्लब पधारे। राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त श्री सावित्री देवी निगम आदि कई संसदसदस्य आचार्य श्री को लेने आये। क्लब में पधारने पर श्री सावित्री देवी निगम ने आचार्य श्री का स्वागत किया और अणुव्रत आन्दोलन की भूरि भूरि प्रशंसा की।

वहाँ उपस्थित संसदसदस्यों एवं प्रमुख नागरिकों के बीच आचार्य श्री ने मर्मस्पर्शी प्रवचन दिया।

प्रवचन के उपरान्त क्लब के मंत्री श्री [illegible] मजमदार ने आचार्य श्री का आभार मानते हुए कहा—आप हमें उपदेश देने पधारे हैं यह आपकी बड़ी कृपा है। बहुत से लोग आपके इस संयम मूलक आन्दोलन को महत्व नहीं देते। आज जब मैं लोकसभा की गैलरी में सदस्यों को आज के कार्यक्रम और अणुव्रत आन्दोलन की जानकारी दे रहा था तो बहुत से सदस्य कहने लगे—भला इस आन्दोलन से क्या होने वाला है। यह तो बालू से तेल निकालने जैसा प्रयास है। आज के युग में संयम के माध्यम से राष्ट्र की समस्याओं को सुलझाना हास्यास्पद प्रतीत होता है। मैंने उन्हें समझाया कि संयम के माध्यम से ही सही हल निकलने वाला है। लोग भले ही आज इसके महत्व को न समझें। परन्तु यह बुनियादी काम है जिसका महत्व स्वीकार करना ही होगा।

विद्याध्ययन का लक्ष्य

वह ज्ञान अज्ञान है जो जीवन के अन्तरतम को छूता नहीं। वह विद्या अविद्या है जो अन्तर्वृत्तियों मे परिशुद्धि नहीं लाती—ये हमारे भारतीय महर्षियो के वाक्य हैं, जिनमे प्रेरणा भरी है, ओज भरा है। मैं बहुधा कहा करता हूँ कि विद्याध्ययन का लक्ष्य जीविकोपार्जन नहीं है। ऋषियों के शब्दों मे "सा विद्या या विमुक्तये"। उसका लक्ष्य है "विमुक्ति" बुराइयों से छुटकारा, अपने शुद्ध स्वरूप मे अवस्थान। पर बड़े खेद का विषय है कि जीवन का यह महान् लक्ष्य आज आँखों से ओझल होता जा रहा है। तभी तो किताबी पढ़ाई के लिहाज से शिक्षा का अधिक प्रचार होने के बावजूद भी अन्तर चेतना की दृष्टि से उसमे कुछ भी विकास नहीं हो सका है।

हम आये दिन सुनते हैं, अमुक स्थान पर विद्यार्थियों ने उद्दण्डता की, उच्छृङ्खलता की, अनुशासनहीनता बरती। यह सब क्यो सारा वायुमडल ही कुछ इस प्रकार का बना हुआ है। क्या घर मे, क्या परिवार के इर्द गिर्द, वे ऐसा ही पाते हैं। आज सपूर्ण वातावरण मे एक नया आलोक भरना होगा। विद्यार्थियों को अपने जीवन का सही मूल्य समझना होगा। अभिभावकों और अध्यापकों को भी यह समझना होगा कि विद्यार्थी राष्ट्र की सब से बड़ी सपत्ति हैं। उन्हें अभ्युत्थान और जागृति की ओर ले जाना सब का काम है। इसके लिये उन्हें स्वय को अति जागरूक बनाना होगा।

प्रवचन का उपसहार करते हुए आचार्य प्रवर ने कहा—आज भौतिकवाद सवत्र प्रसार पाता जा रहा है। हिसा से व्याकुलता और आतुरता आदि अशातिकारी प्रवृत्तियां पनप रही हैं। यही कारण है कि

जीवन का महत्व आज बाहरी दिखावे में समझा जा रहा है। यदि अंतर जीवन का सच्चा उत्थान हम चाहते हैं तो इसे रोकना होगा।

इसका सब से अधिक उपयोगी एक यही उपाय है कि बालकों को शुरू से अध्यात्म की शिक्षा दी जाय। फलतः वे बहिर्मुख नहीं बनेंगे। बहिर्मुख नहीं बनने का अर्थ है—आत्मोन्मुख बनना। जहाँ आत्मोन्मुखता है वहाँ बुराइयाँ नहीं पनपतीं कालुष्य नहीं पनपता। जीवनवृत्ति परिमार्जित हो इसके लिये मैं विद्यार्थियों, साथ-साथ अध्यापकों एवं अभिभावकों से भी कहना चाहूँगा कि वे अणुव्रत आंदोलन के नियमों को देखें उन्हें आत्मसात् करें। विद्यार्थियों के लिये विशेष रूप से ये पाँच नियम रखे गये हैं—

(१) मद्यपान नहीं करना।

(२) धूम्रपान नहीं करना।

(३) किसी भी तोड़ फोड़ मूलक हिंसात्मक प्रवृत्ति में भाग नहीं लेना।

(४) अवैधानिक तरीकों से परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रयत्न नहीं करना।

(५) रुपये आदि लेने का ठहराव कर वैवाहिक सबंध स्वीकार नहीं करना।

यह प्रवचन ५ दिसम्बर १९५९ को प्रातःकाल नयी दिल्ली की सम्पन्न अनुप्राणित प्रमुख शिक्षण संस्था माडर्न हायर सेकण्डरी स्कूल में हुआ। इस विद्यालय में एक हजार से अधिक छात्र-छात्रायें पढ़ती हैं।

श्रद्धा व आत्मनिष्ठा

"वितिगिच्छा समावण्णेण अप्पाणेण णो लहई समाहिं" संशयशील मनुष्य समाधि-शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। संशयशील को दूसरे शब्दों मे हम मिथ्या भी कह सकते हैं। जो श्रद्धाशील होता है, उसे संशय नहीं होता। वह सम्यक्त्वी कहलाता है। इसके बीच भी एक अवस्था होती है 'सासादन सम्यक्त्व', पर उसकी स्थिति बहुत थोड़ी होती है।

प्राणी का स्वभाव है क्रिया करना। अगर क्रिया करेगा तो वह सम्यग् या मिथ्या अवश्य होगी। गीता मे भी कहा है—

> अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च, संशयात्मा विनश्यति।
> नाय लोकोस्ति न परो, न सुखं संशयात्मनः॥ गीता ४-४०
> अश्रद्धाशील मनुष्य का विनाश हो जाता है।

प्रश्न उठता है आखिर श्रद्धा किसमे रखनी चाहिये। वैसे तो भिन्न भिन्न लोग भिन्न भिन्न प्रतीको में विश्वास करते हैं। कोई प्रतिमा मे, कोई अग्नि में, कोई वृक्ष मे, कोई आकाश मे श्रद्धा करता है। इस प्रकार श्रद्धा के स्थान अनेक हो जाते हैं। पर श्रद्धा का आखिर आधार क्या है? यह सही है कि यह भी श्रद्धा ही है। पर वास्तव मे श्रद्धा का मतलब है आस्तिक्य। यही इसका आधार है। आस्तिक्य यानी आत्मा, परमात्मा, देव, भगवान् और अपने आपका विश्वास। जो व्यक्ति अपने आपका "मैं हूँ" यह विश्वास कर लेगा तो वह अपने जैसे ही दूसरो के आस्तित्य मे भी विश्वास कर लेगा। जैसा मुझे दुःख होता है, वैसा औरों को भी होता है, यह बात भी उसकी समझ मे आ जायगी। अतः वह किसी को भी कष्ट नहीं देगा।

भगवान् पर हमारी श्रद्धा होती है, अतः हम उनका स्मरण करते

हैं। पर उनसे हमें क्या मिलने वाला है? क्या भगवान् हमें कुछ देते हैं? नहीं भगवान् न तो हमें कुछ देते हैं और न हम कुछ उनसे लेते हैं। परन्तु उनके गुणों का स्मरण कर हम अपने आपको तदनुरूप बनाने का प्रयत्न करते हैं। उनमें जो गुण हैं उन्हें हम भी पा सकते हैं। इस प्रकार श्रद्धा के द्वारा हम अपना चौमुखी विकास कर सकते हैं। बहुधा अर्हन्त का नाम लेकर निकल जाने पर कार्यसिद्धि होती है। इसमें अर्हन्त की अपेक्षा स्वयं की निष्ठा का चमत्कार ही अधिक है।

इसी प्रकार कोई भी आन्दोलन बिना निष्ठा के सफल नहीं हो सकता। जिसमें स्वयं की श्रद्धा नहीं उसमें दूसरों की निष्ठा कैसे हो सकती है। अगर आन्दोलन में हमारी निष्ठा हुई तो आज भले ही उसकी आवाज को कोई न सुने पर एक दिन अवश्य हमारी बात सुनी जायगी। भिक्षु स्वामी ने आरम्भ में जब तेरापंथ की नींव डाली तब उनके पास कौन सुनने आता था? वे अपने साधुओं को लेकर बैठ जाते और कहते "आओ प्रवचन करें"। साधु कहते—महाराज! आपका प्रवचन सुनने के लिये कोई आया तो है ही नहीं, आप किसको सुनायेंगे? वे कहते तुम्हें सुनायेंगे। एक बार नहीं अनेक बार भिक्षु स्वामी ने ऐसा किया था और उसी दृढ़ निष्ठा का फल है कि आज उनकी बात सुनने वाले लोगों की भीड़ नहीं समाती। गांधी जी भी कहा करते थे—"अगर तुम्हारी बात सुनने वाला कोई नहीं है तो तुम जंगल में जाकर निष्ठापूर्वक अपनी बात जोर जोर से कहो। वह अवश्य फल लायेगी।

जब अणुव्रत आन्दोलन शुरू हुआ तो कौन जानता था कि यह इतना व्यापक बन जायगा। इतना ही नहीं, हमारे निकट रहने वाले लोग भी इसकी खिल्लियाँ उड़ाया करते थे। पर हमारी निष्ठा बलवती थी। उसका ही यह परिणाम है कि आन्दोलन प्रतिदिन आगे बढ़ रहा है। यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि हमने आज तक जितना किया है उससे कई गुना अवशेष और करना है। और इसके लिये मैं कार्यकर्ताओं से कहूँगा कि वे निष्ठापूर्वक काम करते रहें। अगर कार्यकर्ताओं में निष्ठा-

पूर्वक काम किया तो मेरा विश्वास है कि एक दिन ऐसा आयगा, जबकि सारा ससार हमारे कार्य को देखेगा।

आप अपने आपको कभी तुच्छ न समझें। साथ-साथ अभिमान भी न करें। यह कभी न सोचें कि हम क्या कर सकते हैं? हमारी आत्मा में अनन्त शक्ति है, उसे विकसित करते चलें, सब कुछ सम्भव है।

४ दिसम्बर १९५६ की प्रातःकाल ठहरने के स्थान पर यह पहला प्रवचन था।

प्रथम प्रहर में पचमी से लौटते सयय आचार्य प्रवर थोडी देर 'डालमियाँ' की कोठी पर ठहरे। श्रीमती दिनेशनन्दिनी डालमियाँ ने श्रद्धापूर्वक सम्मान किया। धर्म प्रचार व प्रसार के विषय मे बातचीत हुई। स्थान पर वापस आने के बाद श्रीमती मदालसा देवी (धर्मपत्नी श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल) से थोडी देर बातचीत करने के बाद प्रवचन प्रारम्भ हुआ।

प्रवचन के बाद कई व्यक्तियो ने आचार्य श्री से भेंट की। इधर हाँसी नगर के कई प्रतिष्ठित व्यक्ति 'मर्यादा महोत्सव' की अर्ज करने श्री चरणो मे उपस्थित हुए।

प्रवचन (५)

मानवधर्म

देहली में आये नौ दिन हो जाने के बाद भी इस बस्ती मे मैं आज पहली ही बार आया हूँ। यहाँ की खटपट में तो मनुष्य की आवाज ही नहीं सुनाई देती। इसीलिये आप लोग बोलने के लिये भौतिक साधन (लाउड स्पीकर) का उपयोग कर रहे हैं। यदि आप प्रकृति मे रहते

तो इन भौतिक साधनों की कोई आवश्यकता नहीं होती। भारतीय संस्कृति में प्राकृतिक जीवन को महत्व दिया जाता रहा है और इसीलिये हमें तो प्रकृति में ही रहना है। अतः लाउडस्पीकर का उपयोग नहीं करते। केवल बोलने में ही नहीं हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति में प्रकृति का ही सहारा है और यही तो साधुत्व है। साधुत्व कोई पेड़ थोड़े ही है। प्रकृति में रहना ही वास्तव में साधना है और इसीलिये भारत में आज भी साधुओं की आवाज सुनी जाती है। हम अपनी साधना की दो बातें आपको भी सुना दें। साधना से हमें जो फल मिला है उसे स्वार्थी बनकर अकेले ही नहीं चखें दूसरे लोगों में भी बांटें।

एक बात मैं आपसे पूछना चाहता हूँ—आप जो संसार में आनन्द मान रहे हैं उसका आधार क्या है? हो सकता है आपके पास जीवन है पर आप सोचिये इसका क्या भरोसा है। एक कवि ने कहा है—

आयुर्वायुतरत्तरङ्गतरलं लग्नापदः सम्पदः
सर्वेऽपीन्द्रियगोचराश्च चटुला संध्याभ्ररागादिवत्।
मित्रस्त्रीस्वजनादिसंगमसुखं स्वप्नेन्द्रजालोपमं
तत्किं वस्तु भवे भवेदिह मुदामालम्बनं यत् सताम्॥

यह आयु तो वायु की चञ्चल लहरों के समान अस्थिर है। देखिये कल की ही घटना है—एक भाई मेरे पास आता है और कहता है कि डा० अम्बेडकर ने कहा है कि मैं आचार्य जी से मिलना चाहता हूँ और आज थोड़े समय ही दूसरा भाई आता है और कहता है कि डा० अम्बेडकर तो चल बसे। तो इस प्रकार के अस्थिर जीवन का भरोसा कर आप आनन्द मना रहे हैं। इसमें क्या बुद्धिमानी है? इसी प्रकार जितनी भी धन सम्पत्ति है, उसके पीछे विपत्तियाँ लगी हुई हैं। इन्द्रियों के जितने विषय हैं वे भी इन्द्रजाल के समान हैं। इनमें आनन्द मानकर क्या आप सचमुच ही धोखा नहीं खाते हैं? आप जो संसार में सुख मान रहे हैं आखिर वह है क्या? हाँ यदि कोई वास्तविक सुख है तो हमें भी बताइये। हम भी उससे वंचित क्यों रहें? पर हमारी दीक्षा ग्रहण करने के बाद और साधना

लोगों से मिलकर भी मैंने तो इन सबमे कुछ भी सुख नहीं पाया। आप सोचते होंगे—धनवानों, करोडपतियों को ससार मे वडा सुख है। पर आप सच मानिये, उनकी स्थिति आज वडी चिन्तनीय है। उनको न तो सुख से खाने का समय है और न सोने का। मन मे वे भी समझते हैं मगर फिर भी अपने को आनन्द मे मानते हैं। वात कडी अवश्य है, पर सही है कि आज के लोगो की स्थिति ठीक उस कुत्ते जैसी है, जो भूखा रहकर भी केवल शाब्दिक सम्मान पाकर अपने को धन्य मानता है।

कथा इस प्रकार है—किसी धोवी के पास एक पालतू कुत्ता था। उसका नाम था 'सताना'। वह जव घर से घाट पर जाता तो धोवी, जो घाट पर रहता था, समझता—शायद वह घर से ही रोटी खाकर आया है और घर आता तो उसकी पत्नियां (धोवी के दो पत्नियां थीं) समझतीं—धोवी ने इसको रोटी डालदी होगी। इस प्रकार दोनों ही तरफ से उसे भूखा रहना पडता। यह थककर एकदम कृश हो गया। उसकी यह दशा देखकर दूसरे कुत्ते उससे कहने लगे—जव तुम्हें रोटी नहीं मिलती तो तुम यहां क्यों रहते हो ? वह कहने लगता—भाई ! यह तो सही है पर एक वात है, धोवी के दो पत्नियां हैं। वे जव आपस मे लडती हैं तो एक कहती है—मैं क्यों "तू सताने की औरत" इस प्रकार रोटी नहीं मिलने पर भी दो स्त्रियों का मैं पति कहलाता हूं। क्या यह कम गौरव की वात है ?

इसी प्रकार आज लोग धन से सुख नहीं पाते पर उसकी प्रतिष्ठा से अपने को धन्य मानते हैं। यह है आज के लोगों की स्थिति। पर हमें प्रतिष्ठा का मूल्य वदलना होगा। प्रतिष्ठा धन की न होकर त्याग की होनी चाहिए। आज लोग जीने का स्तर ऊंचा होने के माने मानते हैं—भौतिक समृद्धियों का ज्यादा से ज्यादा होना। पर जीवन के स्तर के माने इससे भिन्न हैं। उसके ऊंचे होने के माने हैं—जिसका जीवन ज्यादा सत्यमय हो, अहिंसामय हो। आपको सोचना है कि आपको जीने का स्तर ऊंचा करना है या जीवन का स्तर ? हां, यह अवश्य है कि जीवन

के स्तर को ऊँचा उठाने में आपको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा पर आप उनसे घबरायें नहीं। उसका आनन्द भी अपूर्व होगा। जीने के स्तर और जीवन के स्तर के भेद को आप उदाहरण से समझिये। यह जैन आगमों की घटना है—

इषुकार नामक राज की रानी अपने महलों के ऊपरी भाग में बैठी हुई थी। उसने देखा—शहर में सब जगह धूल उड़ रही है। पूछने पर पता लगा कि उनके पुरोहित—कुटुम्ब के सारे प्राणी अपनी समग्र धनराशि को छोड़कर दीक्षा लेने जा रहे हैं और राजा उस अपार धनराशि को अपने खजाने में मँगवा रहा है। वह तत्काल राजसभा में आई और राजा से कहने लगी—

"वन्ता सी पुरिसो राय न सो होइ पसंसिओ।
माहणेण परिच्चत्त धन आदाउमिच्छसि॥

राजन्! वमन को खाने वाला व्यक्ति कभी प्रशंसित नहीं होता। ब्राह्मण (पुरोहित) द्वारा परित्यक्त धन को आप लौटा लेना चाहते हैं?

रानी के इस उद्बोधन से राजा की आँखें खुल गई। वह धन के द्वारा जीने के स्तर को उन्नत बनाना चाहता था पर रानी ने उसे जीवन के स्तर को ऊँचा करने की प्रेरणा दी और आखिर मे वह और रानी दोनों ही साधु-जीवन मे प्रव्रजित हो गये।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि मानव धर्म का क्या मतलब होता है। आप अपने जीवन के स्तर को ऊँचा उठायें यही मानव धर्म है।

६ सितम्बर १९५९ को प्रातःकाल इस प्रवचन का आयोजन पहाड़गंज मे वहाँ के निवासियों के विशेष अनुरोध पर किया गया था। प्रवचन से पहले मुनि श्री सुखमल जी और संसत्सदस्य काका जी नरहरि विष्णु गाडगील ने भी अपने विचार प्रकट किये

सच्ची प्रार्थना व उपासना

"परमात्मा की उपासना जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य है। प्रार्थना, स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन आदि आदि उपासना के प्रकार हैं। लोग परमात्मा की उपासना करते हैं, आत्म-विकास के लिये नहीं, किन्तु भौतिक अभिसिद्धियों के लिये। परमात्मा को वे अपनी इच्छापूर्ति का साधन मानकर उनसे भौतिक सिद्धियाँ चाहते हैं। यह वचना है, ईश्वर के साथ धोखा है। उपासना आत्मिक गुणों को विकसित करने के लिये करनी चाहिये। परमात्मा किसी को दुखी या सुखी नहीं बनाता। हम अपने पुरुषार्थ से ही सब कुछ पाते हैं। पुरुषार्थ से ईश्वर बन सकते हैं, यह हमे नहीं भूलना चाहिये।

आज लोग भूत-ग्रस्त हैं। कहा भी है—"चेत प्रेतहृतो जहाति न भवप्रेमानुबन्ध मम"—चित्त मे भूत का वास है। लोग स्वत को भूलकर पीढ़ियों की बातें करते हैं, क्या यह पागलपन नहीं है। आकाश को अपने बाहों में पकडने का प्रयास करना बचपन नहीं तो क्या है ? अपने हितों को गौणकर पीढ़ियों के हितों की बातें सोचना भूल है।

एक दिन एक योगी बादशाह सिकन्दर के पास आया। सिकन्दर ने उसका यथोचित सम्मान किया। योगी न पूछा—राजन् ! तुम क्या करना चाहते हो ?

सिकन्दर ने कहा—मैं एक एक कर सारे देशों को जीतूंगा। विश्व मे अपना साम्राज्य कायम करूँगा। धन-कुबेर बन कर मैं विश्व की समस्त सुख-सुविधाओ के बीच जीवन के प्रत्येक क्षण को अपूर्व आनन्द से व्यतीत करूँगा। इतना कर लेने के बाद राज्य के झझटों से छूट कर आराम करूँगा

यह सुन योगी कुछ मुस्कराया। मुस्कराहट में छिपे रहस्य को सिकन्दर समझ न सका। उसने पूछा—योगिराज! क्या मेरी बातों से आपको आश्चर्य हुआ है? आप जानते हैं—बादशाह सिकन्दर जो कहता है, उसे पूरा भी करता है। मेरे भाग्य ने मुझे साथ दिया है। मैं जो चाहता हूँ वही होता है। आप अपनी मुस्कराहट का रहस्य मुझे समझायें।

योगी ने कहा—मैं जानता हूँ आप अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने में समर्थ हैं पर आपकी नादानी पर मुझे हँसी आती है कि जो कार्य आप बाद में करना चाहते हैं वह अभी क्यों नहीं कर लेते। रहस्य सम्राट की समझ में आ गया।

वर्तमान में लोगों की यही दशा है। सिकन्दर जैसे मनोविचार प्रायः उनमें रहते हैं। क्या यह वास्तविक नहीं है? इससे छुटकारा पाने का एकमात्र साधन है—परमात्मा की उपासना।

आत्मा की उपासना परमात्मा की उपासना है। उपासना में श्रद्धा और हृदय होना चाहिये। जहाँ दिखावा होता है वहाँ वंचना होती है। ऐसी उपासना सफल नहीं जाती।

हम प्रवचन करते हैं या आप उसे सुनते हैं यह भी साधना या उपासना का ही एक अंग है।

लोग अज्ञानवश कई बार यह पूछ बैठते हैं कि साधु उपदेश देने घर घर क्यों जाते हैं? प्रश्न ठीक है। हम भिक्षा लेने घर घर जाते हैं तो उपदेश देने के लिये या जन जीवन में नैतिक उत्थान के लिये घर घर जायें तो अनुचित कैसे हो सकता है?

साधु समता के प्रतीक हैं। सभी धर्म व जाति के प्राणी उनके लिये समान हैं। उनका उपदेश किसी देश या राष्ट्र विशेष के लिये नहीं होता। आचारांग सूत्र में कहा है—"जहा पुण्णस्स कत्थई तहा तुच्छस्स कत्थई जहा तुच्छस्स कत्थई तहा पुण्णस्स कत्थई" साधु जिस प्रकार धन-कुबेरों को या भाग्यशाली व्यक्तियों को उपदेश करते हैं उसी प्रकार दुःखी-सुखी

झोंपड़ियों मे रहने वाले निर्धनों को भी उपदेश देते हैं। यह समता की उत्कृष्ट साधना है।

अर्जुन ने भगवान कृष्ण से पूछा—योग क्या है ? कृष्ण ने कहा—"समत्व योग उच्यते-समता का आचरण योग है।" आगे उन्होंने बताया—"योग कर्मसु कौशलम्"—अपने कर्मो मे कुशलता योग है।" व्यक्ति खाता है, पीता है, उठता है, बैठता है, चलता है, बोलता है, इन सभी कर्मो मे अपनी मर्यादा को जानने व तदनुकूल वर्ताव करने वाला वास्तव मे योगी है। केवल खाना या न खाना ही योग नहीं है, किन्तु खाकर या भूखा रहकर भी अपने मे विकारों को न आने देना योग है। "समो निन्दा पससासु तहा माणाव माणओ"—यह योग की कसौटी है।

योग उपासना का सर्वश्रेष्ठ साधन है। स्वरूप का चिन्तन योग की विशिष्ट क्रिया है। प्रत्येक को यह सोचना चाहिये—"कोह कस्त्व कुत आयात"—मैं कौन हूँ, तुम कौन हो, कहाँ से आये हो ?" इसका चिन्तन पवित्रता लाता है। परन्तु आज के लोग यह नहीं सोचते। वे ईश्वर, स्वर्ग, नरक की बातों मे उलझ कर अपने आपको भूल से रहे हैं। इसी आशय को स्पष्ट करते हुये तेरा पथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु ने कहा—आपरी भाषा रो आप अजाण छं, काचरी ओरी मे श्वान जेम"—एक काच की कोठरी है। चारों ओर काच ही काच लगे हुये हैं। कुत्ते को उस कमरे मे छोड़ दिया तो अपनी परछाई देखकर वह भूल जाता है कि काच मे जो प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, वह मैं ही हूँ। वह यह सोचता है कि यह कोई दूसरा कुत्ता है। यह सोचकर वह उस पर झपटता है। कई बार प्रयत्न करने पर भी वह उसे नहीं पकड़ सकता और खुद लहूलुहान हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य को अपने आपका ध्यान नहीं है। वह अपने मूल स्वरूप को भूलकर इधर-उधर भटक रहा है।

१० दिसम्बर १९५९ को प्रातःकाल यह प्रवचन नयी दिल्ली में १६, दारा खम्भा रोड पर निवास स्थान पर हुआ।

नहीं। सयम की पुष्टि के लिये खाना साधना है। इसीलिये खाना चाहिये और नहीं भी। शरीर जब तक मोक्ष साधना मे साधक बने, तब तक भोजन करना साधना है और जब शरीर साधक नहीं बनता तब शरीर छोडना ही उत्कृष्ट साधना है। घोर तपस्वी मुनि सुमतिचन्द्र जी का ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने है।

अभी दो महीने की बात है। मुनि सुमतिचन्द्र जी मेरे पास आये। हाथ जोडकर कहने लगे—"गुरुदेव मैं कई महीनों से तपस्या कर रहा हूं। तपस्या से जो आनन्द और समाधि का अनुभव होता है, वह वाणी का विषय नहीं बन सकता, केवल अनुभवगम्य है। मैं यह चाहता था कि अन्तिम समय तक इसी प्रकार तपस्या करता रहूं और जीवन का आनन्द लूटता रहूँ। किन्तु कुछ दिनो से भावना बदली है। इसका भी कारण है। जिस शरीर को मैं साधना मे लगाये रखने के लिये कुछ आहार देता हूँ, वह उसेपचाता नहीं, खाते ही बाहर फेंक देता है। यह देख मुझे ग्लानि हो गई है। अब मैं चाहता हूँ कि जब शरीर भी मेरा साथ छोड रहा है तो क्यों नहीं मैं इससे पहले सम्हल कर अपना कल्याण करूं। भोजन मुझे नहीं भाता। साधना में शरीर बाधक बन रहा है। मैं इसे छोडना चाहता हूं। कृपा कर आप मेरी मदद करें" अस्तु मुनि सुमतिचन्द्रजी ने वीरत्व दिखाया, वह इस आणविक युग को चुनौती है। किस प्रकार एक वीर साधक अपने बाधक तत्वों से लोहा ले सकता है, यह हमे इस ज्वलन्त घटना से सीखना है।

खाने के तीन उद्देश्य है

(१) स्वाद के लिये खाना, (२)जीने के लिये खाना और (३) सयम निर्वाह के लिये खाना। स्वाद के लिये खाना अनैतिक है, जीने के लिये खाना आवश्यकता है और सयम के लिये खाना साधना है, तपस्या है। इसलिये प्रत्येक ग्रन्थ पात्र-दान की महिमा बताता है। दान देने वाला धर्मी तभी बनता है, जबकि लेने वाले का सयम पुष्ट होता हो। दी जाने

श्रद्धा से व्यक्ति कितना ऊंचा हो जाता है, यह आचार्य भिक्षु की जीवनी से स्पष्ट हो जाता है। स्वामी जी के लिये जिनवाणी ही सब कुछ थी। उनकी प्रत्येक रचना मे, कथा मे जिनवाणी की पुट है। यही श्रद्धा उनकी जीवन-घटनाओं के कण कण से बोल रही है।

१२ दिसम्बर १९५६ का प्रात कालीन प्रवचन।

प्रवचन (८)

वीरता की कसौटी

"पणया वीरा महावीहीं"—महापथ पर चलने वाले वीर होते हैं। शारीरिक बल वीरता का लक्षण नहीं, वह तो पशु में भी होता है। वीरता की कसौटी है—आत्मबल। यदि यह मानदण्ड न मानें तो डाकू, आततायी, सिंह बैल, कसाई आदि भी वीर की कोटि मे आजाते हैं। वे शारीरिक शक्ति की दृष्टि से बलवान हो सकते हैं, किन्तु वीर नहीं। जब शारीरिक बल के साथ सहिष्णुता का गुण जुड़ता है, तब वीरता आ जाती है।

भगवान महावीर अनन्त बली थे। अपनी कनिष्ठिका से मेरु को कंपित कर देने की शक्ति उनमे थी। उनके शरीर का सहनन "वज्र ऋषभ नाराच" था। सस्थान समचतुरस था। इतने पर भी वे महावीर नहीं कहलाए। जब वे ससार को छोड अकिंचन बने, दु सह परिषहों को समभाव से सहने की जब उनमें क्षमता आई, तब देवो ने उन्हें "महावीर" कहा। केवल शरीर के बल की अपेक्षा से बनते तो कभी के वीर बन जाते।

कष्टों को समभाव से सहना वीरता है। कष्ट सहन का अर्थ केवल शारीरिक कष्ट सहन से ही नहीं, कितु मानसिक सक्लेश को धैर्यपूर्वक

सकता भी है। मानसिक संक्षोभ के समय मनके संतुलन को खो देना पहले दर्जे की कायरता है। इसीलिए कहा है—

"सहनशील बन वीर बनेंगे विश्वमैत्री का सबक सुनेंगे।
यह बल को प्रश्रय नहीं देंगे 'तुलसी' धार्मिकता पनपायेंगे'

सहनशील बनना वीरताकी ओर बढ़ना है। आचार्य भिक्षु ने हमारे सामने सहनशीलता का महान आदर्श रखा। आज हम उसी आदर्श पर चलते हैं इसीलिए हमें विरोध विनोद सा लगता है। हमारी सफलता का मूल यही है। यदि विरोधों को हम धैर्यपूर्वक नहीं सहते तो कभी के खत्म हो गए होते। हमारे विरोधी बन्धुओं ने हमारे प्रति क्या नहीं किया। यदि मैं विरोध का इतिहास बताऊं तो काफी समय लग जायेगा। थोड़े में ही समझें कि विरोध हुआ है और आज भी होता है उससे घबराना नहीं चाहिए।

वीर का तीसरा गुण है—परमार्थ-वृत्ति। स्वार्थी को भय रहता है। भय कायरता है।

फलित यह हुआ कि (१) शारीरिक बल (२) सहनशीलता (३) पारमार्थिकता—इन तीनों के योग से व्यक्ति वीर बनता है और इन्हीं से साध्य की प्राप्ति होती है।

कुमार गजसुकुमाल "महा पथ" की ओर जाना चाहते थे। मन वैराग्य से भरा हुआ था। दीक्षा ग्रहण कर भगवान् अरिष्टनेमि के पास आये। आज्ञा ले श्मशान की ओर चल पड़े। भीषण परिषह सामने आए। समता से सहन कर नश्वर शरीर को छोड़ चल बसे। यह विशेष साधना थी। महापुरुषों का चलन था। छद्मस्थ अवस्था में भी एक विशिष्ट प्रतिमा का ग्रहण था।

आज इतनी कठोर साधना होती नहीं। अणुव्रतों की साधना भी इसी ओर बढ़ता कदम है। व्रतों की साधना क्रमशः होती है। अपनी वृत्तियों का निग्रह करना पड़ता है। किन्तु यह सीधा मार्ग है।

१ दिसम्बर सन् १९५६ को प्रातः काल सदर बाजार में।

प्रवचन (६)

धर्म का रूप

धर्म के दो प्रकार हैं—(१) आचारात्मक धर्म (२) विचारात्मक धर्म। दोनों की पूर्णता ही जीवन को चमक दे सकती है।

विचारात्मक धर्म के लक्षण हैं—

(१) विचारो मे आग्रह हीनता

(२) दूसरों के विचार जानने मे सहिष्णुता

(३) भावों में पवित्रता

आचारात्मक धर्म के लक्षण हैं—

(१) आचार उच्च, निर्मल व पवित्र हो।

(२) व्यवहार शुद्ध हो।

(३) सत्य मे निष्ठा हो, अहिंसा की साधना हो।

जो व्यक्ति कथनी और करनी में समान रहता है, वही सच्चा साधक है। जैन धर्म साधना का मार्ग है। इसका तत्व ज्ञान गम्भीर गहन है। फिर भी समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

१६ दिसम्बर १९५६ को इस प्रवचन के लिये आचार्य श्री सुबह को नया बाजार मे मिनर्वा विशेष रूप से पधारे। प्रवचन के प्रारम्भ में आचार्य श्री ने सरल शब्दो मे नयवाद, प्रमाणवाद, तथा स्याद्वाद का सुन्दर विवेचन किया। प्रवचन के बाद श्रीमती सुचेता कृपलानी एम० पी० से बहुत देर तक चर्चा वार्ता हुई।

प्रवचन (१)

मेधावी कौन ?

आचारांग सूत्र में एक प्रसंग आता है—शिष्य पूछता है—मेधावी कौन ? आजकल साधारणतया जो पढ़ा-लिखा है वही मेधावी माना जाता है किन्तु यह अर्थ सही नहीं है। संस्कृत कोष में "मेधा" बुद्धि का पर्यायवाची शब्द है। किन्तु आगे वेद-ग्रन्थों में ऐसा कहा गया है कि—धी मेधा धारणवती—वही बुद्धि मेधा है जो धारण करने में समर्थ है। सुनकर धारण करने वाला मेधावी है। यही इसकी सही परिभाषा है।

यह कोई बात नहीं कि पढ़े-लिखे ही मेधावी होते हैं किन्तु आज तो पढ़े लिखे भी ठोठ (मन्दबुद्धिशील) बहुत मिलते हैं। उनमें पढ़ाई सिर्फ भार स्वरूप होती है। जैसे कहा—"यथा खरश्चन्दन भारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य"—जिस प्रकार गधे को चन्दन का बोझ भी बोझ स्वरूप ही लगता है वह उसका आनन्द नहीं ले सकता। उसी प्रकार "पढ़े-लिखे" भी पढ़ाई को भार स्वरूप ही लादे फिरते हैं विद्या का आनन्द नहीं लूट सकते।

विद्या किसको दी जाय ? इसका भी विवेक रखना आवश्यक है। जैसे-तैसे या जिस किसी को दी जाने वाली विद्या फल नहीं लाती। उपनिषदों में एक सुन्दर प्रसंग आया है :—

एक बार विद्या ब्राह्मण के पास आई और उनसे प्रार्थना करने लगी—हे भूदेव मेरी रक्षा करें। मैं आपकी निधि हूँ। मुझे ऐसे व्यक्ति को कभी न दें जो (१) मत्सरी-ईर्ष्यालु है (२) कुटिल है और (३) प्रमादी है। कारण कि इनके पास जाने से मेरा वीर्य-बल नष्ट हो जाता है। ये मेरा दुरुपयोग करते हैं। मत्सरी सदा छिद्रान्वेषी बना रहता है। ऋजुता के बिना विद्या फल नहीं लाती। कुटिल और मायावी अपने मतलब से उसका

नहीं होते। वे "विद्या विवादाय" को मानकर चलते हैं। इससे उनमे अभिमान आ जाता है। अभिमान ज्ञान का अजीर्ण है। यह अहित के लिये होता है। प्रमादी विद्या का ठीक प्रयोग नहीं कर सकता। उपयुक्त प्रयोग के अभाव में विद्या की कार्यजा शक्ति नष्ट हो जाती है। अत मुझे आप ऐसे व्यक्ति को दें जो ईर्ष्या से रहित है, जो ऋजु है और जो अप्रमादी है, ताकि मैं कुछ क्रियाशील बन सकूं, मेरा वीर्य प्रकट हो सके।

यह कितना सुन्दर प्रसग है। विद्या के साथ उपर्युक्त गुण आते हैं। तब व्यक्ति मेधावी कहलाता है। जैन सूत्रों मे मेधावी की परिभाषा करते हुये कहा है—"सड्ढी आणाए मेधावी"—जो आज्ञा मे श्रद्धावान् है, वह मेधावी है। यहां आज्ञा और श्रद्धा ये दो बातें कही गई हैं। इन्हें समझना अत्यावश्यक है।

आप्तवाणी या आप्तोपदेश को आज्ञा कहा गया है। जिस उपदेश या प्रवचन से आत्म-साक्षात्कार की ओर प्रवृत्ति होती है, वह आज्ञा है। आज्ञा की भी अपनी सीमा है। प्रत्येक व्यक्ति की आज्ञा, आज्ञा नहीं होती। उन्हीं की वाणी या उपदेश आज्ञा है, जो आप्त हैं। आप्त की व्याख्या करते हुए कहा—"जहा वाई तहा कारी"—जो यथार्थवादी है तथा तदनुसार करने वाला है, वही आप्त है। तीर्थंकर, गणधर, चवदह पूर्वधर, मन पर्यवज्ञानी तथा विशिष्ट अवधिज्ञानी आप्त कहे जाते हैं। वे कहीं स्खलित होते ही नहीं, ऐसा मैं नहीं कहता। स्खलित होने पर भी वे अपनी भूल समझ जाते हैं तथा उसका प्रायश्चित्त कर शुद्ध बन जाते जाते हैं। अत वे आप्त ही हैं।

श्रद्धा और तर्क दो हैं। श्रद्धा में तर्क नहीं होना चाहिये। तर्क दिमागी द्वन्द्व है। उससे सत्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। वह तो केवल उलझाने में समर्थ है। जहां तर्क केवल जिज्ञासा के रूप मे होता है, वहां श्रद्धा को उससे बल मिलता है, विकास होता है। "तमेव सच्चं निस्संकं ज जिणेहिं पवेइय"—यह श्रद्धा का उत्कर्ष है। इसमे तर्क नहीं होता। तर्क आते ही श्रद्धा डगमगा जाती है।

मेधावी वह है जिसकी रग-रग में श्रद्धा के कण उफनते हैं। तर्क उसे पराजित नहीं करता आशंका उसे डिगा नहीं सकती।

२१ दिसम्बर १९५६ को प्रातःकाल बाठोतिया भवन लक्ष्मीमण्डी में प्रवचन।

प्रवचन (११)

आत्मगवेषणा का महत्व

मनुष्य भौतिक गवेषणा में कितना ही क्यों न बढ़ जाय वह जीवन के सही लक्ष्य की पूर्ति की दिशा में कुछ नहीं कर सकेगा, जब तक कि वह आत्म-गवेषणा की ओर उन्मुख नहीं होगा। जैसा भारतीय महर्षियों ने कहा है—जिसने आत्मा को नहीं जाना उसने ज्ञान की परख नहीं की उसने कुछ नहीं जाना। सब कुछ जानकर भी वह अज्ञानी है। भारतीय तत्त्व-दर्शन में उस विद्या को अविद्या कहा है उस ज्ञान को अज्ञान कहा है, जहाँ आत्मा को पवित्र बना ऊपर की ओर नहीं ले जाया जाता। इसीलिये मैं आप लोगों से कहूँगा कि आप अपने में अन्तर्मुखी दृष्टि पैदा करें। उससे पराङ्मुख होने की न सोचें। केवल बहिर्जगत में रचे-पचे रहने से कुछ नहीं बनेगा।

आज स्कूलों कालेजों युनिवर्सिटियों की दिनों दिन वृद्धि हो रही है। विभिन्न विषयों पर बड़े बड़े गवेषणा-केन्द्र काम कर रहे हैं, पर आत्म-गवेषणा की ओर उपेक्षा सी हो रही है। यह भूल है। इसीलिये सत्य शौर्य शील और नीति आदि मानवीय गुण बढ़ने के बजाय घट रहे हैं। यह जीवन क्या जीवन हुआ जिसमें सत्य शौर्य और शालीन

से जर्जर है। वह कैसा जीवन है ? वह तो केवल हाड-मांस का लोथडा है।

२९ दिसम्बर १९५६ की दोपहर को ३ बजे आचार्य श्री के इस प्रवचन की व्यवस्था श्रीरामइण्डस्ट्रियल रिसर्च इन्स्टीट्यूट मे विशेष रूप से की गयी थी।

इन्स्टीट्यूट का पुस्तकालय भवन अधिकारियो व कार्यकर्ताओ से खचाखच भरा था। आचार्य श्री के पधारने पर इन्स्टीट्यूट के डाइरेक्टर डा० टी० एन० दारूवाला का स्वागत भाषण हुआ।

कार्यकर्ताओं के अनुरोध पर आचार्य श्री ने गवेषणाशाला के कई स्थानों का निरीक्षण किया। लोहे के काट से बनी हुई रुई भी देखी और कुछ जांच कर साथ भी लाये।

प्रवचन (१०)

आत्मविस्मृति का दुष्परिणाम

आचार्य श्री ने अपने प्रवचन में कहा—किसी के प्रति शत्रुभाव न रखना, किसी का बुरा न चाहना और न अपनी ओर से किसी के प्रति प्रतिकूल आचरण करना अहिंसा है। यह मैत्री और बन्धुत्व का मूल है। अणुबम और उद्जनबम की विभीषिका से सत्रस्त मानव के लिये यही एक मात्र त्राण है। अहिंसा कायरों का नहीं, वीरों का धर्म है। इसके लिये बहुत बडे आत्मबल और धीरज की अपेक्षा है। हिंसा और प्रतिशोध के दुर्भावों से अभिशप्त मानवता के लिये यही वह मार्ग है, जो उसे शान्ति की राह पर ले जा सकता है। अणुव्रत आन्दोलन

यही तो सिखाता है कि किसी के प्रति आक्रान्ता मत बनो निरपराध को मत सताओ, अर्थ लिप्सा और लोभ के वशीभूत दूसरों में अपना सन्तुलन न बिगाड़ो। धन जीवन का साध्य नहीं है। उसके पीछे लालसा और दुराचरण को मत बोओ।

आज के मानव की सबसे बड़ी भूल यह है कि वह नई-नई बातों को जानने खोजने और समझने की कोशिश करता है पर वह अपने आपको भूल जाता है। आत्मा अनन्त शक्तियों और सुखों का स्रोत है जिसे पहचानने की वह जरा भी चिन्ता नहीं करता।

अणुव्रत आन्दोलन व्यक्ति को आत्मोन्मुख बनाना चाहता है। उसका अर्थ है—जीवन में व्याप्त बहिर्मुखता का परिहार और अन्तर्मुखता का उभार। यदि ऐसा हुआ तो अर्थ लोलुपता और पदलोलुपता से जन्य काला बाजार, धोखा विश्वासघात और रिश्वत जैसी अनैतिक और अनाचार भरी प्रवृत्तियां स्वतः उन्मूलित हो जाएँगी। मैं पुनः आप लोगों से यही कहना चाहूँगा कि अणुव्रत आन्दोलन जन-जन को आत्मोन्मुख बनाने का आन्दोलन है।

अन्त में आपने युवकों में अनैतिकता और अनुचित प्रवृत्तियों के परिहार के लिये उपयोगी नियमों की विस्तृत व्याख्या की।

५ जनवरी १९५७ को प्रातःकालीन प्रवचन सदर बाजार में हुआ। आहार-पानी से निवृत्त हो आचार्य श्री दोपहर में १ बजे ओल्ड सेक्रेटेरियट के विशाल भवन में पधारे, जहाँ कि प्रवचन की विशेष व्यवस्था की गई थी। दिल्ली राज्य के चीफ कमिश्नर श्री ए. डी. पंडित ने आचार्य श्री का स्वागत किया। आचार्य श्री चीफ कमिश्नर के साथ कमेटी हॉल में पधारे। चीफ कमिश्नर श्री ए. डी. पंडित ने आचार्य श्री का अभिनन्दन करते हुये कहा—

जीवन-व्यवहार की छोटी-छोटी बातों पर हमें गौर करना होगा। उनमें ईमानदारी और सचाई का बहुत बड़ा मूल्य है। यही वे बातें हैं, जिनसे मनुष्य का चरित्र ऊँचा उठता है। आचार्य श्री तुलसी द्वारा

प्रवर्तित एव सचालित अणुव्रत आन्दोलन जीवन-व्यवहार में शुद्धि और चरित्र में ऊँचापन लाना चाहता है। पूजा आदि परम्पराओं का पालन मात्र धर्म नहीं है। धर्म का अर्थ है—नैतिक आचरण। आज जहा हमारे देश मे पचवर्षीय योजना के रूप मे सामाजिक प्रगति का काम चल रहा है, वहाँ नैतिक प्रगति की भी वहुत वडी जरूरत है। उसके विना हमारा काम पूरा नहीं होगा। किसी भी देश मे नीतिमान् और चरित्रवान् लोगों की आवश्यकता होती ही है। हम अपना चरित्र सुधारेंगे तो आर्थिक सुधार पर भी इसका असर पडेगा। आचार्य जी वहुत वडा काम कर रहे हैं, उनके कार्य मे हमें सहयोग देना चाहिये।

प्रवचन के वाद प्रो० एम० कृष्णमूर्ति ने अ ग्रेजी मे अणुव्रत आन्दोलन का सक्षिप्त परिचय दिया। श्री गोपीनाथ अमन, अध्यक्ष दिल्ली राज्य सलाहकार समिति के द्वारा आभार प्रदर्शन करने के वाद आज का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

प्रवचन (पिलानी में) (१३)

ऋषि प्रधान देश

लाखों योद्धाओं को जीतना सहज है पर अपनी एक आत्मा पर विजय पाना मुश्किल है। जिसने अपनी आत्मा को जीत लिया है अथवा भवभ्रमण मे डालने वाले रागद्वेष आदि आत्म-शत्रुओं को जिसने क्षीण कर दिया है, वह वास्तव मे विश्व विजेता है। वह चाहे जिन, विष्णु या वुद्ध किसी भी नाम से कहलाए, उस परम पुनीत आत्मा को हमारा नमस्कार है।

पिलानी मे आने का मेरा यह पहला ही अवसर है। जब मैं राज-

स्थान में पर्यटन करता था तो सुना करता था कि पिलानी विद्या का एक बहुत बड़ा केन्द्र है। बहुत से व्यक्ति मुझे यहाँ आने को प्रेरित भी करते थे। पर मैं आ न सका। इस बार दिल्ली से लौटते हुए मैंने सोचा कि पिलानी भी जाना चाहिये और इसलिये थोड़ा चक्कर खाकर भी यहाँ आना तय कर लिया। आज पिलानी में आकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई जैसी कि विद्या केन्द्रों में आकर मुझे हमेशा हुआ करती है।

इस प्रथम प्रसंग पर अधिक न कहकर केवल इतना ही कहना चाहूँगा कि भारतीय संस्कृति अपने ढंग की अनूठी है, यहाँ आत्म-साधना और त्याग का महत्व रहा है। इसलिये जहाँ एक ओर इसे कृषि प्रधान देश कहा जाता है, वहाँ मैं इसको ऋषि प्रधान देश कहता हूँ। यह ऋषियों, ज्ञानियों, और तप:पूत साधकों का देश रहा है परन्तु खेद का विषय है कि आज तप— जीवन योजन की परम्परा शिथिल होती जा रही है। जीवन दायिनी ऋषिवाणी आज ह्रासोन्मुख है। फलत: जीवन सदाचरण और सद् चर्या से सूना हुआ जा रहा है। सांस्कृतिक परम्पराएँ अपमानित हो रही हैं। आज भारतीयों को जगाना है। अपने अस्त-व्यस्त चारित्र्य जीवन और दमकती सांस्कृतिक परम्पराओं को सहारा देना है। यह सहारा एक मात्र धर्म है। मैं इसे सम्प्रदाय जाति और वर्ग भेद से नहीं बाँधता। मेरी निगाह में धर्म वह है जो विश्व मैत्री और विश्व बन्धुत्व की सुदृढ़ भित्ति पर अवलम्बित है, जो सत्य और अहिंसा के विशाल खम्भों पर टिका है, जो निर्धन धनवान और सबल दुर्बल के भेद से अछूता है। जो शान्ति का स्रोत और करुणा का निकेतन है। मैं चाहूँगा भारत का भारतीय इस व्यापक और विश्व कल्याण धर्म से अपने को अनुप्राणित करे। विद्यार्थी जीवन से ही इन्हीं सद्वृत्तियों की ओर झुकाव हो तो कितना अच्छा हो। विद्यार्थियों में विनय विवेक और सदाचार की मैं बहुत बड़ी आवश्यकता समझता हूँ। मुझे आशा है विद्यार्थी इस ओर ध्यान देंगे।

यह प्रवचन पिलानी के बिड़ला कालेज में सबसे पहला था। दिल्ली से सरदार शहर को लौटते हुए आचार्य श्री १६ जनवरी १९५७ को

दोपहर १२ बजे 'मोखा' मे ४ मील का विहार करके राजस्थान के सुप्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र पिलानी पधारे।

मार्ग मे सेठ जुगलकिशोर जी बिडला तथा बिडला विद्या विहार के कुलपति श्री शुकदेव जी पाडे आदि कई सज्जन एक मील के करीब अगवानी तथा अभिनन्दन करने आये। यहाँ सबसे पहला कार्य-क्रम बिडला हाई स्कूल मे 'स्वागत समारोह' तथा विद्यार्थी सम्मेलन का सम्मिलित आयोजन था। विशाल हॉल विद्यार्थियो और नागरिको से भरा था। आचार्य श्री के हॉल मे पधारने पर सबने बडी शाति मे प्रणाम और अभिवादन किया।

सेठ जुगलकिशोरजी बिडला ने अतिविनम्र और श्रद्धायुक्त शब्दो में आचार्य श्री का अभिनन्दन किया।

मुनि श्री नगराजजी ने छात्रो को आचार्य श्री का तथा उनके सान्निध्य में चलने वाले कार्यक्रमो का परिचय दिया। उसके बाद आचार्य श्री का प्रभावशाली प्रवचन हुआ।

प्रवचन (१४)

विद्यार्थी जीवन का महत्व

भवबीजाङ्कुर जनना रागाद्या क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं रहती, जब मैं अपने को विद्यार्थियों के बीच पाता हूँ। आज इन छोटे-छोटे खिले हुए फूलों को सम्मुख देखकर सचमुच मुझे बहुत हर्ष है। हम लोग शोधक हैं, हमे गन्दगी पसन्द नहीं, हम सफाई चाहते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि हमें कीचड से भरे हुए

चरम भोगने पड़ते हैं। अच्छा हो कि वे उस रूप में पैदा ही न किये जायें। हमें शुद्ध रूप में ही मिलें और हम उन्हें सुसंस्कारित कर दें। बालिग को सुधार करने में बड़ी कठिनाई होती है और उन्हें सुधारने में बहुत सा समय खर्च हो जाता है। किन्तु हम देखते हैं बच्चों के अभिभावक इस विषय में सतर्क नहीं रहते। मुझे खुशी है कि प्रस्तुत संस्था में बालकों को नैतिक दृष्टि से अच्छे सांचे में ढाला जा रहा है। बच्चों के शान्त वातावरण को देखकर मुझे लगा कि वे काफी सभ्य बनाये जा रहे हैं। राजस्थानी कहावत है—"बोए की लाज बने बाछा" याद होता है इनकी सभी प्रसन्नमुख में बने आदें ही वे देते हैं।

मैं मानता हूँ कि प्रत्येक को विद्यार्थी बने रहना चाहिये। जो विद्यार्थी बना रहेगा वह हर वक्त कुछ न कुछ पा सकेगा क्योंकि उसके दर्शन का रास्ता सदा खुला रहता है। विद्यार्थी रहने का अर्थ है—कुछ न कुछ प्राप्त करने की अवस्था में रहना। इस दृष्टि से हम स्वयं विद्यार्थी हैं और रहना भी चाहते हैं।

मैं मानता हूँ संस्कार भरने की दृष्टि से बाल्य-अवस्था से बढ़कर कोई अन्य अवस्था नहीं। इसमें जो संस्कार भरे जाते हैं, वे गहरे जम जाते हैं। पर खेद है कि आज जो विद्यार्थियों को संस्कार मिल रहे हैं वे अच्छे नहीं हैं। आज वे नास्तिकता के वातावरण में पल रहे हैं, वहाँ उन्हें आत्मा परमात्मा, धर्म और सद्व्यवहार की कोई शिक्षा नहीं मिलती। प्रत्युत इससे विरोधी तत्त्व उनके जीवन में भरे जाते हैं। भौतिकता आज चरम सीमा पर है और लोग उसमें अधिकाधिक फंसते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में छात्रों में भी उसका आकर्षण स्वत: आ जाता है और छात्र अपने स्वभाव को पाने में सफल नहीं होते। आज शिक्षा-क्षेत्रों में भी इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। मैं समझता हूँ धर्म के मौलिक आदर्श यदि छात्रों के जीवन में आ जायें तो उनकी नींव पक्की हो जाती है। आजीवन वे चरित्र निष्ठ और उदार बने रहते हैं।

धर्म इस्लाम जैन ईसाई और हिन्दू नहीं। ये तो धर्म के तरीके हैं।

धर्म का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है "धारणात् धर्म उच्यते" जो धारण करने वाला है वह धर्म है, और प्रवृत्ति लभ्य अर्थ है —आत्मा की शुद्धि का साधन। जिससे आत्मा अपनी शुद्धावस्था को पाती है, वह धर्म है। जैसे शरीर को आभूषित करने के लिये सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहने जाते हैं वैसे ही जीवन को अलकृत करने के लिये धर्म का आचरण आवश्यक है।

धर्म का स्वरूप है—अहिंसा, सत्य और उदारता। इस धर्म का सबन्ध किसी जाति, वर्ग और सप्रदाय से नहीं, इसका सीधा सबन्ध जीवन और आत्मा से है। जीवन को परिमार्जित करने के लिये ही इसका उपयोग होता है। जीवन जब मँज जाता है, आत्मा के समस्त बधन टूट जाते हैं तो आत्मा—परमात्मा मे कुछ भेद नहीं रहता।

सबसे पहली बात—मैं कौन हूँ और मेरा क्या कर्त्तव्य है—यह व्यक्ति को भान रहे। यह ज्ञान उसे नहीं रहता तो वह कर्त्तव्योन्मुख कैसे हो सकता है? इस प्रसग को स्पष्ट करने के लिये एक कहानी सुनादूं, क्योंकि सामने बाल मडली जो है।

एक शेर के बच्चे की माँ मर गई। उसके लिये बडी दुविधा हुई। जगल मे उसका कौन सहायक? विधिवश एक ग्वाला उधर से निकला। उसने बच्चे को देखा और उठा लिया। बकरियों का दूध पिला पिला कर उसे पाला। जगल मे बकरियो के साथ वह भी घास चरने लगा। उसे यह ज्ञान तक न रहा कि मैं शेर हूँ।

अकस्मात् एक दिन एक शेर आया। उसकी आवाज सुनकर सारी बकरियाँ भागने लगीं। वह भी भागा। मगर पीछे मुडकर जब उसने उस शेर को देखा, तब सोचा—अरे! यह तो मेरे जैसा ही है। क्या मैं ऐसी आवाज नहीं कर सकता। फौरन वह अपने आपको पहचान गया। इसी प्रकार अपने स्वरूप को पहचानने की आवश्यकता है।

अभिभावकों और अध्यापकों को चाहिए कि वे बच्चे को शिक्षा पुस्तकों से नहीं, अपने जीवन व्यवहार से दें। जीवन व्यवहार की शिक्षा स्थायी होती है।

आज छात्रों में जो उद्दंडता और अनुशासनहीनता बढ़ रही है, वह खतरनाक है। छात्रों को हर एक छोटी-छोटी बात पर भी विशेष ध्यान रखना चाहिये

कांग्रेस के महामन्त्री श्री श्रीमन्नारायण जी ने अणुव्रत गोष्ठी में कहा था कि मुझे अणुव्रत आन्दोलन की इसी बात ने आकृष्ट किया है कि इसके नियम छोटे-छोटे दैनिक व्यवहारों को विशेष महत्व देते हैं तथा उन्हें सुधारने का आग्रह रखते हैं।

जैन धर्म में जीवन शुद्धि की छोटी-छोटी चीजों को भी विशेष महत्व दिया गया है। साधक पूछता है—

कहं चरे कहं चिट्ठे कहमासे कहं सए।
कहं भुंजंतो भासंतो पावकम्मं न बंधई॥

प्रभो! बतलायें, मैं कैसे चलूं कैसे स्थिर रहूं कैसे बैठूं और कैसे सोऊं? कैसे भोजन करते और बोलते हुए मैं पाप कर्म न बांधूं? गुरु उसे विधि बताते हुए कहते हैं—

जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधई॥

अर्थात् यत्नपूर्वक चल स्थिर रह बैठ और सो। यत्नपूर्वक खाते हुए और बोलते हुए के पाप कर्म नहीं बंधते। क्योंकि उससे किसी को भी कष्ट नहीं होता।

भारतीय संस्कृति का मूलमन्त्र है— आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्”—जिन चीजों से अपने को दुःख होता है वे दूसरों के लिये भी न की जायें। अणुव्रत आन्दोलन की यही प्रेरणा है। ये नियम बच्चे, तरुण और वृद्ध सभी के लिये समान रूप से आवश्यक हैं। चाहे कोई भी हो जीवन में सीमा आवश्यक होती है। अणुव्रत नियम जीवन में सीमा निर्धारण करते हैं।

अध्यापको का दायित्व

अध्यापको को लक्ष्य करके आचार्य श्री ने कहा—

"अध्यापक शिक्षा के अधिकारी हैं और वे शिक्षा देते हैं पर मैं समझता हूँ वे शिक्षाएँ उनके जीवन मे ओत-प्रोत होनी चाहिये। ऐसा होने पर आपको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, छात्र स्वय आपके जीवन से शिक्षा ग्रहण करेंगे। इसलिये मैं चाहता हूँ, अध्यापक अणुव्रतों के साँचे मे ढलें। जो आप विद्यार्थियों से चाहते हैं, पहले वह स्वय करें। अपने को सयत बनाये विना और खुद का दमन—नियत्रण किये विना न हम दूसरों को कुछ सिखा सकते हैं और न स्वय ही सुखी बन सकते हैं।'

प्रश्नोत्तर

प्रवचन के बाद कुछ प्रश्नोत्तर भी हुये। विद्यार्थियो ने विविध प्रश्न किये, जिनका आचार्य प्रवर ने सरल एव बोधगम्य भाषा मे समाधान किया।

प्रश्न—आत्मा परमात्मा मे फर्क नही तो भय कैसा ?

उत्तर—परमात्मा सर्व द्रष्टा है। उससे कोई कार्य छुपा नही रहता। अत हम बुरा कार्य न करें, यह भावना रखना ही डर है और यहाँ हिंसात्मक भय से मतलब नही।

प्रश्न—आप क्या करते हैं ?

उत्तर—एक वाक्य मे इसका यही उत्तर है कि हम साधना करते हैं और विस्तार मे पढना, लिखना, उपदेश देना, स्वाध्याय करना आदि अनेक सयमानुकूल प्रवृत्तियाँ करते हैं।

प्रश्न—आप क्या खाना खाते हैं ?

उत्तर—हम सात्विक भोजन करते हैं, मादक खाना नहीं खाते, कच्चे फल नही लेते। मास नही खाते।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य को आप अणुव्रत कहते हैं तो महाव्रत किसे कहेंगे ?

उत्तर—ब्रह्मचर्य का सम्पूर्ण पालन महाव्रत है और उसके अंश का पालन अणुव्रत कहलाता है।

प्रश्न—आपके मन में जैन धर्म का प्रचार करने की इच्छा कैसे उठी?

उत्तर—मेरे पूर्वज जैन धर्मावलम्बी रहे हैं। मैं भी गृहस्थावास में इसे ही मानता रहा हूँ। कुछ पूर्व संस्कारों की और कुछ यहाँ की प्रेरणा मिली। फलस्वरूप मैं जैन धर्म का परिव्राजक और प्रचारक बन गया।

इस प्रवचन की व्यवस्था १९ जनवरी सन् १९५७ को बिड़ला मांटेसरी पब्लिक स्कूल में विशेष रूप से की गयी थी।

प्रवचन के बाद मुख्याध्यापक श्री राधारमण पाठक ने आचार्य श्री के प्रति आभार प्रदर्शन किया। विद्यार्थियों द्वारा समवेत स्वर से गाये गये सामूहिक गान से कार्य-क्रम समाप्त हुआ।

प्रवचन (१५)

विद्यार्थी-भावना का महत्त्व

सब से पहले मुझे आप से क्षमा याचना करनी है। यह इसलिये कि मेरा कार्यक्रम सूचना के अनुसार नहीं हो पाया। बरसती बूंद बूंदों के कारण मैं नहीं पहुँच सका। कल वर्षा ने रोक लिया। आप सोचें—हम कितने कमजोर हैं। साधारण से साधारण चीजें हमें रोक देती हैं। कहाँ आपको बड़े बड़े दल भी नहीं रोक सकते वहाँ मामूली से मामूली आँधियां और वर्षा की बूंदें भी हमें रोक देती हैं। पर इसके माने आप यह न समझें कि हम वस्तुत कमजोर हैं। भारतीय संस्कृति में यह बात नहीं है।

पाप भीरुता, कायरता या दुर्वलता नहीं, वह तो आत्मवल का प्रतीक है। अत अपनी चारित्र्य चर्या के भौतिक नियमों को सुरक्षित रखने की दृष्टि से ही मैं दो दिन तक नहीं आ सका। कल आप लोग मेरा प्रवचन सुनने को आये और निराश लौटे, इसका मुझे दु ख है। कल मुझे अपने स्थान पर वैठे वैठे कभी प्रकृति पर रोष आता था, कभी यह पद याद आता था कि—"श्रेयासि वहुविघ्नानि"—कल्याण कार्यो मे अनेक विघ्न आ ही जाते हैं। पर मनुष्य उनसे परास्त न हो, वह उलटा उनको हटाता चले, यही सवसे सु दर वात है।

मैंने जो क्षमा याचना की वात कही सो तो जैन दर्शन का आदर्श है—

"खामेमि सव्व जीवे, सव्वे जीवा खमतु मे" अत इस दृष्टि से, मैं अगर आपसे क्षमा याचना करूँ तो उचित ही है। मैं वहुत दिनों से सोच रहा था कि पिलानी विद्या केन्द्र मे मैं आऊँ। वहुत से लोगों ने मुझ से यहाँ आने का आग्रह भी किया पर हम पैदल चलने वालों के लिये यह इतना सहज नहीं होता, अत ऐसा नहीं हो सका। श्री जुगलकिशोरजी विडला ने भी मुझे यहाँ आने के लिये कहा था। अव मैं यहाँ आप ोगों के वीच हूँ। विद्यार्थियों मे रहकर मुझे एक स्वर्गीय सुख का अनुभव हुआ करता है। यह मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसका कारण भी है—आप विद्यार्थी हैं और मैं भी विद्यार्थी हूँ। आप मुझे कहेंगे, आप आचार्य हैं, महात्मा हैं। पर मैं आप से सच कहता हूँ—मैं तो जीवन-भर विद्यार्थी ही रहना चाहता हूँ और यह मानता भी हूँ कि मनुष्य को जीवन भर विद्यार्थी ही रहना चाहिये।

भर्तृहरि ने एक जगह कहा है—

"यदा किञ्चिज्ज्ञोऽह द्विप इव मदान्ध समभवम्।"

यह ऋषि वाणी है और अनुभूति की वाणी है। इसका मतलव है, मनुष्य जव तक अल्पज्ञ होता है, तव तक वह अपने आपको महान् मानता है। वही फिर ज्यों-ज्यों ज्ञान को प्राप्त करता जाता है, त्यों-त्यों स्वय ही

वह समझ सकता है कि वह कितना भ्रामक है। अतः मैं तो अपने आपको जीवन-भर विद्यार्थी रहने की आवश्यकता अनुभव करता हूँ।

मुझे जीवनभर विद्यार्थी रहने की शिक्षा मिली है। और आज भी जब मैं अपने साधु साध्वियों को पढ़ाता हूँ तो उनसे भी मुझे बहुत नई चीजें मिल जाती हैं। वास्तव में मैं उनसे बहुत सी शिक्षाएँ पाता हूँ। अध्यापकगण आकर इसका अनुभव अच्छा कर सकते हैं।

मुझे स्मरण होता है जब मैं अपने पूर्वाचार्य श्री कालूगणी जी के पास पढ़ा करता था कभी कभी उनकी कुछ बातें मेरी समझ में नहीं आती थीं। वे मुझे बार बार बताते पर तो भी मैं समझ नहीं पाता था, जब मैं आज उन्हीं बातों को दूसरों को पढ़ाता हूँ तो मुझे बहुत से अनुभव होते हैं। इसलिये मैं बहुधा कहा करता हूँ कि वास्तव में प्रोफेसर ही छात्र होते हैं और छात्र प्रोफेसर।

आप यह सुनकर खुश होंगे कि आज तो महाराज ने अच्छा कहा— हम विद्यार्थियों को भी प्रोफेसर बना दिया और प्रोफेसरों को छात्र। मुझे लगता है अध्यापकगण वास्तव में अपने को छात्र अनुभव करेंगे।

इन चार-पाँच वर्षों में मैं अनेक विद्यार्थियों के सम्पर्क में आया हूँ। जैसे आप भी छात्र हैं और मैं भी छात्र हूँ। तब आप और मैं तो एक ही हैं। मैं आपको क्या बताऊँ। आप सोचते होंगे कि बड़े-बड़े नेताओं से मिलकर आया हूँ आपको कुछ नई बात सुनाऊँगा। पर मेरे पास ऐसा नया तो कुछ भी नहीं है, जो आपको सुना सकूँ और सोचता हूँ कि नया कुछ होता ही नहीं। आचार्य हेमचन्द्र ने भगवान महावीर की स्तुति करते हुए लिखा है—

यथास्थितं वस्तु दिशन्नधीश !
न तादृशं कौशलमाश्रितोऽसि।
तुरङ्गशृङ्गाण्युपपादयद्भ्यो
नमः परेभ्यो नवपण्डितेभ्यः ॥

भगवन् आप तो वस्तु का जैसा स्वरूप है, वैसा विवेचन करते हैं।

अत आप में उन अन्य दर्शनीय नये पडितों जैसा कौशल कहाँ जो घोड़े के भी सींग होने का निरूपण कर डालने की क्षमता रखते हैं ?

यह व्याज स्तुति है। मेरा तो यह मत है कि नया ससार मे कुछ होता ही नहीं । अत अच्छा हो, हम उन पुराने तत्वों की अवगति कर लें ।

सबसे पहले हमें इस बात पर सोचना है कि हमारा जीवन क्या है ? वह इधर और उधर से रहित नहीं है, क्योंकि वह धारावाही प्रवाह है। इससे यह स्वीकार करना पड़ता है कि हमारा पूर्व जन्म था और पुनर्जन्म भी ग्रहण करना पडेगा। अगर हम आगे और पीछे दोनों तरफ नहीं देखेंगे तो यथेष्ट विकास नहीं कर पायेंगे। इसे ही मैं आस्तिकवाद कहता हूँ । यानी आत्मा-परमात्मा, धर्म कर्म की केवल विवेचना ही नहीं, मान्यता भी हो, यही आस्तिकवाद है। अत सबसे पहले मैं आपको यह कहना चाहूंगा कि आप आत्मा के प्रभाव मे विश्राम कर गुमराह न हो जावें, केवल तर्क मे ही अपने आपको न भूल जाइये।

ऋषियों ने हमे तीन बातें बताई हैं—श्रद्धा, ज्ञान और चरित्र। इसीलिये शास्त्रो मे कहा गया है—अगर सम्यक् श्रद्धा न हो तो ज्ञान होते हुए भी आदमी अज्ञानी हो जाता है। श्रद्धायुक्त आदमी ही ज्ञानी है। तीसरी चीज है—चरित्र यानी सदाचरण। इसीलिये कहा गया है—सम्यग्ज्ञान दर्शन चरित्राणि मोक्ष मार्ग ।

आज मेरी समझ मे सबसे बड़ी जो कमी है वह है श्रद्धा की। उसके बिना मनुष्य को अपने आपको पहचानने की ताकत नहीं मिल सकती। दर्शन और विज्ञान मे यही फर्क है। दर्शन हजारो वर्षों से चला आ रहा है पर उसके चिंतन मे हमेशा आध्यात्मिकता का अकुर रहता है। इससे दार्शनिकों ने गहरे चिन्तन के बाद सत्य और अहिंसा के तत्व ससार को दिये हैं। वैज्ञानिकों ने भी गहरा अनुशीलन किया और इसके फलस्वरूप उन्होंने ससार को एटमबम और हाइड्रोजन बम दिये। समुद्र-मथन में अमृत भी निकला और विष भी। अमृत से ससार का भला हुआ और

मिल से यह हल हो गया। इसी प्रकार दार्शनिकों के मनन से सत्य और अहिंसा मिलती और वैज्ञानिकों के मनन से बम।

इसीलिये आज उन्हीं वैज्ञानिकों का जिन्होंने बम तैयार किये हैं, कहना है कि जब तक इन पर आध्यात्मिकता का अंकुश नहीं होगा तब तक वास्तविक शान्ति स्थापित नहीं हो ही सकती।

आज सबसे पहले हमें यह सोचना है—हमारा लक्ष्य क्या है? कुछ लोग तो इस विषय पर सोचने का कष्ट नहीं करते और कुछ लोग सोचते हैं—वे अपनी पारिवारिक सुविधाओं को बढ़ाना ही अपना लक्ष्य मानते हैं। पर यह भूल में भूल है। शिक्षा का यह लक्ष्य कदापि नहीं हो सकता। उसका लक्ष्य तो है—अपने आपको सुसंस्कृत बनाना। इसीलिये कहा गया है—"ऋतु विज्ञा चरथ यमोक्ष सा विद्या या विमुक्तये" वाली शिक्षा का लक्ष्य है मुक्तिलाभ। मुक्ति का अर्थ है वास्तविक शान्ति। यदि शिक्षा से वास्तविक शान्ति नहीं मिली तो अपना पेट तो कीड़े मकोड़े भी भर लेते हैं। उसके लिये इतना सिर-खपौवल क्यों? पर शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य है—स्थायी शान्ति।

शिक्षा अर्जन का सही अर्थ है—जिस शिक्षा को पुस्तकों में से प्राप्त किया उसे क्रियाओं में ही नहीं अपने जीवन में उतारा जाए। कदम-कदम पर यह जीवन में व्यापक बने। इसीलिये तो जिस वाक्य को अन्य विद्यार्थियों ने पाँच मिनट में याद कर लिया था, उसे धर्मपुत्र युधिष्ठिर महीनों में भी याद नहीं कर पाये। वह वाक्य था "क्रोध मा कुरु" अर्थात् क्रोध मत करो। उसे सबने याद कर लिया दुर्योधन ने भी याद कर लिया पर धर्मपुत्र याद नहीं कर पाये। अध्यापक ने पूछा क्या तुम ने याद कर लिया? उसने कहा—हाँ कर लिया। पर धर्मपुत्र बोला गुरुदेव! आपने पहला वाक्य बताया था—"सत्य वद" अर्थात् सत्य बोलो वह तो याद हो गया है, पर "क्रोधं मा कुरु"—यह याद नहीं हो पाया है। अध्यापक को गुस्सा आ गया। आप जानते हैं पहले की अध्ययन-अध्यापन शैली दूसरी थी और अध्यापन का मानदण्ड भी दूसरा था।

पहले अध्यापक छात्रों की मरम्मत भी कर देते थे, पर आज युग बदल गया है। उल्टे विद्यार्थी अध्यापकों की मरम्मत कर देते हैं। अत अध्यापकों को डर रखना पडता है, कहीं विद्यार्थी उनका अपमान न कर दें। इसीलिये वे विद्यार्थियों को कुछ कहते भी नहीं। अस्तु !—हां तो अध्यापक ने गुस्से मे आकर धर्मपुत्र के जोर से एक चांटा लगा दिया। इतना होना था कि धर्मपुत्र खुशी से उछल पडे और कहने लगे—अच्छा, याद हो गया-याद हो गया।

अध्यापक विस्मय में पड गये। उन्होंने धर्मपुत्र से इसका कारण पूछा। धर्मपुत्र कहने लगे—मैं याद होना उसको मानता हूं, जितना मैं अपने जीवन में उतार लेता हूं। अन्यथा पढ़ने मात्र से मैं किसी बात का याद हो जाना नहीं मानता। मैंने इसका अभ्यास तो किया था पर आज मार पडने पर मैंने यह जान लिया कि वास्तव मे वह पाठ मुझे याद हो गया है।

आज के हमारे विद्यार्थियों ने अनेकों डिग्रियां प्राप्त कर ली हैं पर क्या उन्होंने यह पाठ पढ़ा है ? क्या प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी वे गुस्सा नहीं करते ? साधना यही है कि जो कुछ पढ़ा जाए, उसे जीवन में उतारा जाए। धर्म शास्त्रों में अनेकों अच्छी बातें लिखी पडी हैं, पर आज आवश्यकता है उनको जीवन में उतारने की। यदि ऐसा नहीं हुआ तो पढ़े और अनपढे मे कोई अ तर नहीं है। शास्त्रों मे पूछा गया है—पडित कौन ? वहां उत्तर है—जिसका जीवन सयत है, वही पडित है। अत आज ऐसा वातावरण बनाने की आवश्यकता है।

नेता लोग भी चिंतित हैं। वास्तव में हैं या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता पर देखने में तो वे बडे चिंतित लगते हैं। वे कहते हैं—आज की शिक्षा प्रणाली सुन्दर नहीं है पर हम इसे सुधार भी नहीं कह सकते। तो मैं कहा करता हूं—आखिर इसे सुधारने के लिये क्या कोई ब्रह्मा जी आयेंगे ? पर यह सही है कि वे चिंतित हैं। उनके पास कोई उपाय नहीं ? इसका कारण क्या है ? स्पष्ट है—वातावरण उनके अनुकूल नहीं

है। वे जो सुधार करना चाहते हैं, वह कर नहीं पा रहे हैं।

आज थोड़ी सी बात हुई कि विद्यार्थी हड़ताल, भूख हड़ताल और मारकाट करने से भी नहीं चूकते। यह देख कर बड़ा दुःख होता है। जिस बुनियाद को हम बनाने जा रहे हैं उसमें दिक्कतें आती हैं।

मैं मानता हूँ आपकी कोई मांग हो सकती है पर बड़े बड़े विरोध भी जब समझौते से सुलझाये जा सकते हैं तो छोटी छोटी बातों के लिये ऐसे अनुचित काम कर बैठना क्या सचमुच लज्जा की बात नहीं है? देश के प्रांतीय पुनर्गठन के बारे में विद्यार्थियों ने जो जो कुछ किया, क्या यह शर्म की बात नहीं है? मैंने जहाँ तक सुना है विद्यार्थियों ने उस समय उपद्रवों में बहुत बड़ा भाग लिया था। हो सकता है उनको प्रोत्साहित करने में किन्हीं अवांछित तत्वों का हाथ रहा हो, पर यह सही है कि विद्यार्थियों ने इसमें अपनी अनुशासनहीनता का परिचय दिया था। कम से कम हमारे भारतीय विद्यार्थियों के लिये यह कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

अणुव्रत आंदोलन

अनेकान्त का सिद्धांत हमें हर परिस्थिति में समझौते की शिक्षा देता है। अणुव्रत आंदोलन भी यही बात बताता है। देश में आज धार्मिक, सामाजिक राजनैतिक आदि अनेकों आंदोलन चलते हैं। आज कल भूदान का भी आंदोलन चल रहा है पर अणुव्रत आंदोलन आध्यात्मिक विकास और नैतिक सुधार का आंदोलन है। भारत में सुधार होगा तो वह हृदय परिवर्तन से ही संभव है बल प्रयोगों से नहीं हो सकता। अणुव्रत जन-जन में यही भावना भरना चाहता है। यह किसी धर्म विशेष का आंदोलन नहीं है। क्योंकि यदि यह किसी धर्म विशेष का—किसी एक धर्म का हो जाता है तो दूसरे उसे स्वीकार करने में संकोच करेंगे। वास्तव में तो धर्मों में कोई भेद होता ही नहीं। जैन जिन्हें मोक्ष कहकर पुकारते हैं, वैदिक उन्हें मोक्ष कह सकते हैं और बौद्ध उन्हें निर्वाण कहते हैं। बात एक ही है। अणुव्रत आंदोलन उन सबका—छोटे छोटे व्रतों का संग्रह है।

आप पूछेंगे, आप अहिंसा की बातें तो करते हैं पर देश पर आक्रमण हुआ तो आप की अहिंसा क्या काम आयगी। पर मैं आप से कहूँगा—आप इसे गौर से पढ़ें। अणुव्रत आप को यह नहीं कहता कि आप देश, समाज और परिवार की रक्षा करना छोड दें। क्योंकि यह महाव्रत का मार्ग है, अणुव्रत का मार्ग है किसी पर आक्रमण नहीं करना। यह न तो महाव्रत का मार्ग है और न अणुव्रत का। महाव्रत सारे लोगो के लिये कठिन पडता है और अव्रत तो विनाश का मार्ग है ही। अत इन दोनों का मध्यम मार्ग है—अणुव्रत। इसके बिना जनता का जीवन स्तर ऊँचा नहीं उठ सकता।

यह एक प्रश्न गांधी जी के सामने भी रखा जाता था और मेरे सामने भी आया करता है कि अगर सारे सन्यासी बन जायेंगे, ब्रह्मचारी बन जायेंगे तो यह सृष्टि कैसे चलेगी। मै आपसे कहूँगा—आप उसकी चिन्ता न करें। खुद अणुव्रती तो बनें। यह सन्यास का मार्ग तो नहीं है। इस प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति के सुधार की यह योजना आप के सामने है। जीवन में इसे उतारें। हमको इसी रूप मे आप के सहयोग की उपेक्षा है।

अत में मैं आप से यह भी कह देना चाहता हूँ कि यहां आकर मैंने आप पर कोई एहसान नहीं किया है। यह तो मेरी अपनी साधना है और इसीलिये अगर आपने मेरी बात को शाति से सुना है तो आपने भी मेरा कोई एहसान नहीं किया है। आपको भी यह साधना ही होनी चाहिए।

प्रस्तुत समारोह में डा० श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०, पी० एच० डी० तथा श्री छगनलाल शास्त्री ने भी अपने विचार प्रकट किये।

प्रवचन के लिये निर्धारित पिछले समयो मे कुहरे तथा वर्षा के कारण आचार्य श्री का ऑडिटोरियल हाल मे पधारना नहीं हो सका था। दो दिन बाद १९ जनवरी १९५७ को आकाश साफ हुआ। सब के मन में उल्लास था। विद्या विहार के कालेजों तथा अन्यान्य शिक्षण संस्थाओ के छात्रों की प्रबल इच्छा थी कि आज तो आचार्य श्री को प्रवचन के लिए

यहाँ पधारना ही चाहिए क्योंकि पिछले दो दिन कोहरे और वर्षा के कारण कोई आयोजन तथा कार्यक्रम नहीं हो सका था। आचार्य श्री प्रातःकाल ही शिव गंगा स्थित अतिथि निवास में पधार गये थे। वहाँ से हैलेन्ड ऑडिटोरियम हाल में प्रवचन करने पधारे। हॉल विद्यार्थियों और अध्यापकों से खचाखच भरा था। दृश्य बड़ा ही मनोरम था। जिला शिक्षा विभाग के [illegible] श्री पुरुषेन्द्र पांडे ने आचार्य श्री के अभिनन्दन में स्वागत भाषण दिया। उसके बाद प्रवचन हुआ।

प्रवचन (२६)

नैतिकता और जीवन का व्यवहार

इन बालिकाओं का यह खिला हुआ जीवन उस नन्हे से बीज जैसा है जो आगे चलकर विशाल वृक्ष के रूप में प्रस्फुटित हो जाता है। परन्तु उस बीज को यथेष्ट वायु, जल खाद आदि न मिलें तो वह मुरझा जाता है। यही बात बालक बालिकाओं के लिए है। यदि इन जीवनमयी सम्पत्ति के संरक्षण संवर्द्धन और विकास की समुचित व्यवस्था नहीं होती तो वे खिले हुए फूल विकास पाने के पहले मुरझा जाते हैं। अध्यापक तथा अध्यापिकाओं का यह सबसे पहला और आवश्यक कर्म है कि वे बालक बालिकाओं के जीवन में अनुशासन शील, मैत्री और आत्मविश्वास आदि सुसंस्कार भरने को सतत जागरूक रहें। इस के लिए उनके अपने जीवन की प्रभावकारिता सबसे पहले आवश्यक है। उनका जीवन छात्र छात्राओं के लिये एक खुली किताब होना चाहिए, जिससे वे उनके जीवन निर्माण की मूर्त एवं सक्रिय प्रेरणा ले सकें।

लोग अनैतिक और अशुद्ध वृत्तियों की ओर धडाधड बढ़ते जा रहे हैं। इसकी मुझे इतनी चिन्ता नहीं, जितनी यह देखकर कि लोगों की यह निष्ठा और आस्था बनती जा रही है कि नैतिकता, सच्चाई और अहिंसा से व्यावहारिक जीवन मे काम नहीं चल सकता। यह नास्तिकता है। जीवन तत्व की विस्मृति है। बालिकाओं में ऐसी भावनाए न जमने पावें ऐसा प्रयास अध्यापिकाओं को करना है। बहिनों से विशेषत कहा करता हूँ कि वे अपने को पुरुषों से हीन न समझें। अपने को हीन समझना आत्म शक्ति को कुण्ठित करना है। वास्तव में उनमें वह अदम्य उत्साह और अपरिमित शक्ति है जो विकास के पथ पर आगे बढ़ने में उन्हें बडी प्रेरणा दे सकती है।

आचार्य श्री का यह प्रवचन १९ जनवरी ५७ को दोपहर मे दो बजे बिडला विद्या विहार के अन्तर्गत बालिका विद्यापीठ मे छात्राओं एव अध्यापिकाओं के बीच में हुआ।

विद्यापीठ की सहायक अध्यापिका श्रीमती प्रेम सरीन ने आचार्य श्री के स्वागत में भाषण दिया।

अन्त मे विद्यापीठ की प्रधानाध्यापिका श्रीमती कौल ने आभार प्रदर्शन किया।

प्रवचन (१७)

अध्यापकों का दायित्व

कहते हुए बड़ा खेद होता है कि आज राष्ट्र में नैतिकता का दुर्भिक्ष आता जा रहा है। ईमानदारी, विश्वास और मैत्री की परम्पराएं टूटती जा रही हैं। इस नैतिक विघटन से जन जीवन आज खोखला हुआ जा रहा है। यदि अनीति और अनाचार के इस बढ़ते प्रवाह को रोका नहीं गया तो कहीं ऐसा न हो कि अनैतिकता का यह सैलाब समस्त मानव को निगल जाय। इन टूटती हुई नैतिक और चारित्रिक भावनाओं को सहारा मिले, लोक जीवन में सत्य निष्ठा और ईमानदारी का समावेश हो इसके लिए, अणुव्रत आन्दोलन के रूप में चारित्रिक उद्बोधन का काम हम चला रहे हैं। अध्यापक शिक्षक शिक्षा शास्त्री जैसे शैक्षिक क्षेत्र के लोग राष्ट्र का मस्तिष्क हैं। राष्ट्र के जीवन को तथा कथित विषम स्थिति से बचाते सही निर्माण और सन्तुलन के मार्ग पर ले चलने का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व उन पर है। इसलिए मैं चाहूँगा चारित्रिक जागृति के काम को लेकर चल रहे अणुव्रत आन्दोलन के अनुगामी कार्यों में वे सहयोगी बनें। दूसरे लोगों तक पहुँचाया जाए, इससे पहले यह आवश्यक होता है कि व्यक्ति स्वयं अपने जीवन को आदर्शों के अनुकूल बनाये। अध्यापकों से मैं कहना चाहूँगा—वे सत्य निष्ठा प्रामाणिकता और निर्भयता—इन तीन बातों को अपने जीवन में उतारें, यदि वे ऐसा कर पाए तो उनका स्वयं का अपना जीवन तो सही मार्ग में प्रगतिशील बनेगा ही राष्ट्र के उन भावी नौनिहाल जिनके जीवन निर्माण का कार्य उनके हाथों में सौंपा गया है उन्हें भी वे उन्नतिपथ की ओर ले जा सकेंगे। राष्ट्र के समक्ष वे शुद्ध आदर्श उपस्थित कर सकेंगे।

यह प्रवचन १६ जनवरी १६५७ को बिन्ना बिहार में इंजीनीयरिंग कालेज के हाल में समस्त अध्यापकों तथा ाध्यापकों के सम्मुख हुआ।

इंजीनियरिंग कालेज के वाइस प्रिंसीपल श्री शाह ने आचार्य श्री का प्राध्यापकों की ओर से अभिनन्दन किया।

अन्त मे इंजीनियरिंग कालेज के प्रिंसीपल श्री लक्ष्मी नारायण ने आचार्य श्री के प्रति आभार प्रकट किया।

प्रवचन (१८)

जैन दर्शन तथा अनेकांतवाद

जैन दर्शन का चिंतन अनेकांतवाद पर आधारित है, जो विश्व की समस्त विचार धाराओं मे समन्वय और सामंजस्य का पथ प्रदर्शन करता है। यह बताता है—एक ही वस्तु को अनेकों अपेक्षाओं अथवा दृष्टियो से परखा जा सकता है। क्योंकि अनेकों अपेक्षाओं को जन्म देते हैं तो उसके निरूपण मे भी आपेक्षिक अनेक-विधता का आना सहज है। यह अनेक विधता संशयोत्पादक नहीं है। यह तो वस्तु के बहुमुखी स्वरूप की निरूपक है। हाथी के विविध अंग प्रत्यंगों को लेकर अपने-अपने द्वारा अनुभूत अंग विशेष को हाथी कह कर लड़ने वाले उन अंधों की कहानी सुप्रसिद्ध है, जिनको किसी नेत्रवान् ने उसी हाथी के भिन्न-भिन्न अंगों का अनुभव कराकर बताया था कि जिसे वे हाथी कह रहे हैं, वह तो उसका एक-एक अंग है। हाथी उन सब अंगों का समवाय है। जैन दर्शन यही तो बताता है कि वस्तु के एक पहलू को

लेकर दुराग्रही मत बनो । लड़ो नहीं, उसे एकान्तिक तथ्य मत समझो । दूसरी अपेक्षाओं से भी वह परखा जा सकता है और उस परखसे निकलने वाला निष्कर्ष पहले से भिन्न भी हो सकता है क्योंकि वह अपेक्षा या दृष्टि पहले से भिन्न है। जैसे एक व्यक्ति किसी का पिता है पर साथ ही साथ वह किसी का पुत्र भी हो है भाई भी तो हो सकता है पति भी तो हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उसमें पितृत्व पुत्रत्व भ्रातृत्व एवं पतित्व आदि अनेकों धर्म हैं। यही जैन दर्शन का स्याद्वाद है जो विश्व की उलझी समस्याओं के हल का अमोघ साधन है।

जहाँ विचार क्षेत्र में अनेकान्तवाद की जैन दर्शन की महत्वपूर्ण देन है, वहाँ आचार के क्षेत्र में अहिंसा की साधना का सफल कार्य जैन दर्शन ने किया। उसने बताया कि किसी को मारना सताना उत्पीड़ित करना, कष्ट देना वीरता नहीं है सच्ची वीरता है हिंसक भावनाओं का आत्मबल के साथ मुकाबला करना। प्रहार करने की क्षमता के होते हुये भी उसका प्रयोग न कर अहिंसक प्रतिकार के लिये खड़ा रहना।

१६ जनवरी १९५७ को रात को ६॥ बजे बिड़ला कोठी में बिड़ला विद्याविहार जैन एसोसियेशन की ओर से 'जैन दर्शन के एरव म आचार्य श्री का यह महत्वपूर्ण प्रवचन हुआ। अनेकों जैन प्रोफेसर एवं छात्र तथा जैन दर्शन में रुचि रखने वाले अन्य प्रोफेसर, विद्यार्थी एवं नागरिक भी उपस्थित थे। प्रवचन के अनन्तर जैन तत्वों पर काफी देर तक प्रश्नोत्तरों के रूप में अत्यन्त मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद विचार विनिमय हुआ।

प्रवचन (१६)

नैतिक निर्माण और जीवन शुद्धि

चुनावों मे अनैतिकता और अनुचित आचरण न रहे, इस पर प्रकाश डालते हुये आचार्य श्री ने कहा—"राष्ट्र में प्रचलित नई राजनीतिक एव सामाजिक परपराओं और व्यवस्थाओं मे जन-जन का जीवन अधिकाधिक शुद्ध, सात्विक और उजला रह सके, इसके लिये अणुव्रत आंदोलन एक चारित्र्यमूलक आलोक देता हुआ सतत प्रयत्नशील है ताकि व्यक्ति प्रखर गति से बहते युग-प्रवाह में तिनके की तरह न बह एक सुदृढ़ स्तभ की नाईं मजबूत बन चारित्रिक आदर्शों पर स्थिर भाव से टिका रह सके। अणुव्रत आंदोलन का एक-मात्र लक्ष्य यह है कि विभिन्न जीवन व्यवहारों मे गुजरता मानव अपने को सच्चरित्रता पर अडिग रख सके। इसी दृष्टि से चुनावों को लक्षित कर इस आंदोलन के अतर्गत हमने एक अहिंसा सत्यमूलक नियमावली राष्ट्र के कोटि-कोटि मतदाताओं और सहस्रों उम्मीदवारों के समक्ष प्रस्तुत की है।

कुछ दिनों के बाद राष्ट्र मे आम चुनाव आ रहे हैं, जिनकी आज सर्वत्र सरगर्मी नजर आ रही है। जिस प्रकार अपने सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं मे व्यक्ति नगण्य स्वार्थों मे पड़ पतनोन्मुख बनता है, उसी तरह चुनावों में भी बहुत प्रकार की बीभत्स और जघन्य वृत्तियाँ बरती जाती हैं। यह सचमुच मानवता के लिये भयानक अभिशाप और घृणास्पद कलङ्क है। मैं चाहूंगा, किसी भी कीमत पर व्यक्ति मानवीय आदर्शों से न गिरे। आसन्न चुनाव-कार्य को लक्षित कर मैं राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक से कहूंगा, वह सत्य और नैतिकता से विचलित न हो, अनैतिकता, और अनाचरण का सर्वतोभावेन परिहार करे।

यदि हम व्यक्ति के सामाजिक पतन के इतिहास के पन्ने उलटें

तो जानेंगे कि एक समय था जब कि इंसान चांदी के टुकड़ों के मोल अपनी लड़कियों को बेचा। समय आगे बढ़ा यह लड़कों को बेचने लगा। पर आज तो स्थिति यहाँ तक बदतर हो गई है कि पैसों के हाथ वह अपने आप को भी बेच डालता है। पैसे लेकर किसी के पक्ष में अपना मत देना अपने आप को बेचना नहीं तो और क्या है ? क्या यह पतन की पराकाष्ठा नहीं है। रुपये पैसे व अन्य अवैध प्रलोभन देकर हिंसात्मक प्रभाव दिखाकर, भय धमकी एवं अश्लील आलोचना का सहारा लेकर मत पाने का प्रयास करना पैसे के लालच में आकर मत देने को तत्पर होना जाली नाम से मत देना मानवता के लिये निःसंदेह एक मलिन कालिमा है। ऐसा करने वाले अपने मानवीय स्वत्व को ठोकरों से रौंदते हैं। जागृत मानवीय चेतनशील नागरिक ऐसा कर अपने जीवन की चादर को पाप की स्याही से काली न बनावें। यह नाशिक पतन है, जो मानव को जीवन शुद्धि के एवं सत्कर्मों के मार्ग से पराङ् मुख बना अवनति की ओर ले जाता है।

ता० २ जनवरी १९५७ को दोपहर के १ बजे सिवानी के पास रिको की ओर से बाजार में नागरिकों की एक विशाल सभा का आयोजन किया गया जिसमें आचार्य श्री ने उन्हें नैतिक निर्माण और जीवन शुद्धि का उच्च सन्देश दिया।

प्रवचन के बाद सैकड़ों नागरिकों ने बुराइयों से अनैतिक और भ्रष्टाचारपूर्ण व्यवहार न करने की प्रतिज्ञा की। अन्य कई प्रकार की दूषित वृत्तियाँ छोड़ने का भी लोगों ने वचन लिया।

तीसरा प्रकरण

श्रीलंका निवासी बौद्धभिक्षु के साथ

जैन धर्म और बौद्ध धर्म

२६ नवम्बर १६५६ को बौद्ध गोष्ठी की समाप्ति के बाद आचार्य श्री यग मेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन हाल से १६ नम्बर बाराखभा रोड (नई दिल्ली) श्री रामकिशनदास द्वारकादास रंगवाले के मकान पर पधारे।

दोपहर मे लंका निवासी बौद्ध भिक्षु 'नारद थेरो' आचार्य श्री से मिलने आये। शिष्टाचारमूलक वार्तालाप के पश्चात् उन्होंने आचार्य श्री से पूछा—

जैन धर्म और बौद्ध धर्म में क्या अन्तर है ?

आचार्य-श्री—बौद्ध तो प्रत्येक चीज को क्षणिक मानते हैं, जैन उसे स्थिर भी मानते हैं। बौद्ध कहते हैं—

"यत् सत् तत् क्षणिकम्, यथा जलधर सन्तश्च भावा इमे।" पर जैन कहते हैं कि पदार्थ क्षणिक हैं पर वे परिणामी नित्य भी हैं। पानी बिल्कुल ही नष्ट नहीं हो जाता। उसके पर्याय का नाश होता है पर उसका द्रव्यत्व कभी नष्ट नहीं होता। वैसे ही प्रत्येक वस्तु पदार्थ का पर्याय बदलता है पर मूल द्रव्य स्थायी रहता है।

नारद थेरो—क्या पानी पदार्थ है ?

आचार्य-श्री—नहीं, पानी मूलपदार्थ नहीं है। मूल पदार्थ दो ही हैं—जीव और अजीव। ये सदा शाश्वत रहते हैं। उनमें कभी मूलतः परिवर्तन नहीं होता। जीव का परिवर्तन भी होता है, जैसे मनुष्य, पशु,

बसी आदि। पर वास्तव में यह जीव का परिवर्तन नहीं है पर्यायों का परिवर्तन है। इसी प्रकार अजीव में भी पर्यायों का परिवर्तन होता है। बौद्ध लोग परमाणु को नित्य नहीं मानते। उनकी दृष्टि में हर चीज क्षणिक है पर हम परमाणु को नित्य मानते हैं।

नारदवैरो—जैन ईश्वर को मानते हैं या नहीं ?

आचार्य-श्री—हाँ मानते हैं पर वे उसे सृष्टि का कर्ता-हर्ता नहीं मानते। आत्मा ही परमात्मा ईश्वर है। जब तक वह कर्म बन्ध से लिप्त है तब तक आत्मा है और कर्मों से छूटते ही ईश्वर बन जाता है।

नारदवैरो—आत्मा क्या है ?

आचार्य-श्री—आत्मा एक स्वतन्त्र ज्योतिर्मय ज्ञानदर्शनात्मकतत्त्व है।

नारद वैरो—क्या शरीर और मन से भिन्न स्वतन्त्र तत्त्व आत्मा है ?

आचार्य-श्री—हाँ मन भी द्रव्य मन ही है और आत्मा इन्द्रियों से भिन्न चेतना तत्त्व है। शरीर तो उस पर आवरण है, जैसे दीपक पर कोई ढक्कन।

नारद वैरो—वह आवरण क्या है ?

आचार्य-श्री—सूक्ष्म शरीर।

नारदवैरो—सूक्ष्म शरीर क्या है ?

आचार्य-श्री—कर्म-जाल।

नारद वैरो—कर्म क्या है ?

आचार्य-श्री—परमाणु स्कन्ध, जो आत्मा की प्रवृत्ति से आकर उससे चिपक जाते हैं, उन्हें कर्म कहते हैं।

नारद वैरो—क्या कर्म क्रिया है ?

आचार्य-श्री—नहीं, वे क्रिया नहीं हैं। वे तो क्रिया के द्वारा आत्मा के चिपकने वाले परमाणु स्कन्ध हैं।

नारद वैरो—वे दोनों बुरे होते हैं या भले ?

आचार्य-श्री—दोनों ही प्रकार के होते हैं। यद्यपि भले कर्म भी अच्छा लगता है पर वे नैश्चयिक दृष्टि से सुखदायी नहीं होते।

दो जापानी विद्वानों के साथ

श्री नारद थेरो के जाते ही दो जापानी विद्वान् पता लगाते-लगाते आ पहुँचे। उन्हें प्रधानमन्त्री नेहरू ने भारत आने का निमत्रण दिया था और इसीलिये वे बौद्ध गोष्ठी मे सम्मिलित होने के लिए आये थे। एक वार वे पहले भी भारत आचुके थे। जव उन्हें आचार्य-श्री के सम्वन्ध मे यह वताया गया कि आप तेरापथ के आचार्य हैं तो वे वडे खुश हुये और बोले—हम आपके साधुओ से पहले भी मिले थे। उन जापानी विद्वानों के नाम थे—हाजीमे नाकामुरा और सोसन मियो मोटो। वे सस्कृत के भी विद्वान् थे।

आचार्य श्री ने उन्हें अपना परिचय देते हुये वताया कि हम किसी भी सवारी का प्रयोग नहीं करते, तो उन्होने कहा—आप मोटर मे तो चढ़ते होंगे? जव आचार्य प्रवर ने वताया कि नहीं, हम मोटर मे भी नहीं बैठते। यह सुनकर जापानी विद्वान् बडे आश्चर्यान्वित हुये और वडे विस्मय के साथ इस वात को दुहराया कि अच्छा, आप मोटर मे भी नहीं बैठते। आचार्य-श्री ने कहा हाँ, इसीलिये हम अभी राजस्थान से ग्यारह दिन मे वोसों मील पैदल चलकर यहाँ आये हैं।

उन्होंने पूछा—तव आप इग्लैण्ड कैसे जा सकते हैं?

आचार्य-श्री ने कहा—हम वायुयान आदि का भी उपयोग नहीं करते, हम तो सडक के रास्ते से ही चलते हैं। यही कारण है कि विदेशों में जैन धर्म का प्रचार नहीं हो सका।

प्रश्न—क्या कृषि में हिंसा है और क्या आप उसका निषेध भी करते हैं?

उत्तर—हाँ, कृषि मे हिंसा है पर हम उसका निषेध या विधान

नहीं करते। बहुत सारे जैन भी कृषि करते हैं पर उसमें हिंसा ही समझते हैं। भगवान् महावीर के प्रमुख श्रावकों में कई श्रावक कृषिकार हुये हैं।

फिर आचार्य-श्री ने तेरा पथ का परिचय दिया और दयादान सम्बन्धी मान्यताओं को तीन दृष्टान्तों द्वारा विशद रूप में समझाया। दया दान की व्याख्या उन्हें बहुत ही वास्तविक जंची। साथ साध्वियों के हाथ की बनी चीजें दिखाई गई तो वे बड़े प्रसन्न हुये और फिर कभी मिलने का वायदा कर चले गये।

अगस्त ( )

राष्ट्रकवि के साथ

साहित्य साधना पर वार्ता

१ सितम्बर १९५६ को वसन्त क्लब में पधारने पर राष्ट्र कवि श्री मैथिली शरण गुप्त ने आचार्य-श्री से अपने घर पधारने के लिये निवेदन किया अतः आचार्य प्रवर क्लब के कार्यक्रम के उपरान्त वहां पधारे और २१ ॥ मिनट तक बड़ा सरस वार्तालाप हुआ।

श्री मैथिलीशरण जी ने कहा—मेरी बहुत दिनों से अभिलाषा थी कि आपके दर्शन करूं। आज दर्शन पाकर, मेरी कामना पूर्ण हुई। वैसे मैं आपके प्रवचनों से समय-समय पर आपके सन्तों द्वारा परिचित होता रहा हूं उनके कार्यक्रमों में यथाशक्ति सहयोग देता रहा हूं किन्तु आपसे साक्षात्कार आज ही हो पाया है।

साहित्य साधना के सम्बन्ध में चर्चा चलने पर उन्होंने कहा—मैंने भारत के सभी सन्तों के प्रति श्रद्धांजलियां अर्पित की हैं। मैंने 'साकेत'

लिखा है, यशोधरा की रचना की है। भगवान् महावीर को मैं अपनी श्रद्धांजलि भेंट करना चाहता था पर मुझे उनके विषय मे यथार्थ जानकारी प्राप्त नहीं हुई। जहाँ भी कहीं देखा श्वेताम्बर-दिगम्बर का झमेला दिखाई दिया। इसीलिये मैंने कुछ नहीं लिखा। आप इसके सही अधिकारी हैं। आप मेरा पथ प्रदर्शन कीजिये और यथार्थ जानकारी देकर मेरी सहायता कीजिये।

अपनी नव निर्मित कृति 'राजा प्रजा' का प्रूफ दिखाया और कहा, मुझे आपका अभी का प्रवचन बहुत मनोहर और वास्तविक लगा। मैं 'राजा-प्रजा' मे इसके भाव के कुछ पद्य अवश्य दूंगा। मुझे यह कथन बहुत ही यथार्थ लगा कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना अवलोकन शुरू कर दे तो दूसरो की आलोचना और दड विधान की गुंजाइश ही न रह जाय।

आचार्य प्रवर ने कहा—हम व्यक्ति सुधार पर जोर देते हैं, क्योंकि व्यक्तियो के समूह के सिवाय राष्ट्र कुछ है नहीं। हमारे यहाँ आत्मसाधना और जनोपकारी कार्यो के साथ उसकी पूरक अन्य साधनायें भी चलती हैं। साहित्य साधना मे भी सन्तों की प्रगति है। कई सत आशु-कवि हैं। किसी भी विषय पर तत्काल सस्कृत में पद्यो की रचना कर सकते हैं। ससदसदस्य श्री राधाकुमुद मुखर्जी ने आशु कविता के लिये "तृष्णा-दमन' विषय दिया जिस पर मुनि श्री नथमल जी ने कविता की। राष्ट्र-कवि ने आचार्य-श्री को अपनी कृति "साकेत" भेंट की।

सम्पर्क (८)

श्रीमती सावित्री देवी निगम के साथ

मानवता क नियम

तत्पश्चात् श्रीमती सावित्री देवी निगम ने भी संतदर्शन से (१ सितम्बर १९५६ को) आचार्य श्री से अपने यहाँ पधारने का निवेदन किया था। आचार्य-श्री राष्ट्रकवि के स्थान से उनके यहाँ पधारे। कुछ देर वहाँ ठहरे। आचार्य श्री के विराजने की व्यवस्था छत पर थी। सारे भाई-बहिन वहाँ ही बैठे। कई विषयों पर वार्तालाप हुआ।

आचार्य श्री—क्या आपने अणुव्रतों के नियम देखे हैं?

श्रीमती निगम—हाँ महाराज! उनसे परिचित हूँ। वे तो मानवता के नियम हैं। मुझे उनमें निष्ठा है। जन-हित करने वाले ऐसे रचनात्मक सुधार कार्यों में मेरी रुचि रहती है। मैं भारत सेवक समाज में भी कार्य करती हूँ तथा ग्रामों में भी कुछ केन्द्र खोल रखे हैं। पर मैं इन सबसे प्रथम स्थान अणुव्रत आन्दोलन को देती हूँ।

आचार्य श्री—हाँ आपको इसे प्रथम स्थान देना ही चाहिये क्योंकि यह सुधार का आन्दोलन अपने ढंग का एक है। प्रत्येक कार्य में यह आन्दोलन साधन को महत्त्व देता है। इसके वार्षिक कार्यक्रम बड़े अच्छे ढंग से चले हैं और चल रहे हैं। हजारों छात्रों ने इससे नैतिक प्रेरणा पाई है। सैकड़ों व्यापारियों ने कम तोल-माप व मिलावट न करने की प्रतिज्ञा की है। अनेकों मजदूरों ने नशा न करने का नियम लिया है।

सावित्री देवी—हाँ आपके कार्यक्रमों ने जनता के विचारों को मोड़ा है। आज नेता व साधारण लोग भी नैतिकता की चर्चा करते हैं। इसमें अणुव्रत आन्दोलन ने काफी मदद की है। यह आन्दोलन की

सफलता है। इसमे सन्देह क्या है कि यह भावना फैलेगी और लोग इसे स्वीकार करेंगे। ये व्रत (नियम) जीवन के प्रत्येक पहलू को छूते हैं। अभी यहाँ मद्य निषेध सप्ताह चला था। उसमें आन्दोलन ने बहुत मदद दी है। मैं इसकी सफलता चाहती हूँ

आचार्य-श्री —आपने अणुव्रती बनने के बारे मे क्या सोचा है ?

सावित्री देवी—मुझे तो इसमे कोई अडचन नहीं है। मैं अपने आपको इसके लिये प्रस्तुत करती हूँ। मेरा नाम कृपया अणुव्रतियों की सूची मे लिखलें।

उनके आग्रह पर आचार्य-श्री ने उनके यहाँ कुछ भिक्षा भी ग्रहण की।

मध्यान्ह में आचार्य-श्री वाई० एम० सी० ए० पधार गये, जहाँ साहू शान्तिप्रसाद जी जैन, श्री अगरचन्द जी नाहटा आदि कई व्यक्ति सपर्क में आये (जैन आगमकोश और अनुवाद की बात सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुये।)

यूनेस्को के प्रेस प्रतिनिधि श्री एलविरा ने आचार्य प्रवर के दर्शन किये।

श्री एलविरा के साथ

व्रतों की निषेधात्मक मर्यादा

यूनेस्को के प्रेस प्रतिनिधि श्री एलविरा के साथ १ सितम्बर १९५९ को आचार्य-श्री की महत्वपूर्ण चर्चा हुई।

आचार्य-श्री—क्या आपने अणुव्रत आन्दोलन के नियम देखे हैं?

एलविरा—हाँ मैंने उनको देखा है। वे मुझे अधिकतर निषेधात्मक प्रतीत हुए, ऐसा क्यों है?

आचार्य-श्री—संयम के लिये निषेध आवश्यक है। 'यह करो यह करो"—इसकी कोई सीमा नहीं है।

एलविरा—बाइबिल में भी अधिकांश नियम नकारात्मक हैं पर उसमें यह भी कहा गया है कि अपने पड़ोसी से प्रेम करो।

आचार्य-श्री—ऐसा उल्लेख तो इसमें भी है कि प्राणी मात्र से मैत्री रखो पर यह नियम नहीं हो सकता, यह तो उपदेश हो सकता है।

एलविरा—भारत के लोग अहिंसा में विश्वास व श्रद्धा रखते हैं और अपने जीवन को उस आदर्श तक ले जाना चाहते हैं, क्योंकि आप जैसे प्रेरक यहाँ विद्यमान हैं। क्या इसका प्रचार पाश्चात्य देशों में भी हो सकता है?

आचार्य-श्री—क्यों नहीं, पर इसके लिये आप लोगों का नैतिक सहयोग अपेक्षित है।

एलविरा—मैं तो आपकी सेवा में प्रस्तुत हूँ। मैं अपना सौभाग्य समझूँगी अगर मैं इसमें कुछ कार्य कर सकूँ। तत्पश्चात् आचार्य प्रवर ने उनको तेरापंथ और जैन आचार विचार परंपरा के सम्बन्ध में जानकारी दी।

लाई लामा के साथ

श्रमण संस्कृति की दो धाराओं का मिलन

७ दिसम्बर १९५६ को राष्ट्रपति भवन मे अणुव्रतों के सम्बन्ध मे सम्मेलन होने के बाद जब राष्ट्रपति जी और आचार्य-श्री दोनों उठकर चलने लगे तब आचार्य-श्री ने पूछा—दलाई लामा यहाँ आने वाले थे, क्या वे आ गये हैं ?

राष्ट्रपति जी ने पूछा—क्या आपको उनसे मिलना है ? मैं जाता हूँ, ऊपर से आपको खबर करवा दूंगा। ऊपर जाकर उन्होंने अपने सेक्रेटरी से कहलवाया कि आचार्य-श्री ऊपर पधारें। ऊपर जाते ही जिस कमरे मे दलाई लामा और पचेन लामा खडे थे, प० नेहरू भी उस समय उनसे बातें कर रहे थे। आचार्य-श्री को देखकर पडित जी लामा से बातें करते करते झट से उनको भी आचार्य-श्री के पास ले आये और उनके दुभाषिये के द्वारा आचार्य-श्री का परिचय उनको दिया। उसने तिब्बती भाषा में उसका अनुवाद कर लामाओं को बताया।

नजदीक आने पर आचार्य-श्री ने कहा—राष्ट्रपति भवन मे आज श्रमण संस्कृति की दो धाराएं-जैन और बौद्ध का मिलन हो रहा है, इसकी हमें बडी खुशी है।

पचन लामा ने कहा—हम शायद आपसे कहीं मिले हैं ?

आचार्य-श्री ने कहा—नहीं, मिले तो नहीं हैं, शायद आपने कहीं हमारा फोटो देखा होगा।

उन्होंने कहा—हाँ, हाँ।

मुनि श्री-नगराज जी ने कहा—कुछ साहित्य और आचार्य-श्री का परिचय आपको भेजा गया था, वह आपने देखा होगा।

फिर आचार्य श्री ने मेहता जी से कहा—

पंडित जी आप इन्हें बतलाइये—हम जैन साधु पैदल ही चलते हैं और अभी-अभी दो सौ मील की पैदल यात्रा ग्यारह दिनों में पूरी करके आ रहे हैं।

पंडित जी ने कहा—मैंने इन्हें अभी-अभी यही बताया था। इस प्रकार थोड़ी देर का यह समय बड़ा ही रोचक और प्रेरणा-दायक रहा।

[illegible] ( )

बौद्ध भिक्षुओं के साथ

विश्व शान्ति साधन की खोज

श्री लंका से बुद्ध जयन्ती पर आये हुए बौद्ध भिक्षुओं ने १ दिसम्बर १९५६ को प्रातः बाराखम्भा रोड २९ नम्बर पर आचार्य-श्री से भेंट की। आसन ग्रहण करने के बाद प्रतिनिधि मंडल के प्रधान महा-स्थविर 'धर्मेश्वर' ने कहा—आप और हम लोग दो नहीं हैं। श्रमण संस्कृति की दृष्टि से एक ही हैं।

आचार्य-श्री—हाँ दोनों श्रमण परम्परा की दो धाराएँ हैं।

धर्मेश्वर—सिलोन में १ हजार भिक्षु हैं। उनमें से प्रति हजार पर एक प्रतिनिधि के रूप में १ भिक्षु आये हैं। बहुत सुन्दर हुआ कि दोनों धाराओं का संगम हुआ। हमें मिल जुल कर एक अच्छी योजना तैयार करनी चाहिये। यह एक अवसर है। वर्तमान दुनिया बुरी तरह से क्षुब्ध है वह शांति की खोज में है। हम जो तथ्य सामने रखेंगे उसका सारी दुनिया में प्रचार होगा। हम इस योजना को लेकर अमेरिका जायेंगे

चीन, तिब्बत आदि मे घूमेंगे। इस प्रकार यह विश्व के लिये शांति का साधन बन सकेगी।

आचार्य-श्री—हाँ, हमारा तो इस प्रकार की योजनाओं के लिये चिन्तन चलता ही रहता है। हमे समन्वय मे ही सफलता दीखती है। अणुव्रत आदोलन के नियमो के प्रारभ में तद्विषयक जैन-बौद्ध और वैदिक तीनो धर्मो के समन्वयात्मक पद्य हमने दिये हैं। इसके बाद कुछ और प्रश्नोत्तर हुए।

आचार्य-श्री—हाँ, आप मे और तिब्बत के दलाई लामा मे क्या भेद है?

धर्मेश्वर—हम भी भिक्षु हैं और वे भी, किन्तु हम उष्ण देश के हैं और वे शीत देश के। अत स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अपना अपना आचार व्यवहार चलता है।

आचार्य-श्री—दलाई लामा बुद्ध का अवतार माने जाते हैं, यह कहाँ तक सत्य है?

धर्मेश्वर—यह कुछ नहीं, यह तो केवल तिब्बती जनता की श्रद्धा है इसलिये वहां के वे परमेश्वर हैं। हो सकता है सिलोन में कोई बौद्ध इन्हें जानता भी न हो।

आचाय-श्री—आप महायान के अनुयायी हैं या हीनयान के?

धर्मेश्वर—सिलोन मे सियम निकाय और अमर निकाय है। महायान या हीनयान अलग कुछ नहीं। हमारा साहित्य पाली मे है अत अल्प है। इधर भारतीय बौद्ध विद्वानों ने जब सस्कृत मे प्रचुर साहित्य लिखा, तब उन्होंने मूल पाली साहित्य को ही प्रमाणित मानने वालों को हीनयान और अपने आपको महायान कहना प्रारभ किया, किन्तु इसे हम स्वीकार नहीं करते।

आगतुक भिक्षुओं में से भिक्षु "ज्ञान श्री" आगे आये और कहने लगे—हमारे यहाँ कुछ नियम पालने वाले और गेरुएं रग के वस्त्रधारी को भिक्षु कहते हैं। हमने आप जैसे साधु कभी देखे नहीं, आज ही

देखने का अवसर मिला है। हमें सब कुछ नया-नया लगता है। आपका बाह्य आकार प्रकार भी और आचरण भी। अतः हम छोटी-बड़ी सभी बातें पूछना चाहते हैं। क्या आपकी आज्ञा है? आप क्रोध तो नहीं करेंगे?

आचार्य-श्री—क्रोध कैसा? हमें तो इससे प्रसन्नता अनुभव होगी। आनन्द से पूछिये।

ज्ञान श्री—अच्छा फरमाइये यह आपके मुंह पर पट्टी क्यों लगी हुई है?

आचार्य-श्री—यह अहिंसा के लिये है। जब हम बोलते हैं तब वेग व गर्म हवा निकलती है उससे हिंसा होती है।

ज्ञान श्री—तब श्वासोच्छ्वास में भी सूक्ष्म जन्तु मरते होंगे?

आचार्य-श्री—नहीं, ऐसा नहीं है। जैनागमों के अनुसार बोलने से जो हवा मुंह से निकलती है उसकी बाहर की हवा से टक्कर होती है तब वायु के जीव मरते हैं। श्वासोच्छ्वास सहज हवा है, उससे वायु के जीव नहीं मरते दूसरे सूक्ष्म जीवों की तो बात ही नहीं?

ज्ञान श्री—आप भिक्षु हैं या साधु?

आचार्य-श्री—हमारी मूल परम्परा में हमें निर्ग्रन्थ या श्रमण कहा जाता है। वैसे श्रमण निर्ग्रन्थ भिक्षु, साधु पर्यायवाची नाम हैं।

ज्ञान-श्री—श्रमण का क्या मतलब है?

आचार्य-श्री—आध्यात्मिक श्रम करने वाला अर्थात् तपस्या करने वाला श्रमण कहलाता है।

ज्ञान-श्री—तपस्या किसे कहते हैं?

आचार्य-श्री—तपस्या उस अनुष्ठान को कहते हैं, जिससे आत्मा के बन्धन टूटते हैं। यह दो प्रकार की है—बाह्य और आभ्यन्तर। उपवास आदि बाह्य तपस्या है और स्वाध्याय आदि आभ्यन्तर।

ज्ञान श्री—बन्धन किसे कहते हैं?

आचार्य-श्री—हमारी शुभाशुभ प्रवृत्ति से ही शुभ अशुभ परमाणु

पिंड आकृष्ट होते हैं और प्रवृत्ति के अनुरूप प्रवर्तित हो आत्मा के साथ चिपक जाते हैं, आत्म चेतना को आवृत्त कर लेते हैं, उस आवरण को बन्धन कहते हैं।

ज्ञान श्री—बन्धन को दूर क्यों किया जाता है? उससे क्या क्षति है?

आचार्य-श्री—उससे हमारा आत्म विकास रुकता है।

ज्ञान श्री—इस वाक्य मे दो शब्द आये हैं—'हमारा' और 'आत्मा', तो क्या ये दो हैं?

आचार्य-श्री—नहीं, उपचार से ऐसा कह दिया गया, वास्तव में मैं और आत्मा एक है।

ज्ञान श्री—'मैं' यह शरीर का वाचक है या आत्मा का?

आचार्य-श्री—यह आत्मवाचक है

ज्ञान श्री—तो यह आपका शरीर किससे प्रचलित है?

आचार्य-श्री—आत्मा के द्वारा।

ज्ञान श्री—तो आत्मा एक पृथक् चीज है, शरीर एक पृथक् चीज है?

आचार्य-श्री—हां।

ज्ञान श्री—शरीर का सचालक जैसे आत्मा है, वैसे कोई आत्मा का भी चालक है?

आचार्य-श्री—नहीं, आत्मा अनादि है, वह स्व चलित है, इसका कोई करने वाला नहीं।

ज्ञान श्री—आत्मा अनादि है, यह आप किस बल पर जानते हैं?

आचार्य-श्री—दो आधारो पर—(१) आगम (गणिपिटक) और (२) अनुभव के आधार पर।

ज्ञान श्री—आगम किसे कहते हैं?

आचार्य-श्री—आप के जैसे त्रिपिटक हैं वैसे ही हमारे यहां गणिपिटक हैं, उन्हें आगम कहते हैं अर्थात् महावीर वाणी आगम है।

इस प्रकार लगभग घंटाभर पारस्परिक तात्त्विक विचार विमर्श हुआ। अंत में उन्होंने जैन दर्शन को विशेषतः जानने की जिज्ञासा व्यक्त की।

प्रवचन ( )

'मारल रिआर्मेमेन्ट' के प्रतिनिधियों के साथ

हृदय परिवर्तन का माध्यम

५ सितंबर १९५६ की रात्रि में मोरल रिआर्मामेंट (नैतिक पुनरुत्थान के विदेशी आंदोलन) के तीन सदस्य मि डग्लस ड कार्टर मि जी एच. स्टीवेन्स मि के एच हूज़न तथा उनमें दिलचस्पी रखने वाले अणुव्रत सदस्य श्री रतनलाल शास्त्री आचार्य-श्री के दर्शन करने आये।

मोरल रिआर्मामेंट के सदस्यों में से एक ने बताया कि उनका आंदोलन हृदय परिवर्तन के माध्यम से काम करता है। अपनी कहानी सुनाते हुए उन्होंने कहा—कि मैं शांति का उपदेश करता था पर अपने घर में स्वयं अशांति का राज्य था। एक दिन मेरे मन में विचार उठा कि मैं जब इतना नाराज रहता हूँ तथा पिताजी की अशांति का कारण बना हुआ हूँ तब मेरे द्वारा दिये गये शांति के उपदेश का क्या असर हो सकता है? तभी मैं अपनी सारी शक्ति बटोर कर पिताजी से क्षमा माँगने के लिये तैयार हुआ। क्षमा माँगने पर पिताजी ने कहा इस क्षमा माँगने का

अर्थ तो तब निकल सकेगा जब तुम इस नम्र भावना को स्थायित्व दे सको। मैंने उनके शब्द शिरोधार्य किये। तब से हमारा व्यवहार मधुर हो गया और शांति रहने लगी।

शास्त्री जी ने कहा—एक बार मैं चुनाव में जीता था तो लोगों ने बडी बडी सभायें करके मेरा अभिनन्दन किया, फूल मालाओं से लादा, चरणों मे पडे। मेरे मन मे विचार आया, लोग इतना करते हैं, क्या मैं इसके योग्य हूं? तभी मुझे लगा मैंने चुनाव मे न जाने क्या-क्या किया है। अब भी लोगों से कुछ और कहता हूं और कर गुजरता हूं कुछ और ही। इस प्रकार विचार करते-करते मैं आत्मोन्मुख बना। उन्हीं दिनों मे मॉरलरिआर्मामेंट के इन कार्यकर्त्ताओ से मेरी भेंट हुई और मैं इधर झुका। अब इसका प्रचारक बन गया हूं।

आचार्य-श्री—हम भी यही कहते हैं कि किसी भी बात का प्रचार करना तभी सार्थक हो सकता है जब वह जीवन मे पूर्णतया उतर जाय। आपको जिज्ञासा होगी कि हम अणुव्रतों का प्रचार करते हैं, तो क्या हम अणुव्रती हैं? हमारे यहां दो धाराएं चलती हैं, महाव्रत और अणुव्रत। हम लोग महाव्रती हैं, पैदल चलते हैं, किसी भी सवारी का उपयोग नहीं करते। हमारे पास एक भी पैसा नहीं, जमीन, मठ, मदिर नहीं। यहां तक कि हमारे पास भोजन का भी कोई प्रबन्ध नहीं। हमारी भोजन-व्यवस्था भिक्षावृत्ति से चलती है, हम किसी एक घर का खाना नहीं लेते, बिना किसी भेद भाव के अनेक घरों मे जाते हैं और थोडा-थोडा लेकर अपनी आवश्यकता को पूर्ण कर लेते हैं। यह चर्या महाव्रतियों की है।

अणुव्रती वे हैं जो इनको आंशिक रूप में पालते हैं। हम अणुव्रतों का सब वर्गों मे, सब जातियों में प्रचार करते हैं। हम लोग हृदय परिवर्तन पर ही जोर देते हैं। आप लोग (मो० रि० संस्थापक) 'बुकमैन' से कहिये कि वे जो हृदय परिवर्तन के माध्यम से काम करते हैं, उसे स्थायित्व देने के लिये उसके लिये कुछ नियम भी आवश्यक हैं। अणुव्रत

आन्दोलन और मोरल रिआर्मामेंट दोनों मिलकर कुछ करें तो नैतिक जागृति का अच्छा काम हो सकता है।

एक कार्यकर्ता—यह इसकी मुख्यता समझनी चाहिये।

आचार्य-श्री—आप के इस प्रचार के विषय में कुछ आक्षेप भी सुनने को मिले हैं।

एक कार्यकर्ता—हो सकता है कि लोग इसकी नैतिक चुनौती सहन न कर सके हों।

आचार्य-श्री—हाँ, ऐसा भी हो सकता है पर मैंने साधारण मान मित्रों से नहीं अच्छे लोगों से सुना है। कुछ लोगों का कहना है कि इसका प्रचार जो नाटकों और नृत्यों द्वारा किया जाता है उसका प्रभाव जनता पर अच्छा नहीं पड़ता। कुछ व्यक्ति इसे राजनैतिक चाल समझते हैं तो कुछ पैसे कमाने का तरीका मात्र मानते हैं। इसमें उनकी कोई श्रद्धा नहीं, उलटा इसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

एक कार्यकर्ता—आचार्य-श्री सब चीजों का सब तरह ध्यान रखते हैं। आपने इसका कितनी गहराई से अध्ययन किया है।

आचार्य-श्री—आप की जो आलोचना की जाती है उसको यद्यपि मैं पूर्णतया ठीक नहीं समझता पर इस विषय में आप को काफी सतर्क रहना चाहिये। क्या आन्दोलन के सदस्यों के लिये आवश्यक है कि वे मांस न खायें नशा न करें ?

कार्यकर्ता—ऐसा कोई नियम नहीं है। पर हम इस निषेध की चेतावनी जरूर दे देते हैं।

आचार्य-श्री—क्या सदस्यों का रजिस्टर है ?

कार्यकर्ता—नहीं।

आचार्य-श्री—भारत में इसका प्रचार कहाँ कहाँ हुआ है।

कार्यकर्ता—बम्बई, पूना, कलकत्ता आदि बड़े-बड़े शहरों में तथा कहीं कहीं गाँवों में भी इसका कार्य चालू है।

'इंडियन एक्सप्रेस' के समाचार सम्पादक के साथ

धन-धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं

ता० ६ दिसबर १९५६ को १६ वाराखभा रोड पर "इण्डियन एक्सप्रेस" के समाचार सम्पादक श्री चमनलाल सूरी आचार्य-श्री के दर्शनार्थ आये। आते ही उन्होंने पूछा—आचार्य जी आप यहां कहां से आये हैं और क्यो आये हैं ?

आचार्य प्रवर ने अपना उद्देश्य समझाते हुये आदोलन की बात बताई और कहा, अणुव्रत आदोलन को आज राष्ट्र की पूर्ण मान्यता प्राप्त है और जन-जन मे इसकी चर्चा है।

सूरी—दिल्ली नगर मे इसकी कैसी प्रगति है ?

आ०—यहां इसका अच्छा काय चल रहा है, लोगो ने इसकी भावना समझी है और यथाशक्ति इसको जीवन मे उतारने का प्रयत्न किया है। थोड़े ही दिन पहले यहां 'विद्यार्थी अणुव्रत पक्ष' चला था, जिसमे अनेक छात्रों ने नशा न करने की तथा नैतिक जीवन विताने की प्रतिज्ञा ली थी। उससे पहले व्यापारियों में भी इस प्रकार का कार्यक्रम चल चुका है। उसमे मिलावट न करने की, कम तोल माप न करने की प्रतिज्ञाएं रखी गई थीं और उन्होंने उनका स्वागत किया था। इस प्रकार हम जन साधारण में विचार क्राति पैदा करने का प्रयास कर रहे हैं। हमारे प्रचार का माध्यम अणुव्रत-आंदोलन है। किन्तु इसके प्रसार मे जितना सहयोग अपेक्षित है, उतना नहीं मिल रहा है।

सूरी—कई वार कई समाचार पत्रों मे आंदोलन की चर्चा चलने मे

किन्तु मैं भी यह मानता हूं कि हम पत्रकार इसमें विशेष हाथ नहीं बटा रहे हैं।

आचार्य-श्री—यह पत्रकारों की गलती है। मैं आप से यह चाहूंगा कि आप इस आन्दोलन की भावना को सही-सही समझने का प्रयास करें। फिर आप को जैसा लगे उसे हमें बतायें। केवल इससे दूर रह कर आप एक बहुत बड़े कर्तव्य से वंचित रह जाते हैं। मैं आप से यह नहीं कहता कि आप जबर्दस्ती इसके प्रचार में समय लगायें। किन्तु इतना अवश्य कहूंगा कि यदि आप नैतिकता का प्रचार अपने जीवन का एक कर्तव्य मानते हैं तो फिर उससे क्यों पीछे रहते हैं?

प्रसंग (१)

श्री मोरारजी देसाई के साथ

अनशन आत्मशुद्धि

ता० ९ सितम्बर १९५६ को प्रातःकाल नैतिकी समिति से निवृत्त हो अपने आप सभी साधुओं सहित आचार्य प्रवर केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री श्री मोरारजी देसाई की कोठी पर पधारे। पीछे की तरफ के बरामदे में आचार्य-श्री एक छोटे से पट्ट पर आसीन हुए। मोरारजी भाई आए और वन्दना कर नीचे बिछे आसन पर बैठ गये। प्रायः एक घण्टे तक अति मधुर वार्तालाप हुआ। लगभग ४०-५ भाई बहिन साथ में थे।

शिष्टाचार की बातों के बाद आचार्य-श्री ने कहा—इस बार आपने जो अनशन किया उसमें आप पानी के अतिरिक्त क्या लेते थे?

मो०—पानी में कुछ नींबू का रस मिला दिया जाता था, वही मैं लेता था।

आ०—आपने उसमे क्या अनुभव किया ?

मो०—मुझे विशेष शान्ति का अनुभव हुआ। मानसिक द्वन्द्व नष्ट हो गये। अनशन में मेरी यह भावना वलवती वनी कि हिंसा कभी हिंसा से नहीं मरती, अहिंसा से ही उसको मिटाया जा सकता है। वही हुआ। मुझ से कुछ लोगों ने कहा, "शरीर निर्वल हो रहा है, अनशन तोड दीजिए"। पर मैंने कहा—मेरा प्रण जव पूरा होगा, तभी इस विषय मे सोचा जायगा। शारीरिक अस्वस्थता मुझे जरूर सताती थी पर उससे मेरा मनोवल शिथिल नहीं पडा, प्रत्युत वढा। भौतिक पदार्थ प्राप्ति के लिये जो अनशन करते हैं वह ठीक नहीं। आत्मशान्ति के लिए ही उसका उपयोग होना चाहिए।

आ०—हाँ, यह ठीक है। जीवन का या जीवन के अ शों का उत्सर्ग आत्म शान्ति के लिए ही होता है, वाह्य शान्ति तो स्वत सध जाती है। अभी थोडे दिन पहले सरदार शहर मे हमारे एक साधु श्री सुमतिचन्द जी ने आत्म साधना के लिए आजीवन अनशन किया था। उनकी सारी घटना आचार्य-श्री ने उन्हें सजीव शब्दो मे कह सुनाई। श्री मोरारजी भाई रोमांचित हो उठे। वीच वीच मे कई जिज्ञासायें भी कीं—वार्तालाप का अच्छा असर रहा।

अणुव्रत आन्दोलन की वात चलने पर मोरारजी भाई ने कहा—अच्छा है आप प्रेरणा दे रहे हैं। आपका यही कर्तव्य है और आप उसे पूरी तरह निभा रहे हैं। आपके इन प्रयत्नो से लोग लाभ उठायें या नहीं यह उनकी इच्छा है। व्यक्ति स्वय ही अपना सुधार कर सकता है। दूसरे केवल प्रेरणा दे सकते हैं, सुधार नहीं सकते। आप अपना कार्य करते रहें।

आ०—अब आप पर और अधिक वजन आ गया है।

मो०—हा, मैं तो इस झमेले से निकलना चाहता था। लेकिन

किन्तु मैं भी यह मानता हूँ कि हम पत्रकार इसमें विशेष हाथ नहीं बटा रहे हैं।

आचार्य-श्री—यह पत्रकारों की गलती है। मैं आप से यह कहूँगा कि आप इस आन्दोलन की भावना को सही-सही समझने का प्रयास करें। फिर आप को जैसा लगे उसे हमें बतायें। केवल इससे दूर रह कर आप एक बहुत बड़े कर्तव्य से वंचित रह जाते हैं। मैं आप से यह नहीं कहता कि आप जबर्दस्ती इसके प्रचार में समय लगायें। किन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि यदि आप नैतिकता का प्रचार अपने जीवन का एक कर्तव्य मानते हैं तो फिर उससे क्यों पीछे रहते हैं ?

सम्पर्क (१)

श्री मोरारजी देसाई के साथ

अनशन आत्मशुद्धि

ता. ६ सितम्बर १९५६ को प्रातःकाल पदयात्री समिति से निवृत्त हो अपने प्रायः सभी साधुओं सहित आचार्य प्रवर केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री श्री मोरार जी देसाई की कोठी पर पधारे। पीछे की तरफ के बरामदे में आचार्य-श्री एक छोटे से पट्ट पर आसीन हुए। मोरार जी भाई आए और वन्दना कर नीचे बिछे आसन पर बैठ गये। प्रायः एक घण्टे तक अति मधुर वार्तालाप हुआ। लगभग ४०-५ भाई बहिन साथ में थे।

शिष्टाचार की बातों के बाद आचार्य-श्री ने कहा—इस बार आपने जो उपवास किया, उसमें आप पानी के अतिरिक्त क्या लेते थे ?

मो०—पानी मे कुछ नींबू का रस मिला दिया जाता था, वही मैं लेता था।

आ०—आपने उसमे क्या अनुभव किया ?

मो०—मुझे विशेष शान्ति का अनुभव हुआ। मानसिक द्वन्द्व नष्ट हो गये। अनशन मे मेरी यह भावना बलवती बनी कि हिंसा कभी हिंसा से नहीं मरती, अहिंसा से ही उसको मिटाया जा सकता है। वही हुआ। मुझ से कुछ लोगों ने कहा, "शरीर निर्बल हो रहा है, अनशन तोड दीजिए"। पर मैंने कहा—मेरा प्रण जब पूरा होगा, तभी इस विषय मे सोचा जायगा। शारीरिक अस्वस्थता मुझे जरूर सताती थी पर उससे मेरा मनोबल शिथिल नहीं पड़ा, प्रत्युत बढ़ा। भौतिक पदार्थ प्राप्ति के लिये जो अनशन करते हैं वह ठीक नहीं। आत्मशान्ति के लिए ही उसका उपयोग होना चाहिए।

आ०—हाँ, यह ठीक है। जीवन का या जीवन के अ शो का उत्सर्ग आत्म शान्ति के लिए ही होता है, बाह्य शान्ति तो स्वत सध जाती है। अभी थोडे दिन पहले सरदार शहर मे हमारे एक साधु श्री सुमतिचन्द जी ने आत्म साधना के लिए आजीवन अनशन किया था। उनकी सारी घटना आचार्य-श्री ने उन्हें सजीव शब्दो मे कह सुनाई। श्री मोरारजी भाई रोमांचित हो उठे। बीच बीच मे कई जिज्ञासायें भी कीं—वार्त्तालाप का अच्छा असर रहा।

अणुव्रत आन्दोलन की बात चलने पर मोरारजी भाई ने कहा—अच्छा है आप प्रेरणा दे रहे हैं। आपका यही कर्तव्य है और आप उसे पूरी तरह निभा रहे हैं। आपके इन प्रयत्नों से लोग लाभ उठायें या नहीं यह उनकी इच्छा है। व्यक्ति स्वय ही अपना सुधार कर सकता है। दूसरे केवल प्रेरणा दे सकते हैं, सुधार नहीं सकते। आप अपना कार्य करते रहें।

आ०—अब आप पर और अधिक वजन आ गया है।

मो०—हा, मैं तो इस झमेले से निकलना [illegible] लेकि

विभिन्नता और ज्यादा बन जाता हूँ। जितनी ही मसलह की बात
करता हूँ उतना ही समूह के बातों से हमेशा किया जाता हूँ।

बीच में सतो ने कहा—"कांग्रेस में योगाभ्यास भी प्राप्त ही है
मो०—हाँ ऐसा ही कुछ योग है। मुझे इसमें कुछ रस नहीं आता
मेरी रुचि का विषय है अध्यात्मवाद। उसमें रस आता है।

आ०—सुना है कैम्प में दीक्षा और आत्मदीक्षा विषयक कोई वि
माने जाता है।

मो०—हाँ ऐसी कुछ चर्चा तो है।

आ०—किन्तु इस प्रकार के बिल अध्यात्मवाद के प्रतिकूल पड़ेंगे
बहु धर्म के मामलों में हस्तक्षेप है। इस विषय में आप लोगों को सोचना
चाहिये। बम्बई असेम्बली में जब बालदीक्षा के विरोध में बिल आया
था तब आपने जो कुछ कहा था उसका अच्छा असर रहा। लोगों को
इस विषय में सोचने का मौका मिला था।

मो०—मैं तो इस बार भी चुकनेवाला नहीं हूँ जैसे ही बोलूँगा
डटकर बिल का विरोध करूँगा। कर हूँ सकेगा। नैतिक धार्मिक प्रयोग
भी बहुत बड़ी चीज है ऐसा मेरा विश्वास है।

समय काफी हो गया था। आचार्य-श्री को दूसरी जगह पधारना था
बातों को यहीं समाप्त किया। श्री मोरारजी भाई से वार्ता की
आचार्य-श्री ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया।

राजर्षि टंडनजी के यहाँ

आचार्य-श्री श्री मोरारजी देसाई के यहाँ से राजर्षि श्री पुरुषोत्तम
दास जी टंडन के निवास स्थान पर पधारे। टंडन जी बीमार थे
इसलिये ज्यादा बोलने में आने की इच्छा होते भी न आ सके
अपनी बीमारी के कारण उन्होंने कहा था—मैं आचार्य-श्री से मिलना
तो जरूर चाहता हूँ पर मैं तो अशक्त हूँ। वहाँ जा नहीं सकता
आचार्य-श्री यहाँ आवेंगे तो मुझे बहुत हर्ष होगा। अतः उन्हें यहाँ
आने का निवेदन कैसे करूँ।

आचार्य प्रवर उनके श्रद्धाशील मानस की भावना को जानकर उनके घर पधारे। वहां पहुंचते ही भदंत आनन्द कोसल्यायन (बौद्ध विद्वान) अन्दर से निकल ही रहे थे, आचार्य-श्री से उनकी मुलाकात हुई। कुछ थोडी सी बातचीत भी हुई। टंडन जी ने लेटे लेटे ही हाथ जोड प्रसन्नता प्रगट की।

टंडन जी बहुत ही अशक्त थे। बोलने मे कष्ट होता था। फिर भी उन्होंने कम्पित स्वर मे कहा—"आप मे बौद्धिक चिंतन है, आप समाज का मूल-ग्राह से उद्धार कर सकते हैं, आपमें यह सामर्थ्य है"।

आचार्य श्री ने उन्हें 'मंगल पाठ' सुनाया। श्रद्धापूर्वक हाथ जोडे वे उसे सुनते रहे।

९-१० मील के विहार के बाद आचार्य श्री ११½ बजे वापिस निवास स्थान पर लौट आये।

मंथन (११)

विदेशी मुमुक्षुओं के साथ

जैनागम शब्द कोष पर चर्चा

७ दिसम्बर १९५६ की रात्रि मे जर्मनी के तीन विद्वान श्री अल्फ्रेड बायर, फ्रेड वाल्टर लाइफर, वार्न हार्ड हाइमेच और अमेरिका की एक महिला आचार्य-श्री से मिले।

आचार्य प्रवर ने उनको तेरापंथ व जैन मुनियों के सबन्ध मे विस्तृत जानकारी दी। 'तेरापंथ' का अर्थ सुन वे अतीव प्रसन्न हुए।

आचार्य ने कहा—"हमारे यहां अनेक भाषाओं का अध्ययन

चलता है। "जैनागम शब्द कोष" के निर्माण की एक बहुत बड़ी प्रवृत्ति चालू है। कुछ कार्य हुआ भी है।

मिस्टर बास्टर ने कहा—हाँ हमें इसकी सूचना मिली है। जर्मन विद्वान डा० रोथ आपके यहाँ गये थे। तब उन्होंने जर्मन पुस्तकालय तथा जर्मनी वासियों के अन्य स्थानों में यह सूचना प्रसारित की थी कि—"आप लोग कभी अवश्य समय निकालकर आचार्य-श्री तुलसी से मिलें। वे एक स्वस्थ धार्मिक संस्था के नेता हैं। इसके अनुशासन में अत्यंत व्यवस्थित रूप में आत्म साधना तथा अन्य सकल साधनायें चलती हैं। वहाँ जो जैनागमों का एक शब्दकोष तैयार हो रहा है उसे देखकर आश्चर्यान्वित रह गया। इसके निर्माण में अनेक साधु लगे हैं। इस सूचना के फलस्वरूप हम आपके दर्शनार्थ आये हैं।

[illegible] (१२)

प्रधानमन्त्री श्री नेहरू के साथ

अणुव्रत आन्दोलन में नेहरू जी की आस्था

दिसम्बर १९५६ की प्रातःकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रसंग उपस्थित हुआ जब दो महान् नेताओं का एक दूसरे के साथ चिरप्रतीक्षित सम्मिलन हुआ। आचार्य-श्री ने मानव के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक निर्माण का जो दायित्व अपने कन्धों पर ओढ़ा है, उसके कारण उनका व्यक्तित्व वैसे ही एक आकर्षण का विषय बन गया है जैसे कि हमारे देश की नेहरू के व्यक्तित्व के प्रति भूतपूर्व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के कारण एक आकर्षण उत्पन्न हो गया है। एक राजनैतिक क्षेत्र के महान

हैं तो दूसरे आध्यात्मिक क्षेत्र में वैसी ही महानता सम्पादन किये हुए हैं। आज वास्तव में ही गगा-जमना की दो विशाल धाराओं का सगम हुआ।

प्रधान मंत्री श्री नेहरू की कोठी पर

८॥ बजे आचार्य-श्री पडित नेहरू की कोठी पर पधारे। पडित जी की सेक्रेटरी श्रीमती विमला ने आचार्य-श्री का स्वागत किया। २८ साधु और साध्वियां तथा सैकड़ों गृहस्थ साथ थे। कोठी के पिछले बरामदे में साधुओं ने पट्टा विछाया। नेहरू जी २० मिनट बाद आये। आचार्य प्रवर ने साधु-साध्वियों का परिचय कराया। फिर साधु साध्वियाँ एक ओर बैठ गये। पडित जी आचार्य-श्री के पट्टे के पास बिछे हुए आसन पर बैठ गये और बातचीत आरम्भ हुई।

आचार्य-श्री ने कहा—आप २० मिनट लेट हैं।

नेहरू जी—हाँ, आवश्यक तार आया था और मेरी बेटी बीमार है, इसलिये विलम्ब हो गया

आचार्य-श्री—ठीक ५ वर्ष बाद मिलन हो रहा है। इस वर्ष हमारा चातुर्मास सरदारशहर था। हमारे साधु आपसे मिले थे। आन्दोलन के बारे मे आपको जानकारी दी थी। उसकी प्रगति से अवगत कराया था। विद्यार्थियों के कार्यक्रम मे आपने भाग लेने को कहा था। और "आचार्य श्री को यहाँ बुलाइये" यह भी कहा था। मैंने इस पर यहाँ आने का निर्णय किया। इसके साथ दूसरा कारण यूनेस्को सम्मेलन भी है। इन दोनों कारणों से मैं अभी अभी यहाँ आया हूँ। १८ नवम्बर तक तो चातुर्मास था, इसलिये उससे पहले हम वहाँ से चल नहीं सकते थे। ता० २६ नवम्बर को चले, ३० को यहाँ पहुँच गये।

पडित जी ने आश्चर्य भरे शब्दों मे कहा—बहुत कठिन कार्य है। आपने शरीर के साथ ज्यादती की।

आचार्य-श्री—मैं चाहता हूँ आज हम स्पष्टरूप से विचार विमर्श करें। हमारा यह मिलन औपचारिक न होकर वास्तविक हो।

हम जानते हैं कि गांधीजी व अन्य लोगों के प्रयत्नों से भारत को आजादी मिली। पर आज देश की क्या स्थिति है, चरित्र गिरता जा रहा है। कुछेक व्यक्तियों को छोड़कर देश का चित्र खींचा जाये तो वह स्वस्थ नहीं होगा। यही स्थिति रही तो भविष्य कैसा होगा? खास चीज है कि किया क्या जाय? कोरी बातों से चरित्र उन्नत नहीं होगा। लोगों को कुछ काम दिया जाय तब वह होगा। काम से मेरा मतलब बेकारी मिटाने का नहीं है। काम से मेरा मतलब है चरित्र सम्बन्धी कोई काम दिया जाय। यही मैं चाहता हूँ। अणुव्रत आन्दोलन ऐसी ही स्थिति पैदा करना चाहता है। हम छोटे छोटे व्रतों के द्वारा जीवन स्तर को ऊँचा उठाना चाहते हैं। पांच वर्ष पूर्व मैंने आपको इसकी गतिविधि बताई थी। आपने सुना अधिक कहा कम। आपने आज तक कुछ भी सहयोग नहीं दिया। सहयोग से मतलब हमें पैसा नहीं लेना है। यह आर्थिक आन्दोलन नहीं है।

नेहरू—मैं जानता हूँ आपको पैसा नहीं चाहिये।

आ०—इस आन्दोलन को मैं राजनीति से जोड़ना नहीं चाहता।

ने०—मैं तो राजनीतिक व्यक्ति हूँ राजनीति से ओतप्रोत हूँ फिर मेरा सहयोग क्या होगा?

आ०—जैसे आप राजनीतिक हैं वैसे स्वतन्त्र व्यक्ति भी हैं। हम आपके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का उपयोग चाहते हैं—राजनीतिक जवाहर लाल नेहरू का नहीं। पहली मुलाकात में आपने कहा था—"मैं उसे पढ़ गया" क्या अभी आपने पढ़ा या नहीं।

ने०—मैंने यह पुस्तक (अणुव्रत आन्दोलन की) पढ़ी है पर मैं बहुत व्यस्त हूं। आन्दोलन के बारे में मैं कह सकता हूँ।

आ०—आपने कभी कहा तो नहीं, दूसरा कोई कारण है? या तो यह हो सकता है कि आप इस आन्दोलन को उपयोगी नहीं समझते। बीच में नेहरू जी ने कहा यह कैसे हो सकता है? या यह हो सकता है कि आपको इसमें साम्प्रदायिकता जैसी कोई बात लगती है। वेशभूषा को देख

आपको यह लगता हो कि ये हमारे द्वारा कोई स्वार्थ साधना चाहते हो, पर मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि मैं जैन हूँ। जैन धर्म मे विश्वास करता हूँ। जैन श्वेताम्बर तेरापथ सप्रदाय का सचालक हूँ। पर इस आन्दोलन के द्वारा कोई स्वार्थ साधन नहीं चाहता। यह आन्दोलन व्यापक है। जाति सम्प्रदाय आदि भेदों से परे है। इस पर भी किसी को साम्प्रदायिक लगे तो दूसरी बात है—यूँ तो आप भी हिन्दू हैं। किन्तु राजनैतिक नेतृत्व हिंदूपन से नहीं है।

ने०—मैं जानता हूँ आपका आन्दोलन सांप्रदायिकता से परे है। ठीक चल रहा है।

आ०—हमारे सैकडों साधु-साध्वियाँ चरित्र-विकास के कार्य मे सलग्न हैं। उनका आध्यात्मिक क्षेत्र मे यथेष्ट उपयोग किया जा सकता है।

ने०—क्या 'भारत साधु समाज' से आप परिचित हैं ?

आ०—जिस भारत सेवक समाज के आप अध्यक्ष हैं, उससे जो सम्बन्धित है, वही तो ?

ने०—हाँ, भारत सेवक समाज का मैं अध्यक्ष हूँ। यह राजनैतिक सस्था नहीं हैं। उसी से सम्बन्धित यह 'भारत साधु समाज' है।

ने०—आप श्री गुलजारीलाल नन्दा से मिले हैं ?

आ०—पांच वर्ष पहले मिलना हुआ था। भारत साधु समाज से मेरा सम्बन्ध नहीं है। जब तक साधु लोग मठों और पैसों का मोह नहीं छोडते तब तक वे सफल नहीं हो सकते।

ने०—साधुओं ने धन का मोह तो नहीं छोडा है। मैंने नन्दा जी से कहा भी था तुम यह बना तो रहे हो पर इसमे खतरा है।

आ०—जो मैं सोच रहा हूँ, वही आप सोच रहे हैं। आज आप ही कहिये, उनसे हमारा सम्बन्ध कैसे हो ?

ने०—उनसे आपको सम्बन्ध जोडने की आवश्यकता भी नहीं है। साधु समाज अगर काम करे तो अच्छा हो सकता है, ऐसी मेरी धारणा

है। पर काम होना कठिन हो रहा है।

आ०—आपको पता है अभी तीन दिनों तक 'संयुक्त गोष्ठी' चली थी।

ने०—हाँ, मैंने पत्रों में पढ़ा है।

आ०—उसमें लोग आपका उपयोग लेना चाहते थे पर स्थितिवश वैसा नहीं हो सका। राष्ट्रपति उपराष्ट्रपति और श्री अनन्तशयनम् अय्यंगार की अस्वस्थता व पारिवारिक उलझनों के कारण 'संयुक्त गोष्ठी' का उद्घाटन नहीं कर सके। यह कार्य युनेस्को के डाइरेक्टर जनरल डा० लूथर इवेन्स द्वारा हुआ। उन्हें अणुव्रत आन्दोलन बहुत भाया। [पं० नेहरू ने यह बहुत आश्चर्य से सुना।] मैंने उन्हें (लूथर इवेन्स को) युनेस्को द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर "मैत्री दिवस' मनाने का सुझाव दिया। वे सोचेंगे—ऐसा उन्होंने कहा। मैं आपसे सुझाव लेना चाहता हूँ। क्या विचार है?

ने०—कैसे?

आचार्य-श्री ने उसका स्पष्टरूप समझाया और कहा यह दिवस विश्व मैत्री की दृष्टि से आपके पंचशील को आधार दिया जा सकता है।

ने०—पंचशील! मैंने बनाया तो नहीं काम में जरूर लिया है। (पूर्व प्रसंग को छूते हुए कहा) यह (मैत्री दिवस मनाने का) काम तो अच्छा है पर चलने से ही। यह चले तो इसके सम्बन्ध में मैं कह सकता हूँ कुछ कर सकता हूँ।

आ०—पंचशील के बारे में आप विश्वस्त हैं कि सब लोग ठीक चल रहे हैं।

ने०—नहीं ऐसा तो नहीं है।

आ०—इस विषय में दृढ़ता से सोचना चाहिये।

ने०—सोचने का समय नहीं है। बहुत व्यस्त हूँ। सोचने का अवकाश मिल नहीं रहा है।

आ०—डा० लूथर इवेन्स ने कहा था कि मैत्री दिवस के बारे में

विज्ञान भवन मे मैं कुछ बोलूं। उन्होंने सरकार को पत्र भी लिखा होगा किन्तु उन्हें अनुमति नहीं मिली

ने०—यह अस्वीकृत क्यो किया गया, मुझे पता नहीं है।

आ०– यह तो मुझे भी मालूम नहीं है।

इसके पश्चात् कुछ अतरग बातें भी हुई। तेरापन्थ और उसकी स्थिति के बारे मे वार्तालाप हुआ। लगभग ४८ मिनट तक विचार विनिमय होता रहा। पाच वर्ष पहले हुई मुलाकात मे पडित जी ने सुना अधिक और बोले कम। इस बार चर्चा मे बहुत अधिक रस लिया।

वार्तालाप की समाप्ति पर पडित जी ने कहा—"आन्दोलन की गतिविधि को मैं जानता रहूँ, ऐसा हो तो बहुत अच्छा रहे। आप नदा जी से चर्चा करते रहिये। मुझे उनके द्वारा जानकारी मिलती रहेगी। मेरी उसमे पूरी दिलचस्पी है।"

वार्तालाप की समाप्ति के बाद नेहरू जी आचार्य श्री को कोठी से नीचे तक पहुँचाने आये।

मन्थन (१३)

श्री अशोक मेहता के साथ

चुनाव शुद्धि पर चर्चा

प्रवचन के बाद ६ दिसबर १९५६ को समाजवादी नेता श्री अशोक मेहता आचार्य-श्री के साथ विचार-विनिमय करने आये। श्री मेहता ने पूछा—आजकल आपका कार्यक्रम कहाँ चलता है ?

आचार्य-श्री—हमारे साधु-साध्विया देश के विभिन्न भागों मे,

जहाँ जहाँ वे पर्यटन करते हैं वहाँ हमारा जन जन में नैतिक निर्माण-कारी काम चल ही रहा है । दिल्ली में अच्छा कार्यक्रम चल रहा है।

श्री मेहता—अणुव्रती व्रत लेते हैं, वे उनका पालन करते हैं या नहीं इसका आपको क्या पता रहता है ?

आचार्य-श्री—प्रतिवर्ष होने वाले अणुव्रत अधिवेशनों में जब अणुव्रती परिषद् के बीच अपनी छोटी मोटी गलतियों का भी प्रायश्चित्त करते हैं, इससे पता चलता है वे व्रत पालन की दिशा में सावधान हैं। कई लोग चालू हट भी जाते हैं। इससे भी ऐसा लगता है कि जो प्रतिवर्ष व्रत लेते हैं, वे उन्हें दृढ़ता से पालते हैं। अणुव्रतियों में अधिकांश जो हमारे सम्पर्क में आते रहते हैं, उनकी सार सम्हाल तो मैं और सौ-सवासौ जगह अलग-अलग घूमने वाले हमारे साधु-साध्वियां लेते रहते हैं। कठिनाई के कारण अगर कोई व्रत नहीं पाल सकता तो उसे अलग कर दिया जाता है और ऐसा हुआ भी है। इस पर से खरे उतरने वाले अणुव्रतियों का भान हमें प्रतिक्षण रहता है।

हम नैतिक सुधार का जो काम कर रहे हैं उसमें हमें सभी लोगों के सहयोग की अपेक्षा है। रुपये पैसे के सहयोग की हमें अपेक्षा नहीं है। हम चाहते हैं अच्छे लोग यदि समय समय पर अपने आयोजनों में इसकी चर्चा करते रहें तो इससे आन्दोलन शक्ति प्राप्त करता है। अतः हम आपसे भी चाहेंगे कि आप हमें इस प्रकार का सहयोग दें।

श्री मेहता—उपदेश करने का तो हमारा अधिकार है नहीं क्योंकि हम लोग राजनैतिक व्यक्ति हैं। राजनीति में जिस प्रकार हमने निर्णय लिया है, उस पर से हमें उसके सम्बन्ध में कहने का अधिकार है। पर धर्म का हम उपदेश नहीं कर सकते और करना भी नहीं चाहिये। वैसे मैं तो कभी कभी इसकी चर्चा करता हूँ और आगे भी करता रहूँगा।

चुनाव के समय में किये जाने वाले कार्यक्रम को लेकर जब उन्हें उनकी पार्टी का सहयोग देने के लिये कहा गया तो उन्होंने कहा— मैं

तो अभी यहाँ रहने वाला हूँ नहीं। हमारी पार्टी के दूसरे सदस्य इस कार्यक्रम मे जरूर भाग लेंगे। पर काम केवल घोषणा मे नहीं होने वाला है। इसके लिये तो खड़े होने वाले उम्मीदवारो और विशेषत जनता को जागरूक बनाने की आवश्यकता है। अत आप जनता मे भी कार्य करें।

आचार्य श्री—हां, यह तो हम कर ही रहे हैं। अभी जब हम गाँवो मे से गुजर रहे थे तो एक जगह देहाती लोग मेरे पास आये और बोले—महाराज! हम भले बुरे को जानते नहीं, हमारे पास अनेक लोग वोट लेने आयेंगे, आप ही बता दीजिये कि हमे वोट किसको देना चाहिये? औरों को तो हम जानते हैं नहीं, आप कहेंगे उन्हें वोट देंगे।

मैंने कहा—भाई! यह तो तुम स्वय जानो पर एक बात मैं तुम लोगों से जरूर कहूँगा कि वोट लेने के लिये कम मे कम अपने आपको तो मत बेचो। इस प्रकार जनता मे हमारा प्रयास चालू है। इसको हम उम्मीदवारो मे भी शुरू करना चाहते हैं।

कुछ विशिष्ट व्यक्तियो का आगमन

व्याख्यान के बाद दिन मे श्री एन० उपाध्याय आचार्य के दर्शनार्थ आये। काफी समय तक विभिन्न विषयों पर वार्तालाप हुआ।

आहार के बाद संसत्सदस्य सेठ गजाधरजी सोमाणी से दान-दया आदि के बारे मे कुछ देर तक बात चली।

तदनन्तर कांग्रेस के महामन्त्री श्री श्रीमन्नारायण और उनकी पत्नी श्रीमती मदालसा जी आई। उनसे "राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण अणुव्रत सप्ताह" के बारे मे विचार विनिमय हुआ। उन्होंने उसमें बड़ी अभिरुचि दिखाई और अपने सुझाव भी रखे। सायकाल प्रार्थना के बाद आज "सामूहिक ध्यान" का कार्यक्रम हुआ।

सम्पर्क (१४)

श्री गुलजारी लाल नन्दा के साथ

नैतिक सुधार क आन्दोलन

ता० ६ सितम्बर १६५६ को प्रार्थना के बाद केन्द्रीय योजना मंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने आचार्य-श्री के दर्शन किये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा—मैं आज सुबह आपके दर्शनार्थ आने वाला था। मैंने पता भी लगाया पर आप सुबह कहीं प्रवचन करने गये हुये थे। मेरा तो आप से पुराना सम्पर्क है। नेहरू जी ने मुझे कहा था कि आचार्य-श्री तुलसी जो काम कर रहे हैं उससे मुझे सम्पर्क रखना चाहिये।

आचार्य-श्री—हाँ पाँच वर्ष पहले आप मिले थे उसके बाद मिलना नहीं हुआ। आपने जो "भारत साधु समाज" नामक उपक्रम किया है उसके विकास आदि के लिये काफी समय देना पड़ता होगा ?

नन्दा—हाँ जो काम आरम्भ किया है उसके लिये समय तो देना ही पड़ता है अन्यथा वह चीज पनप नहीं सकती।

आचार्य-श्री—देश में नैतिक सुधार के जो काम चालू हैं, उनसे भी आपको परिचित रहना चाहिये। क्योंकि वे भी देश के लिये ही हैं।

नन्दा—यह तो ठीक है नैतिक उत्थान का कार्य किधर से भी हो वह प्रशंसनीय है। मैं आपके आन्दोलन से परिचित हूँ। लेकिन सबने अपने क्षेत्रों के अनुसार सुधार का काम अपने अपने तरीकों से ही रखा है। इससे एक रूपता नहीं आती और उपक्रम का महत्व भी उतना नहीं आता। अतः मिलकर काम किया जाये तो अधिक व्यवस्थित और अधिक सुन्दर काम होने की सम्भावना रहती है। आप भी इस विषय में हमारा सहयोग कर सकें तो अच्छा रहे।

मन्थन (२५)

श्री महेन्द्र मोहन चौधरी के साथ
अणुव्रत आन्दोलन की भावना

१० दिसवर १९५६ को साय प्रतिक्रमण करने के वाद काग्रेस कमेटी के जनरल सेक्रेटरी श्री महेन्द्रमोहन चौधरी आचार्य-श्री के दर्शन करने आये। आचार्य-श्री ने उनको अणुव्रत-आंदोलन की जानकारी दी। विभिन्न वर्गों मे चलते हुये नैतिक काम से अवगत कराकर आचार्य-श्री ने कहा—जनता को तो हमने इसकी काफी भावना दी, पर अव हम चाहते हैं कि ऊँची श्रेणी के लोग इसमे आयें। जव तक चोटी के लोग इसमे नहीं आयेंगे, तव तक जन साधारण इसका मूल्याकन नहीं कर सकते। पानी ऊपर से नीचे जाता है और सारी धरती को आप्लावित कर देता है। यही वात प्रत्येक कार्यक्रम पर लागू होती है।

श्री महेन्द्रमोहन चौधरी ने कहा—हाँ, यह वात तो ठीक है और आपके वारे मे तो यह वात हो भी गई है। जवकि राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मोरारजी भाई, ढेवर भाई, नन्दा आदि से आपकी वात हो चुकी है। आप अपनी विचारधारा दे चुके हैं तथा उन्हें प्रभावित कर लिया है तो ऊँची श्रेणी के लोग तो सम्मिलित हो गये। पर मैं यह मानता हूँ कि इस प्रकार चार पांच सुधरे हुये व्यक्तियों से जगत् का सुधार नहीं होता। उसके लिये तो आम जनता के साथ सम्वन्ध जोड़ना आवश्यक है। उनमे नैतिक भावनाओं के वल पर परिवर्तन करना चाहिये।

आचार्य-श्री ने कहा—हम लोग तो इस ओर भी पूर्ण सचेष्ट हैं। हमारे साधु-साध्वियों के १२० ग्रुप विभिन्न प्रान्तों मे जन-मानस को जगाने का काम करते हैं। हम पैदल चलते हैं, इसीलिये गाँव निवासियों से भी अच्छा सम्पर्क रहता है। कोटि कोटि जनता मे अपने विचार

बताने का यह सुगम रास्ता है। ग्रामीण जनता में श्रद्धा है विश्वास है। साधुओं के सम्पर्क से वे अपनेको कृत-कृत्य समझते हैं और उनकी बातें बिना किसी ननु नच के स्वीकार करते हैं।

सम्पर्क (१)

यू पी आई के डायरक्टर के साथ

आत्मवाद बनाम भोगवाद

१२ दिसम्बर १९५९ को युनाइटेड प्रेस आफ इण्डिया के डाइरेक्टर श्री सी० सरकार आचार्य-श्री से भेंट करने आये।

आचार्य-श्री ने कहा—आज विश्व में दो दृष्टियां प्रमुख हैं—एक आत्मवाद को देखती है तो दूसरी भोगवाद की ओर दौड़ती है।

आत्मवाद सत्य है मौलिक है उसमें दिखावा नहीं। किनारे पर चलने वालों के लिये यह कुछ नहीं। उसका मूल्य तो गहराई में जाने वाले पाते हैं। साधारण व्यक्ति गहरे उतरने वाले नहीं होते। यही कारण है कि विश्व के अधिकांश लोग आत्मवाद से पराङ्मुख हैं। वे भोग की ओर मुड़े जा रहे हैं क्योंकि भोग में चमक है। उसमें भरमाते चले ही जाते हैं। वे यह नहीं सोचते कि उन्हें अन्त में दिन दिन जलना पड़ेगा।

आज लोगों की यही दशा है। बाहर का दिखावा ही बड़प्पन का मापदण्ड है। जिसके पास करोड़ों की सम्पत्ति है मोटरों की कतार है गगनचुम्बी अट्टालिकाएं हैं ऐश्वर्यपूर्ण सामग्री है—वही बड़ा माना जाता है। उसे ही सर्वत्र प्रमुख स्थान मिलता है। इस बड़प्पन के चक्कर में फंसकर मनुष्य अपनी मर्यादा से च्युत होने में भी नहीं सकुचाता।

आज हमे इस मूल्याकन की दृष्टि को बदलना हैं। नैतिक मूल्यों का प्रतिष्ठापन करना है। इसके लिये हमे भगीरथ प्रयत्न करने होंगे। मै समझता हूँ कि जननायक, जन सेवक, व्यापारी, वक्ता, साहित्यकार और पत्रकार का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वे चरित्र-विकास की योजनाओं मे यथाशक्ति सात्विक सहयोग दें। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो वे अपने कर्त्तव्य से च्युत होते हैं। साधु-सन्तों का तो लोगो को सन्मार्ग पर लाना, चारित्रिक बनाना आदि काम सदा से रहा है और इस जिम्मेदारी को निभाते भी हैं। अभी अभी हम २०० मील की लम्बी यात्रा करके राजस्थान से यहां आये हैं। हम किसी वाहन का उपयोग नहीं करते, पैदल ही चलते हैं। हमारे उपकरण सीमित होते हैं।

सरकार—तो क्या आप इतने वस्त्रों से ही काम चला लेते हैं ?

आचार्य श्री—हा, हम शीतकाल भी इन्हीं वस्त्रों से गुजार देते हैं। हम रूई का बना भी कोई वस्त्र काम मे नहीं लाते।

सरकार—ठीक है, आप मे साधना और ब्रह्मचर्य की इतनी गर्मी रहती है कि वाह्य सर्दी पास भी नहीं आती।

आचार्य श्री—क्या आप अणुव्रत-आंदोलन से परिचित हैं ?

सरकार—हाँ, मैंने उसके नियम पढे हैं और उसके कार्यक्रमो से भी पूर्ण परिचित हूँ। प्राय पत्रो मे इसकी चर्चा मिलती रहती है। यह आन्दोलन राष्ट्र के लिये हितकर है। मैं अपने आपको इसके सहयोग मे प्रस्तुत करता हूँ।

तत्पश्चात् आचार्य श्री ने उन्हें "तेरापथ' की विस्तृत जानकारी दी। सघ सगठन व विधान की बातें बताई। वे इससे बहुत ही प्रभावित हुए।

क्रम (१७)

'टाइम्ज आफ इंडिया' के डिपुटी चीफरिपोर्टर के साथ

अणुव्रत आन्दोलन का उद्‌गम और विस्तार

१२ सितबर १९५६ को तीसरे पहर मे बम्बई के प्रमुख दैनिक 'टाइम्ज आफ इंडिया' के डिपुटी चीफ रिपोर्टर श्री रामेश्वरम आचार्य श्री की सेवा मे उपस्थित हुए। उन्होंने कहा—मैंने आज के अणुव्रत-आन्दोलन की बहुत चर्चा सुनी है तथा आप के साधुओं से मिलने का सुअवसर भी प्राप्त होता रहा है पर आन्दोलन के प्रवर्तक से साक्षात्कार तो आज ही हुआ है। मैं चाहता हू कि मेरी जिज्ञासाओं का समाधान आप से पाऊँ।

कृपया बतलाइये—अणुव्रत-आन्दोलन का प्रारम्भ किस आधार पर हुआ?

आचार्य-श्री—देश के नवयुवक मुझ से बार-बार कहा करते थे कि रूढ़ियों से आच्छन्न कार्यक्रमों मे हमारी कोई श्रद्धा नहीं। हम चाहते हैं कि आपके हाथों ऐसा कोई रचनात्मक कार्य हो जिससे देश की सुषुप्त चेतना जाग सके और हमें निश्चित नवयुवकों को जीवन-निर्माण की सही शिक्षा मिल सके। मैं देश की दयनीय दशा को देखकर सोचा करता था कि राष्ट्र का चरित्र दिनों-दिन पतनोन्मुख होता जा रहा है। उसके लिये कोई उपक्रम किया जाए। उन नौजवानों की प्रेरणा और मेरे चिन्तन का परिणाम अणुव्रत-आन्दोलन का सूत्रपात है।

रामेश्वरम्—इसे आरम्भ हुए कितने वर्ष हुए हैं?

आचार्य-श्री—लगभग ८ वर्षों से यह चल रहा है। लगातार बाहर

(राजस्थान) मे इसका उद्घाटन हुआ था और इसका प्रथम वार्षिक अधिवेशन देहली के चांदनी चौक मे हुआ था, जिसमे लगभग ६५० व्यक्तियो ने अणुव्रत की प्रतिज्ञाएँ ली थीं। आज तो यह सख्या लाखों मे है।

रामेश्वरन्—आप कैसे जानते हैं कि वे अपने व्रत निभाते हैं ?

आचार्य-श्री—हम घूमते रहते हैं। अत हमारा अणुव्रतियों से सहज मिलना हो जाता है। तब उनके आचरण, इधर उधर के व्यवहार तथा अन्य व्यक्तियों से सारी जानकारी मिल जाती है। साधु-साध्वियों के दलो द्वारा भी जांच होती रहती है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष एक अधिवेशन होता है, उसमे प्राय अणुव्रती भाई-बहिन सम्मिलित होते हैं तथा अपनी छोटी से छोटी भल का भी प्रायश्चित्त करते हैं। यही उनके व्रत-पालन का प्रम ण है।

रामेश्वरन्—भारत के कौन-कौन से भागो मे अणुव्रती बने हैं ?

आचार्य-श्री—राजस्थान, दक्षिण भारत, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, उडीसा, पजाब आदि प्रान्तों मे काफी सख्या मे अणुव्रती हैं। वैसे तो प्राय भारत के सभी प्रान्तों मे अणुव्रती हैं।

रामेश्वरन्—क्या किसी ने अपना नाम वापस भी लिया है ?

आचार्य-श्री—हाँ, लगभग दस प्रतिशत ने अपना नाम वापस लिया है।

रामेश्वरन्—कौन-कौन लोग इसमे सम्मिलित हुए हैं ?

आचार्य-श्री—सभी धर्म, जाति और वर्ग के लोग इसमे आये हैं। धर्म की दृष्टि से हिन्दू, जैन, मुसलमान और ईसाई अणुव्रती बने हैं। जाति की अपेक्षा राजपूत, ब्राह्मण, वणिक, हरिजन आदि सम्मिलित हैं और वर्ग की अपेक्षा मत्री, उद्योगपति, मजदूर, ससत् सदस्य, विधान सभाई, वकील, व्यापारी, न्यायाधीश, विद्यार्थी, अध्यापक आदि सभी वर्गों के लोग अणुव्रती हैं,

तत्पश्चात् "तेरापथ" के बारे में भी कुछ चर्चा हुई।

दो बहनो की भेंट

मध्यान्ह मे अखिल भारतीय महिला कांग्रेस कमेटी की मन्त्रिणी

सुश्री मुकुल मुखर्जी तथा सुश्री कृष्णा दवे आचार्य-श्री के दर्शनार्थ आयीं।

आचार्य-श्री—क्या आप ने अणुव्रत-आन्दोलन का साहित्य पढ़ा है?

मु —साहित्य देखा जरूर है किन्तु पढ़ने का अवसर नहीं मिला। पर मुनिश्री (महेन्द्र मुनि) से इस विषय में काफी चर्चा हुई है। उनसे इसके पहलुओं पर अनेक बार विचार विमर्श हुआ है।

आचार्य-श्री—अच्छा तो आप इसकी गतिविधि से परिचित हैं ही। कहिये आपने इसमें सहयोग देने के बारे में क्या सोचा है? क्योंकि कोई भी काम तब तभी पनपता है जब उसमें अनेक व्यक्ति लग जाते हैं और अपने-अपने क्षेत्र में उसकी भावना का प्रसार करते हैं। प्रचार का यह एक सुगम तरीका है कि जो लोग जहाँ काम करते हैं वहाँ उसकी चर्चा करते रहें और उसके अनुकूल वातावरण बनाते रहें।

मु —इसमें सहयोग की बात ही क्या है। यह तो हम सबका कर्म है कि ऐसे चारित्रिक आन्दोलनों को सब काम छोड़कर, हम बल दें। मैं अपने सम्पर्क में आने वाले भाई बहिनों से इसकी चर्चाएं करूंगी। हमारी कमेटी की २६ प्रान्तीय शाखाएं हैं और ४ समितियां हैं। हमें अगर अणुव्रत आन्दोलन का साहित्य मिले तो हम उसे सारी जगह भिजवा दें तथा उसके अध्ययन की हिदायत भी देवें।

तत्पश्चात् आचार्य श्री ने साधु साध्वियों के अध्ययन के बारे में विस्तृत जानकारी दी। आचार्य श्री ने कहा—हमारे यहाँ प्राकृत संस्कृत हिन्दी अंग्रेजी तथा अनेक प्रान्तीय भाषाओं का सुचारु अध्ययन चलता रहता है। किन्तु अध्ययन किन्हीं वेतन भोगी व्यक्तियों द्वारा नहीं होता। साधु ही एक दूसरे को पढ़ाते हैं। यही परम्परा आज भी चालू है। तत्पश्चात् साधु-साध्वियों द्वारा नव निर्मित कलात्मक वस्तुएं तथा सूक्ष्म लेखन के पन्ने दिखाये। हाथ से बनी इन कलात्मक वस्तुओं को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ और उन्होंने यह जाना कि तेरापंथी साधुओं का जीवन श्रममय है। वे अपनी आवश्यकता की बहुत-सी चीजें खुद ही बना लेते हैं।

श्री गुलजारीलाल नंदा के साथ दूसरी बार

साधु दीक्षा और क़ानून

१३ दिसम्बर १९५६ को प्रथम प्रहर मे योजना मन्त्री श्री नन्दा ने पुन आचाय श्री से भेंट की। साधारण वातचीत के वाद आचार्य श्री ने कहा— धर्म करने का अधिकार सव स्थानों मे, सव वर्गो मे और सव कालो मे खुला रहा है। इस पर किसी की भी जवरदस्ती नहीं चल सकती और होनी भी नहीं चाहिये। लेकिन हम सुनते हैं कि सरकार एक ऐसा कानून वनाना चाहती है कि कोई भी विना लाइसेन्स के साधु नहीं वन सकेगा। मैं समझता हूँ कि ऐसा करना सीधा अध्यात्मवाद पर प्रहार करना है। व्रत ग्रहण करने में उसकी योग्यता और वैराग्य वृत्ति ही प्रामाणिक मानी जाती है। वय से उसका सम्वन्ध जोडना ठीक नहीं और कानून से रोकना तो आत्मा-साधना का अधिकार छीनना है।

नदा—मै भी ऐसा समझता हूँ कि वराग्य पर आयु का कोई प्रतिवन्ध नहीं। पर आजकल साधु वेश मे अनेक ढोंगी, चोर और जघन्यवृत्ति के आदमी वढ़ते जा रहे हैं, इसीलिये ऐसी चर्चा चलती है।

आचार्य-श्री—पर इससे मतलव नहीं सधेगा, जो अनैतिकता से काम करने वाले हैं, वे तो फिर भी अपना धधा इसी प्रकार चलाते रहेंगे। दुविधा केवल उनको होगी जो अपने नियमों से चलते हैं। देखिये—वाल विवाह कानून निषिद्ध है फिर भी वे होते ही रहते हैं। कानून से हृदय नहीं वदलता इसीलिये हम इसे उपयोगी नहीं मानते।

दीक्षा के विषय में हम तो व्यक्ति के ज्ञान और व्यवहार को ही कसौटी मानते हैं। हमारे यहाँ दीक्षा देने का अधिकार एक मात्र आचार्य को ही है, अन्य किसी को नहीं। आचार्य श्री काफी समय तक उसके आचार-विचार और स्वभाव की परख करते हैं। तदनन्तर प्रव्रजित करते हैं। ऐसी दीक्षा को कानून से बन्द करना कहाँ तक उचित है?

नंदा—मैं इस विषय पर विचार करूँगा। अब तक तो इस प्रकार का कोई बिल संसद् में नहीं आया है। कुछ लोगों का उसे लाने का विचार तथा प्रयत्न अवश्य है। अच्छा आपने "भारत साधु समाज" के साथ मिलकर कार्य करने के विषय में क्या सोचा है?

आचार्य श्री—नैतिक और चारित्रिक विशुद्धि का जहाँ तक सवाल है हम उसके साथ हैं और अन्य विषयों से सम्बन्ध कम सम्भव लगता है। क्योंकि उसमें कुछ उद्योग भी सम्मिलित हैं जो हमारी मर्यादा के अनुकूल नहीं बैठते।

नंदा—नहीं ऐसा कोई औद्योगिक धन्धा तो उसके जिम्मे नहीं है। उसका लक्ष्य तो अध्यात्मवाद को फैलाना तथा साधु समाज को सुधारना है।

आचार्य-श्री—फिर भी हम लोग कोई भी चिट्ठी नहीं देते तथा अपने शास्त्रीय नियमों के अनुसार किसी सभा या समिति के अध्यक्ष मंत्री और सदस्य नहीं बन सकते। और वैसे हम यही सुधार का काम कर रहे हैं। यह आवश्यक नहीं कि सब लोग एक ही प्रकार से काम करें।

इस प्रकार आधा घंटे तक विचार-विमर्श हुआ।

दो जर्मन सज्जनों के साथ

जीवन शुद्धि

१३ दिसम्बर १६५६ को मध्याह्न मे जर्मन दूतावास के श्री वाल्टर लाइफर और श्री वार्नहार्ट हाइवेच ने आचार्य श्री से भेंट की। शिष्टाचार के बाद निम्न प्रश्नोत्तर हुए —

लाइफर—आज दुनियां व्यथित है, बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रो को दबोच रहे हैं। परस्पर आक्रमण होते हैं। इनमे कसे बचा जा सकता है और यहां अहिंसा कैसे काम कर सकती है?

आचार्य-श्री—अहिंसा मे आत्म-शक्ति होती है। उसमे शुद्ध प्रेम होता है। हम जब निश्छल प्यार करेंगे, अपनी तरफ से भय मुक्त कर देंगे और किसी भी प्रकार से बाधक न बनेंगे तो आक्रमण स्वत बन्द हो जायेगा।

लाइफर—अणुव्रत-आन्दोलन का एक नियम है—"४५ वर्ष के बाद विवाह न करना" ऐसा क्यो? भारत में १८–२० वर्ष की अवस्था मे विवाह हो जाते हैं, पर पाश्चात्य देशों मे तो कहीं कहीं ४०–५० वर्ष के बाद प्रथम-विवाह होता है।

आचार्य-श्री—ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध सयम से है। वह यदि यौवन मे न हो सका तो ढलती आयु मे तो अवश्य हो, यह इस नियम का उद्देश्य है। यहां (भारत में) कुछ ऐसा चलता है कि ६०–७० वर्ष के बूढे दूसरा तीसरा विवाह करने के लिये तैयार होजाते हैं। अपने मन पर काबू नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति मे यह नियम उपयोगी है।

लाइफर—अणुव्रतों का प्रचार क्या सब धर्मों मे और सब देशों मे किया जा सकता है?

आचार्य-श्री—हाँ इनके नियमों का चयन ही कुछ इस प्रकार से किया गया है कि ये देश-विदेश सब जगह चल सकते हैं और सब धर्म वाले ग्रहण कर सकते हैं। क्योंकि ये नियम आत्मा है या नहीं, ईश्वर कर्ता है या सत्ता ऐसे सैद्धान्तिक भेद डालने वाले नहीं लेकिन नैतिक नियम हैं। जीवन में उतारने की चीजें हैं। इनमें कोई दो मत नहीं हो सकते।

लाइकर—आन्दोलन ऐहिक सुख-सुविधा के लिये है या आत्म-जीवन के लिये ?

आचार्य-श्री—यह जीवन विशुद्धि के लिये है। जीवन शुद्ध होगा तो यहाँ भी शान्ति मिलेगी और इतर लोक में भी।

लाइकर—आत्मा ही सुख-दुःख का कर्ता है या कोई अन्य ?

आचार्य श्री—आत्मा ही सुख-दुःख का कर्ता है। कोई अन्य शक्ति नहीं।

लाइकर—हम जो अच्छा काम करते हैं क्या उसके लिये ईश्वर का आशीर्वाद आता है ?

आचार्य-श्री—अच्छा अनुष्ठान स्वयं ही आशीर्वाद है। ईश्वर कोई आशीर्वाद नहीं भेजता ?

लाइकर—हमारे यहाँ ऐसा माना जाता है कि ईश्वर अनुग्रह करता है पर ऐसा नहीं कि वह अनुग्रह धार्मिक पर ही करे वह एक पापी पर भी कर सकता है। यह उसकी व्यक्तिगत चीज है। किन्तु वह प्राय करता धार्मिक पर ही है क्योंकि उसके लिये वही उत्तम पात्र होता है। फिर भी कभी-कभी देखा जाता है कि जो आजीवन पापों में लिप्त रहा वह भी अन्तिम समय में धर्म-प्राण बन जाता है। यह प्रभु का अनुग्रह ही कहा जा सकता है। वहाँ तर्क नहीं चलता, केवल श्रद्धा काम देती है।

आचार्य-श्री—पूर्व अवस्था में जो व्यक्ति पापी रहा और अन्तिम अवस्था में धार्मिक बनता है, वह उसके आत्म-सुधार का ही परिणाम

है। ईश्वर का उसमे कुछ सहयोग हो, ऐसा जंचता नहीं। आप लोग अणुव्रत-आन्दोलन मे क्या सहयोग कर सकते हैं ?

लाइफर—हमारे यहां भी ऐसे नैतिक नियमो की आवश्यकता है। पर वहां धार्मिको को टेलीविजन, ब्राडकास्ट आदि पर मौका नहीं दिया जाता। अत आप लोग सशक्त धार्मिक वहां आयें तो कुछ हो सकता है। मैं विश्वास पूर्वक कहता हूँ कि इसका अच्छा असर पड़ेगा।

आचार्य-श्री—हम लोग पैदल चलते हैं। वहां जाना सम्भव प्रतीत नहीं होता। हम आपको ही अपना दूत बनाते हैं। आप अपने देश मे यथा-सम्भव इसको फैलाने का यत्न करें।

लाइफर—हां, हमारा दूतावास इसके लिये यथा-शक्ति तैयार है। हम पत्रों द्वारा इसका प्रचार करेंगे, रिपोर्ट भेजेंगे और लोगो को इसकी जानकारी देंगे। आज हमने आपसे जीवन विशुद्धि का मार्ग प्राप्त किया है। हम आपके आभारी हैं। आपने जो अपना अमूल्य समय दिया है, हम वह कभी भूलेंगे नहीं। धन्यवाद।

मन्थन (७०)

अमरीकी महिला जिज्ञासुओं के साथ

जैन मुनि जीवन की मर्यादा

१४ दिसम्बर १९५६ को तीन अमेरिकन महिलायें आचार्य-श्री से भेंट करने आयीं। आचार्य-श्री ने जैन साधु जीवन का परिचय देते हुए उन्हें बताया—हम लोग आजीवन अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पांच महाव्रतो की साधना करते हैं। अहिंसा के लिए ही

हम पैदल चलते हैं। रथ मे नहीं चलते। अभी हम तीन वर्षों में हमने ५ हजार मील की यात्रा की है। हम बीच बीच मे गावों मे ठहरते हैं। वहाँ उपदेश करते हैं। हम चातुर्मास के सिवाय एक मास से अधिक कहीं भी नहीं ठहरते। बीमारी का अपवाद है। हम रात्रि-भोजन नहीं करते। हरी घास पर नहीं चलते। मांस भी जैन साधुओं के लिये वर्ज्य है।

प्र —भारत मे जैन कितने हैं ?

उ —जन गणना मे जैनों की संख्या १५ लाख मानी है पर मेरा ख्याल है जैन ४ लाख से कम नहीं होने चाहिये।

प्र०—आपके भोजन की विधि क्या है ?

उ —हम भोजन नहीं पकाते और न हमारे लिये पकाया हुआ लेते हैं। गृहस्थ लोग अपने लिये जो बनाते हैं उसका ही कुछ भाग ग्रहण कर हम अपना काम चला लेते हैं।

प्र —दूसरे पकाते हैं उसमे भी तो हिंसा होती होगी ?

उ०—हाँ पर वे तो स्वयं अपने लिए पकाते ही हैं। क्योंकि सारे तो साधु होते नहीं।

प्र —साधु बनने मे न्यूनतम अवस्था कितनी है ?

उ —अवस्था की दृष्टि से शास्त्रों में ८ वर्ष का विधान आया है पर साथ साथ मे योग्य होना भी आवश्यक है। अयोग्य भले ही ६ वर्ष का क्यों न हो, दीक्षा नहीं हो सकती।

प्र०—कोई मनुष्य जानवर पर अत्याचार करे तो आप उस समय क्या करेंगे।

उ०—हम मारने वाले को उपदेश देंगे। हिंसात्मक तरीकों से बचाना हमारा काम नहीं है। क्योंकि हम हृदय परिवर्तन को ही धर्म मानते हैं।

प्र —क्या आप पशुओं पर अत्याचार नहीं करने का उपदेश करते हैं ?

उ०—अवश्य, इसीलिए तो हम किसी भी प्रकार की सवारी नही करते।

प्र०—पर मोटर, प्लेन आदि मे तो किसी जानवर को कष्ट नहीं होता तो फिर आप उनमे क्यों नहीं बैठते ?

उ०—उनमे वैसे तो किसी जानवर को कष्ट होता नहीं दीखता, पर उनके नीचे आकर या उनके प्रयोग मे छोटे छोटे जीव तो बहुत मरते ही हैं और बड़े जीव भी तो उनसे मर सकते हैं।

प्र०—कृषक खेती करते हैं। वे तो अहिंसक नहीं हो सकते ?

उ०—हां, वे पूर्ण अहिंसक नहीं हो सकते।

प्र०—स्त्रियों के लिये क्या आपके धर्म मे समानता है ?

उ०—हां, जितने अधिकार पुरुष को हैं, उतने ही स्त्रियों को भी हैं। आत्म-विकास का सबको समान अधिकार है।

प्र०—क्या वे भी पैदल चलती हैं ?

उ०—हां। साध्वियां हजारों मील पैदल घूमती हैं।

प्र०—क्या वे उपदेश भी करती हैं ?

उ०—हां, बड़ी-बड़ी सभाओं में भी उनका उपदेश होता है और बहुत से लोग उनसे प्रभावित होकर अनेक बुराइयों का त्याग करते हैं।

हमारा दूसरा महाव्रत है सत्य। हम जीवन भर असत्य नहीं बोलते और वैसा सत्य भी नहीं बोलते, जिससे किसी का नुकसान होता हो। इसलिये हम न्यायालयों में कभी गवाही नहीं देते।

तीसरा महाव्रत अचौर्य है। हम कोई भी चीज बिना पूछे नहीं लेते। मकान भी पूछ कर ही लेते हैं और जब हमे मकान मालिक मना ही कर देता है तो हम उसी वक्त उसे खाली कर देते हैं।

प्र०—क्या आप पैसा नहीं रखते ?

उ०—नहीं, हमने तो अपना स्वय का धन भी छोड़ दिया है।

प्र०—क्या आप जातिवाद को मानते हैं ?

उ०—नहीं, भगवान् महावीर ने जातिवाद को अतात्विक माना है।

प्र —क्या आप पुनर्जन्म को मानते हैं ?

उ —हाँ, क्योंकि आत्मा शाश्वत है। जब तक वह मुक्त नहीं बन जाती तब तक एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती रहती है। अतः पूर्व जन्म और पुनर्जन्म दोनों ही हैं।

प्र०—क्या विदेशों में भी जैन धर्म का प्रचार है ?

उ —हाँ डा. हर्मन जैकोबी जैनधर्म के अच्छे ज्ञाता थे और भी बहुत से जैन ज्ञायक हैं। जर्मन भाषा में तो जैन दर्शन का बड़ा साहित्य है। रास्ते में हम रजोहरण से मार्ग की जन्तु को पूजकर चलते हैं। हम लोग वस्तु मात्र नहीं रख सकते। मल बाहर निकालने के लिये भी हम काठ की बनी हुई चौकड़ी और मूल रखती हैं।

प्र —आप वस्तु क्यों नहीं रखते ?

उ०—वह परिग्रह माना गया है। जीवनयापन के लिये वह आवश्यक भी नहीं है।

प्र०—क्या जैन साधु श्रम भी करते हैं ?

उ०—हाँ, पात्र-निर्माण वेष्टन-चिन्ह रजोहरण आदि चीजें वे अपने हाथ से ही तैयार करते हैं।

जब उन्हें पात्र, वस्त्र आदि दिखाये गये तो वे बड़ी प्रसन्न और आश्चर्यान्वित हुईं और कहने लगीं —

प्र —क्या आप इन्हें बेचती भी हैं ? आप हमें दे सकेंगे क्या ?

उ —नहीं ऐसे तो दे नहीं सकते। तुम भी अगर साध्वी बन जाओ तो तुम्हें भी दे सकते हैं। वह हंसने लगीं और कहने लगीं—यह तो हमसे नहीं होगा।

आचार्य-श्री ने कहा एक दूसरी बात और है हम जिस प्रकार सवारी पर नहीं चढ़ते उसी प्रकार हमारी चीजें भी किसी सवारी से नहीं जातीं।

वह हंसती हुई कहने लगी—तब तो इन्हें अमेरिका नहीं जाया जा सकता।

प्र०—क्या आपकी साध्विया दूसरों की सेवा कर सकती हैं ?

उ०—हाँ, वे आध्यात्मिक सेवा कर सकती हैं। हम गृहस्थों से न तो शारीरिक श्रम लेते हैं और न देते हैं।

प्र०—क्या आप भूखे को भोजन दे सकते हैं ?

उ०—हाँ, पर उसी अवस्था मे जब वह हमारे जैसा ही हो। हम जैसे शरीर पोषण के लिए नहीं खाकर, सयम निभाने के लिए खाते हैं, उसी प्रकार अगर कोई पूर्ण सयत व्यक्ति सयम पोषण के लिये खाये तो हम उसे भी भोजन दे सकते हैं। लेकिन सेवा को हम आध्यात्मिक धर्म नहीं मानते। वह तो सामाजिक कर्तव्य है। कर्तव्य और धर्म मे अन्तर है। धर्म कर्तव्य अवश्य है किन्तु सारे कर्तव्य धर्म नहीं। हम केवल धार्मिक काम ही कर सकते हैं।

प्र०—जैन श्रावक तो करते होगें ?

उ०—वे साधु नहीं, अत यथावश्यक करते ही हैं।

प्र०—कलकत्ते मे मैंने जैन मदिर देखा था। क्या आप मूर्ति-पूजा करते हैं ?

उ०—नहीं, हम न तो मूर्ति-पूजा ही करते हैं और न फोटो को ही नमस्कार करते हैं। यहां तक कि गुरू के फोटो को भी वन्दना नहीं करते। जैनों मे कई सम्प्रदाय हैं। उनमे हम तेरापथी हैं। हम लोग मूर्ति-पूजा नहीं करते। हमारे सघ मे ६५० साधु-साध्वियां हैं। सघ मे एक ही आचार्य होता है। सारे साधु देश के कोने कोने मे घूमते रहते हैं। धर्म का प्रवचन करना उनका मुख्य काम है।

तत्पश्चात् आचार्य-श्री ने उन्हें अणुव्रत-आन्दोलन की जानकारी दी। आचार्य-श्री ने पूछा—क्या तुम भी अमेरिका मे इस सर्व-धर्म-सम्मत आन्दोलन का प्रचार करोगी ? मैत्री दिवस के बारे मे भी आचार्य-श्री ने उन्हें समझाया और कहा—क्या तुम स्वय इस पर चल कर अमेरिका के लोगों को भी यह बताओगी ?

उन्होंने स्वीकार किया।

साथ मे आयी हुई एक पत्रकार महिला ने अणुव्रतों का अध्ययन कर इस पर कुछ साहित्य लिखने का वादा किया और प्रसन्न होकर फिर दुबारा आने का वादा कर तीनों चली गयीं।

सम्पर्क (१)

उपराष्ट्रपति के साथ

सक्रिय जीवन का प्रभाव

१२ सितम्बर १९५९ को प्रातः आचार्य श्री उपराष्ट्रपति डा० सर्व पल्ली राधाकृष्णन् की कोठी पर पधारे। उन्होंने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़ कर अभिवादन किया। आचार्य श्री ने कहा—हम लोग अभी सरदार शहर (राजस्थान) से आ रहे हैं। क्योंकि आजकल दिल्ली सांस्कृतिक और धार्मिक वातावरण की क्रीड़ा स्थली बनी हुई है। हम भी अपनी भावना उसमे देने आये हैं। आपको पता होगा। [illegible] का आयोजन हुआ तीन दिन "अणुव्रत गोष्ठी" का कार्यक्रम चला और यहाँ आपके अमेरिका विदा होने से पूर्व नेहरूजी ने "अणुव्रत-सप्ताह" का उद्घाटन किया।

उ० रा०—लेकिन मैं इनमें से किसी में भी सम्मिलित नहीं हो सका।

आ०—हाँ हमने सुना था कि आपकी पत्नी का देहावसान हो गया था। संसार का यही स्वरूप है। जन्म मृत्यु का अविच्छिन्न सिलसिला चलता रहता है। आचार्य-श्री ने प्रसंगोपात्त "शान्त सुधारस" की "विनय

चिन्तय वस्तु तत्त्व" गीतिका भी फरमायी, जो कि उपराष्ट्रपति ने बड़े ध्यान से सुनी।

उ० रा०—आप यहाँ अभी कितने दिन और रहेंगे?

आ०—अभी कुछ दिन तो ठहरना होगा क्योंकि "अणुव्रत-सप्ताह" चल रहा है। उसके आगे के भी अलग-अलग वर्गों के कार्यक्रम बन चुके हैं।

उ० रा०—जैन-मंदिर मे हरिजन-प्रवेश के विषय मे आपका क्या अभिमत है?

आ०—जहाँ धर्माभिलाषी व्यक्ति प्रवेश न पा सके, वह क्या मंदिर है? किसी को अपनी अच्छी भावना को फलित करने से रोकना, मैं धर्म मे बाधा डालना मानता हूँ। वैसे हम तो अमूर्तिपूजक हैं। जैनों मे मुख्य दो परम्पराएँ हैं—श्वेताम्बर और दिगम्बर। दोनो ही परम्पराओ के दो प्रकार के सम्प्रदाय हैं—एक अमूर्तिपूजक और दूसरा मूर्तिपूजक। जैन सम्प्रदायों मे मूर्तिपूजा के विषय मे मौलिक-दृष्टि से प्राय सभी एक मत हैं। कुछ एक चीज को लेकर थोडा पार्थक्य है, जो अधिकाश बाह्य व्यवहारों का है, जो क्रमश कम होता जा रहा है। अभी जैन सेमिनार मे श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायो के साधुओं ने भाग लिया। वहाँ मुझे भी प्रमुख वक्ता के रूप मे निमन्त्रित किया गया था और अच्छा सहिष्णुता का वातावरण वहाँ था।

उ० रा०—समन्वय का प्रयत्न तो होना ही चाहिये। आज के समय की सब से बड़ी यह माँग है और इसी के सहारे बड़े-बड़े काम किये जा सकते हैं।

आ०—आपका पहले राजदूत के रूप में और अब उपराष्ट्रपति के रूप में राजनीति मे प्रवेश हमे कुछ अटपटा सा लगा था कि एक दार्शनिक किधर जा रहे हैं पर अब आपकी सास्कृतिक रुचियो और अन्य कामों को देखकर लगा कि यह तो एक प्राचीन प्रणाली का निर्वाह हो रहा है। वर्तमान की जो राजनीति है, उसमे कोई विचारक ही सुधार

कर सकता है और उसे एक नई मोड़ दे सकता है क्योंकि उसके पास सोचने का नया तरीका होता है और नया चिन्तन होता है। यह कहीं भी जाता है सुधार का काम शुरू कर देता है।

उ० रा० —आज प्रत्यक्ष हिंसा का तो फिर भी कुछ अंशों में विरोध हो रहा है पर भाव-हिंसा का प्रभाव तो और भी जोरों से चल रहा है इसके निषेध के लिये कुछ उपाय होना चाहिये।

आ० —हाँ अणुव्रत-आन्दोलन इस दिशा में सक्रिय है।

उ० रा० —मैं ऐसा मानता हूँ कि जीवन-उदाहरण का जो असर होता है वह उपदेश या बोध से नहीं होता। इसीलिये आप जो काम करते हैं, उसका जनता पर स्थिर सुन्दर असर होता है। क्योंकि आपका जीवन उसके अनुरूप है।

आ०—आज सद्भावना की बड़ी कमी है। यही कारण है कि आज लोग परस्पर लड़ते रहते हैं और द्वन्द्वों के शिकार होते हैं। हमने सोचा है कि सद्भावना की वृद्धि लाने के लिए एक "मैत्री-दिवस" मनाना चाहिए जिसमें सब परस्पर क्षमा याचना करें। दूसरों द्वारा हुए सब कटु-व्यवहारों को भूलकर मित्र बनें। वार्तालाप के दौरान में नेहरू जी से भी मैंने यही कहा था और उन्होंने इसका समर्थन भी किया।

उ० रा०—यह चीज तो अच्छी है पर लोग इसे भावनापूर्वक मनावें तभी ऐसे दिन मनाने का महत्त्व है। अन्यथा तो जैसे अन्य निश्चित दिन रस्म मात्र होते हैं, वैसे ही यह हो जायगा। यदि इसकी भावना को जागृत रखा जा सके तो यह एक बहुत ही रचनात्मक कदम है।

'स्टेट्समैन' के दिल्ली संस्करण के सम्पादक के साथ

अनैतिकता का निवारण और पत्रकार

१५ दिसबर १९५६ को स्टेट्समैन के दिल्ली सस्करण के सम्पादक श्री क्रोश लैन ने आचार्य-श्री के दर्शन किये। आचार्य-श्री ने उन्हें अणुव्रत आन्दोलन का परिचय देते हुए कहा—आज भारत में ही नहीं, सारे ससार मे अनैतिकता का दौर है, उसे दूर करना प्रत्येक समझदार मनुष्य का कर्तव्य है। अत पत्रकारों पर भी यह उत्तरादायित्व है कि वे आज के अनैतिक वातावरण को शुद्ध करने मे अपना सहयोग दें। पर अक्सर देखा जाता है, वे इस ओर कम ध्यान देते हैं, वे अपने अखबारों मे लूट-खसोट और लड़ाई की बातों को जितना स्थान देते हैं, उतना नैतिक प्रवृत्तियो को नहीं देते, उनकी दृष्टि मे राजनीति का जितना प्राधान्य है, उतना सयम का नहीं है। आज को ही बात है, मैं डा० राधा कृष्णन के यहां गया तो फोटोग्राफर भी वहाँ पहुंच गया और वह इसलिये कि डा० राधा कृष्णन भारत के उपराष्ट्रपति हैं, और उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति को पत्रकार महत्व देते है। मैं यह नहीं कहता कि मेरा फोटो लेना चाहिये। मै तो उसका निषेध करता हूं। पर कहने का तात्पर्य यह है कि पत्रकार नैतिक दृष्टि से कहाँ क्या हो रहा है, इसका ध्यान कम रखते हैं।

क्रोशलैन ने आपकी बात स्वीकार करते हुए कहा—हाँ, यह तथ्य वास्तव मे सही है।

आचार्य-श्री ने फिर उनसे कहा—आज ससार की जो तनावपूर्ण

स्थिति है, उसे मिटाना जरूरी है। इसके लिये हमने एक योजना रखी है कि सारे राष्ट्र कम से कम एक दिन एक दूसरे से क्षमा मांगें एक राष्ट्रपति दूसरे राष्ट्रपतियों से एक सेनापति दूसरे सेनापतियों से और इसी प्रकार एक पत्रकार दूसरे पत्रकारों से अपने गलत व्यवहार की क्षमा मांगें तो इससे मैत्री भाव बढ़ेगा और आपसी तनाव कम होंगे। आपको यह बात पसन्द आई? इसके 'हाँ, यह तो अच्छा है' कहने पर आचार्य श्री ने कहा—तो आप इसमें क्या सहयोग दे सकते हैं? उसने कहा—इस विषय पर अपने अधिकारियों से बातचीत करूंगा। वही व्यक्ति जो पहले आने में संकोच करता था फिर आने का वायदा कर वापस चला गया।

प्रसंग (३)

लोकसभा के अध्यक्ष के साथ

साधुदीक्षा और कानून

१६ दिसम्बर १९५६ को प्रातःकालीन प्रवचन के बाद लोक सभा के अध्यक्ष श्री अनन्त शयनम् अय्यंगार ने आचार्य-श्री के दर्शन किये। वे साथ में नारंगी अमरूद आदि फल लाये थे और श्रद्धा के साथ ही उन्हें भेंट करना चाहा। पर आचार्य-श्री ने कहा—हम वनस्पति को सचित्त (सजीव) मानते हैं अतः उसे छूते भी नहीं। हम तो केवल श्रद्धा ही की भेंट चाहते हैं।

अय्यंगार—तो हमारा पथ-प्रदर्शन कीजिये। भारत में अनेक लोग इस्लाम लेकर आये थे पर उन्होंने भारतीय संस्कृति से बहुत सीखा। उन्होंने वैसे धर्मों की लौकिक सामग्री सम्बन्धों को ग्रहण माना। जो

इम्पीरियल होटल में ठहरता है, वही उनकी दृष्टि मे महान् है। पर भारत उसे महान् मानता है जो वैराग्य सम्पन्न है, सेवा भावी है और त्यागी है। त्यागियों के आगे यहां के सम्राट् झुके और उनको अपना आदर्श माना। मैं समझता हूं, आप उसी के प्रतीक हैं।

आचार्य-श्री—आपका "हिन्दू कोड बिल" के विषय मे क्या खयाल है ?

अय्यगार—दुनिया परिवर्तनशील है। उसमें परिवर्तन होते ही रहते है। सुधार के लिये आवश्यक है कि आज की समाज व्यवस्था मे भी परिवर्तन आये। मनु के सिद्धान्त आज काम नहीं करते। अत जरूरी है है कि कोई उचित व्यवस्था हो। सुधार ससार मे होता ही रहता है। मैं अभी चीन गया था, वहां मैंने अच्छी बातें देखीं। वहां वेश्या वृत्ति नहीं है, घुडदौड नहीं होती, डान्स बन्द है और कोई भिखारी नहीं है। चीन की सरकार ने व्यापार भी अपने हाथों मे ले रखा है। यह इसलिये कि अधिक शोषण न हो और कोई अधिक मुनाफा न ले सके। मेरी आपसे विनती है कि आप उपदेश के अधिकारी हैं, अत आपको भी उपदेश करना चाहिये कि लोग ज्यादा ब्याज न लें, सग्रह की अति-भावना न रखें।

आचार्य-श्री—हम तो अपना कर्तव्य निभा रहे हैं। ऐसी भावनाएं देने मे सचेष्ट हैं पर आप लोगों का भी कुछ कर्तव्य है। आप लोगों का भी उचित सहयोग अपेक्षित रहता है।

आयगार—मेरी इन विषयो मे इच्छा तो रहती है पर क्या करूं, ससद के कामों मे व्यस्त रहना पडता है।

आचार्य-श्री—पर यह चरित्र-सुधार का काम ससद के कामों से भी बडा है।

अय्यगार—हां, यह बुनियादी काम है, इसलिये सहज बडा हो जाता है।

आचार्य-श्री—आज भारत मे विचित्र विचार फैल रहे हैं। पाश्चात्य लोग तो बडी आस्था और श्रद्धा से यहां आते हैं कि भारतीय सस्कृति

महान् है उदार है उसमें से हमें कुछ जीवन निर्माण के गुण लेने हैं। पर यहाँ के लोग सोचते हैं कि पश्चिम से जो धारा बह रही है वह जीवनदायिनी है। आश्चर्य है कि लोग अपने घर को न देखकर केवल बाहर की ओर ताकते हैं।

आचार्य-श्री—इस बार बौद्ध धर्म को इतना महत्व दिया गया, उसका क्या आधार है?

पत्रकार—बौद्ध धर्म एक भारतीय धर्म है। इसमें भारत की रुचि रहनी स्वाभाविक है। दूसरे बौद्ध धर्म एक समस्त धर्म है। बहुत सारे देशों द्वारा यह स्वीकृत है और तीसरी बात यह कि यह सरकार की एक नीति भी थी।

आचार्य-श्री—दीक्षा विधि के बारे में आप क्या सोचते हैं?

पत्रकार—बालिग व्यक्ति ही दीक्षित हो सकता है इसका मैं समर्थक नहीं पर साथ में ऐसा भी समझता हूँ कि छोटे-छोटे बच्चों की दीक्षा नहीं होनी चाहिये। क्योंकि उनके विचार अपरिपक्व रहते हैं। युवा योगी होकर जो दीक्षित होता है वह अधिक सुस्थिर रह सकता है इसलिये कि वह तत्व को अच्छी तरह परख लेता है। पर कानून के द्वारा इस पर कोई पाबन्दी नहीं लगनी चाहिये।

मन्थन (२५)

राष्ट्रपति के निजी सचिव के साथ जैन आगमों के शब्द कोष का निर्माण

ता० १७ दिसम्बर १९५६ को राष्ट्रपति के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री विश्वनाथ वर्मा जी ने आचार्य-श्री के दर्शन किये। औपचारिक बातों के बाद आचार्य-श्री ने कहा—इस बार अणुव्रत आन्दोलन को यहाँ अच्छी गति मिली है। अणुव्रत सप्ताह का कार्यक्रम अच्छे ढग से चल रहा है। विभिन्न वर्गों के लोगो को इसके द्वारा नैतिक जागृति की सजीव प्रेरणा मिली है। राष्ट्रपति जी से भी उस दिन (२-१२-५६ को) इस विषय पर महत्वपूर्ण वार्तालाप हुआ था। उन्होंने यह कहा था—मैं तो ऐसा चाहता हूँ कि ऐसी नैतिक धाराएँ यहाँ भारत मे निरन्तर बहती रहें और जन जीवन में जो मैल आगया है, उसे धोकर बहा दें। आप जो निष्काम रूप मे यह कार्यक्रम चला रहे हैं, उससे देश की एक बहुत बडी जरूरत को आप पूरा कर रहे हैं। लोगों मे इसके प्रति आस्था बढ़ेगी। वे इसका मूल्याकन स्वय करेंगे और अपना सहयोग भी देंगे। राष्ट्रपति जी की इसमें अच्छी आस्था है, उस दिन उनसे अनेक विषयों पर बातचीत हुई। पर एक विषय छुआ भी न गया, जो कि उनकी दिलचस्पी का विषय था। "प्राकृत सोसाइटी" से उनका विशेष लगाव है। वे उसके कार्य-कलापों में विशेष रुचि रखते हैं। हमारे यहाँ प्राकृत का एक बहुत बड़ा काम हो रहा हैं। समस्त जैन आगमों का शब्द कोष तैयार किया जा रहा हैं। सस्कृत मे भी प्रत्येक शब्द दिया जायेगा। सूक्ष्म अन्वेषण के साथ यह काम किया जा रहा है। विशेष बात यह है कि इसमे किसी वेतन भोगी पडित का सहयोग नहीं है, केवल सघ के साधु साध्वियाँ सारा कार्य कर रहे हैं। हमारे अध्ययन-अध्यापन के लिये कोई वेतन भोगी नहीं रहते।

वर्मा—मैं आपके कार्यक्रमों से परिचित रहा हूं। अणुव्रत आन्दोलन में मेरी बड़ी दिलचस्पी है। राष्ट्रपति भी चरित्रात्मक कामों में बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। उनका खुद का जीवन नैतिक है। वे सरल व सादगी का जीवन पसन्द करते हैं। इसीलिये जैसे आन्दोलन में उनकी गहरी निष्ठा है वे ऐसी चीजों के सहारे देश की भलाई देखते हैं। साहित्यिक कार्यों में भी वे अच्छी रुचि रखते हैं। वे आपके कार्यों से परिचित हैं।

आचार्य प्रवर ने तेरापन्थ का परिचय दिया और सूक्ष्म लेखन तथा अनेकों कलात्मक वस्तुयें दिखाईं। उन्होंने कहा—आप तो सजीव कला के निर्माता हैं तथा भारतीय संस्कृति के संरक्षक हैं। आज ऐसा सूक्ष्म लेखन कहीं नहीं मिलता। मैंने नहीं देखा है। ये कृतियां अनुपम हैं।

प्रसंग (७५)

हिन्दू महासभा के अध्यक्ष तथा मन्त्री के साथ

चुनाव शुद्धि

१८ सितम्बर को रात के समय हिन्दू महासभा के अध्यक्ष श्री एन० सी० चटर्जी और महामन्त्री श्री वी० जी० देशपाण्डे आचार्य श्री से वार्तालाप करने आये। आचार्य-श्री ने उनको अणुव्रत आन्दोलन की गतिविधियों से अवगत कराया। 'अणुव्रत सप्ताह' का विवरण बताते हुये आचार्य-श्री ने कहा—"इस सप्ताह के अन्तर्गत हम एक दिन "चुनाव-शुद्धि" का रखना चाहते हैं। हमारे मुनि तथा अन्य कार्यकर्ता भारत की सभी पार्टियों के प्रमुखों से सम्पर्क कर रहे हैं और ऐसा समझा जाता है कि सभी

उस आयोजन मे भाग लेंगे और यह सोचेंगे कि चुनावों मे वरती जाने वाली अनैतिकता को कैसे मिटाया जा सके। आम चुनाव सामने आ रहे हैं इसलिए इस दिशा में कुछ कार्य करना आवश्यक है। कई पार्टियो के नेताओं ने इस विचार का हार्दिक स्वागत किया और यह कहा है कि वे इसमे अपना पूरा सहयोग देंगे। हमने भी इस विषय में कुछ सोचा है और कुछ व्रत भी वनाये हैं। आपका इसमे क्या विचार है ?

श्री चटर्जी ने कहा—आप जो सुधार का काम कर रहे हैं, वह महत्वपूर्ण है और मैं समझता हूँ कि उसे आप अन्य क्रांतिकारी नेताओं से भी अच्छे ढग से सम्पादित कर सकेंगे क्योंकि आपके पास एक सगठित शक्ति है। आपको लोगों का पूरा सहयोग भी मिलेगा, क्योंकि लोग ऐसा चाहते हैं। चुनाव के सम्वन्ध मे आपने जो सोचा है वह उचित है और ऐसा करना भी चाहिये।

श्री देश पाडे ने कहा—महाराज! आपको मन्त्रियों से भी कुछ कहना चाहिये। क्योकि वे भी आज राष्ट्र का वहुत धन खर्च कर रहे हैं। ऐशो आराम मे अपना समय विताते हैं। राष्ट्र के निर्माण में वहुत कम ध्यान देते हैं। जो मोटरें उन्हें सरकारी काम के लिए दी जाती हैं उनका वे निजी कामो मे उपयोग करते हैं। यह वैधानिक दृष्टि से गलत है। अत आप यदि सुधार का काम करना चाहते हैं तो आपको यह सव वातें उन से स्पष्ट कहनी होंगी। उसमें भय नहीं रहना चाहिए। चाहे कोई सत्ताधारी हो या सामा य व्यक्ति हो। उसके दोषों की आपको निर्दयतापूर्वक आलोचना करनी चाहिये। हो सकता है इस कारण आप को सघर्ष मोल लेना पडे। परन्तु ऐसी वातों से आपको सघर्ष करना ही चाहिए।

आचार्य श्री ने कहा—देखिये! हम काम अवश्य करना चाहते हैं पर कोई सघर्ष खडा करके नहीं। क्योंकि सघर्ष से सुधार नहीं होगा, वल्कि दुविधा खडी होती है। सुधार तो शांति से किया जाना चाहिए। आपको यह विश्वास रखना चाहिये कि हमारा लगाव किसी भी पार्टी

नहीं । जो बातें जिसे कहनी होती हैं वे हम निःसंकोच कहते हैं। हमें जब किस बात का सही कहने पर भी यदि कोई नाराज हो जाता है तो हमें क्या और जितनी बातों में हम जाना नहीं चाहते ।

श्री देशपांडे ने कहा—फिर आप काम कैसे कर सकेंगे ? देश की सम्पत्ति यों ही बर्बाद होती रहे और सभी लोग ऐसे ही भीख मांगते रहें तब धर्मसंस्थाएं चलती रहें तब सुधार क्या हुआ ? चुनावों में नीति बरती जाय यह आवश्यक है पर ऐसा करना असम्भव है ।

आचार्य-प्रवर ने कहा—देशपांडेजी ! आपका कथन मुझे विचित्र-सा लगा । आप शायद ठीक ढंग से नहीं कर रहे हैं । मैंने पहले ही यह दिया था कि हम किसी पार्टी विशेष पर आक्षेप करना नहीं चाहते । हम बुराई को मिटाना चाहते हैं—बुरे को नहीं । एक दूसरे पर केवल छींटाकशी करना होता है । ऐसा हम नहीं करते । हमें ऐसी आलोचना इष्ट नहीं है । क्योंकि व्यक्तिगत आलोचना से तो हम दूसरों को भड़का सकते हैं उसका परिष्कार नहीं कर सकते ।

यह स्पष्टोक्ति सुनकर देशपांडे ने कहा—जैसा आप उचित समझें वैसा करें । चुनाव सम्बन्धी जो विचार आपने कहे, वे अच्छे हैं परन्तु यदि सभी पार्टियाँ इनको अपना लें तो कुछ कार्य हो सकता है ।

तत्पश्चात् उम्मीदवारों के लिए और मतदाताओं के लिये बनाये गये व्रत उन्हें सुनाये । दोनों ने व्रतों की सराहना की । और अन्त में देशपांडे जी कुलकर्ण जी दस्ताजी से पूछा कि क्या वे इन व्रतों को अन्तिम रूप देकर हमें इनकी नई प्रतियाँ दे सकेंगे ।

चतुर्वेदी ने प्रसन्नता पूर्वक कहा—मैं भी इस आन्दोलन में आने का प्रयास करूँगा । यदि न आ सका तो भी देशपांडे जी को अवश्य भेजूँगा" इतना कह दोनों वन्दना करके चले गये ।

परराष्ट्र मन्त्री के साथ

जीवन मे नैतिकता की कमी

१६ दिसम्बर १९५६ को परराष्ट्र मन्त्री डा० सैयद महमूद आचार्य श्री से भेंट करने आये। औपचारिक वार्तों के पश्चात् आचार्य प्रवर ने कहा—लोग मेरे पास आते हैं और अलग-अलग कमियों की बातें करते हैं। कोई कहता है—देश की आर्थिक दशा गिर गई है, कुछ कहते हैं—हमारी शिक्षा प्रणाली दूषित हैं, कई कहते हैं—हम बहुत काल तक परतन्त्र रहे हैं, इसलिये अब तक स्वतन्त्रता का दिमाग में उभार नहीं आया और इसीलिये हमारे कार्यकलाप विकसित नहीं होते।

पर मैं तो मानता हूं कि सबसे बड़ी कमी नैतिकता की है। इसकी कमी जब तक दूर नहीं होगी, तब तक अन्य वस्तुओं की पूर्णता भी अपूर्ण ही रहेगी। हमने इसी कमी को पूरा करने के लिये एक आन्दोलन चलाया है। उसमें हमने वे व्रत रखे हैं, जो हर एक वर्ग के दूषणों को खदेड निकालें। क्या आपने उसका साहित्य पढ़ा है ?

मन्त्री—हां, उसका विशेष साहित्य तो नहीं, पर नियम अवश्य सरसरी दृष्टि से पढे हैं और एक दिन में अणुव्रत-सेमिनार मे भी सम्मिलित हुआ था। आपने यह काम शुरू करके अच्छा काम किया है। मैं समझता हूं गांधी जी के बाद में आपने ही इस प्रकार नैतिक काम की ओर तवज्जह दी है। अन्य आन्दोलन तो बहुत से दलो द्वारा चल रहे हैं पर आचार-विशोधन के क्षेत्र मे किसी और तरफ से कोई कदम नहीं था। जो कदम आपने उठाया है, वह देश के लिये अत्यन्त जरूरी है।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक श्री दुर्गादास के साथ

चरित्र निर्माण और पत्रकार

२१ दिसम्बर १९५६ को प्रातःकाल सब्जीमण्डी में दिल्ली के प्रमुख पत्र हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक श्री दुर्गादास जी ने आचार्य-श्री के दर्शन किये।

उन्होंने कहा—मुझे आपके दर्शन करने का पहले भी अवसर मिला था। मुझे पचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में भोपाल के मुख्यमन्त्री ने आमन्त्रित किया था। मैं जब उज्जैन में आपके सम्पर्क में आया था तब मैं भी उनके साथ था। वैसे मुझे नैतिक विषयों में रस है। जब जब कभी मुझे ऐसे अवसर मिलते हैं मैं लाभ उठा ही लेता हूं। आपके अणुव्रत आन्दोलन के विषय गांधी जी के "रामराज्य" के निकट हैं। उसमें भी तो यही है कि "सबके प्रति समवृत्ति रहे, सदाचार का प्रसार हो, लोग अनैतिक न रहें" और यही आपका कहना है।

आचार्य श्री ने कहा—आप लोगों को भी केवल राजनीति में ही नहीं, नैतिक और चरित्रनिर्माण मूलक अन्य विषयों में भी भाग लेना चाहिये। मैं देखता हूं कि पत्रकार राजनीतिक विषय में जितना रस लेते हैं उसके अनुरूप अन्य विषयों को उतना यथाविधि सहयोग नहीं मिलता। उनको चाहिये कि वे विशुद्ध चरित्रात्मक विषयों को भी बल दें।

दुर्गा०—मुझे क्षमा करें इस विषय में कुछ खेद है। सामान्यतया तो पत्रकार अपने इस कर्तव्य को निभा रहे हैं। पर पूर्ण रूप से इसमें कुछ

जाना, इसमें ही अपना दिमाग लगाना और इसका ही अपने इर्द-गिर्द वातावरण रखना और इस भार को वद्धलक्ष्य अपने कधो पर ले लेना मुश्किल है, क्योकि यह ५० मन का पत्थर है। कोई भी इसे उठाने के लिये तैयार नहीं। इसे उठाने वाला नीचे दब जाता है। आज जो नेता इसके विषय मे बोलते हैं, वह भी एक नीति है। उन्हीं नेताओं और अधिकारियो के आचरणो की जब चर्चा की जाती है और उनकी ओर अगुली उठाई जाती है तब उनकी जबान बन्द कर दी जाती है और अँगुलियां काटने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में आन्दोलन को कोई भी पत्र अपनी नीति नहीं बना सकता।

मैं समझता हूँ, यह काम तब तक जोर नहीं पकडेगा, जब तक आप ऊपर के व्यक्तियो को सम्मिलित न कर लें। हमारे मन्त्री, संसदसदस्य, विधान सभाओं के सदस्य और अधिकारी लोग इसे अपना लेते हैं तो समझना चाहिये कि एक विशिष्ट लौ जल पडेगी और वह आगे बढ़ती जायेगी। हमारी भारतीय संस्कृति विषम मार्ग से गुजर रही है। यदि उसको बचा न लिया गया, तो आगामी दस वर्षो मे उसका अवसान हो जायगा। इन वर्षो मे उसे उभार मिल गया तो उसमे ताजा खून समा जायगा और नया जीवन मिल जायगा। अब यह आप लोगो पर निर्भर है कि आप उसकी रक्षा कर पाते हैं या नहीं।

आ०—मैं तो ऐसा नहीं मानता। इन दिनो मे जिन व्यक्तियों से भेंट हुई, उन सबने इसकी सफलता की कामना की है। राष्ट्रपति भवन मे जो आयोजन हुआ था, उसमे राष्ट्रपति ने स्वय कहा था—मैं चाहता हूँ कि अणुव्रत-आन्दोलन देश मे फले-फूले और जनता के चरित्र का विकास करे। प्रधानमन्त्री नेहरू जी से भी मेरी ५० मिनट तक बहुत खुलकर बातचीत हुई है। बात चीत पहले भी हुई थी। पर इस बार जिस निःसकोच और स्पष्ट भाव से बातचीत हुई वैसे पहले नहीं हुई थी। बातचीत अनेक विषयों पर हुई। मुझसे उन्होंने यह भी पूछा कि आप भारत साधु समाज मे सम्मिलित नहीं हुए? मैंने कहा—नहीं, हमारा

जाना, इसमें ही अपना दिमाग लगाना और इसका ही अपने इर्द-गिर्द वातावरण रखना और इस भार को बद्धलक्ष्य अपने कंधों पर ले लेना मुश्किल है, क्योंकि यह ५० मन का पत्थर है। कोई भी इसे उठाने के लिये तैयार नहीं। इसे उठाने वाला नीचे दव जाता है। आज जो नेता इसके विषय मे बोलते हैं, वह भी एक नीति है। उन्हीं नेताओं और अधिकारियों के आचरणों की जब चर्चा की जाती है और उनकी ओर अंगुली उठाई जाती है तब उनकी जबान बन्द कर दी जाती है और अंगुलियाँ काटने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसी परिस्थिति मे आन्दोलन को कोई भी पत्र अपनी नीति नहीं बना सकता।

मैं समझता हूं, यह काम तब तक जोर नहीं पकडेगा, जब तक आप ऊपर के व्यक्तियों को सम्मिलित न कर लें। हमारे मन्त्री, संसदसदस्य, विधान सभाओं के सदस्य और अधिकारी लोग इसे अपना लेते हैं तो समझना चाहिये कि एक विशिष्ट लौ जल पडेगी और वह आगे बढती जायेगी। हमारी भारतीय संस्कृति विषम मार्ग से गुजर रही है। यदि उसको बचा न लिया गया, तो आगामी दस वर्षो मे उसका अवसान हो जायगा। इन वर्षो मे उसे उभार मिल गया तो उसमें ताजा खून समा जायगा और नया जीवन मिल जायगा। अब यह आप लोगों पर निर्भर है कि आप उसकी रक्षा कर पाते हैं या नहीं।

आ०—मैं तो ऐसा नहीं मानता। इन दिनो मे जिन व्यक्तियों से भेंट हुई, उन सबने इसकी सफलता की कामना की है। राष्ट्रपति भवन मे जो आयोजन हुआ था, उसमे राष्ट्रपति ने स्वय कहा था—मैं चाहता हूं कि अणुव्रत-आन्दोलन देश मे फले-फूले और जनता के चरित्र का विकास करे। प्रधानमन्त्री नेहरू जी से भी मेरी ५० मिनट तक बहुत खुलकर बातचीत हुई है। बात चीत पहले भी हुई थी। पर इस बार जिस निःसकोच और स्पष्ट भाव से बातचीत हुई वैसे पहले नहीं हुई थी। बातचीत अनेक विषयो पर हुई। मुझसे उन्होंने यह भी पूछा कि आप भारत साधु समाज मे सम्मिलित नहीं हुए ? मैंने कहा—नहीं, हमारा

और उनका मेल कैसे सम्भव हो? उन्होंने अभी तक मठों का मोह नहीं छोड़ा है जैसी से उनका पाखण्ड पूरी तरह है। फिर हम अकिंचनों का उनसे क्या लगाव? पंडित जी ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया और कहा—आपको उनमें सम्मिलित होने की कोई आवश्यकता नहीं। मैंने उनसे कहा—देखिये पंडित जी विदेशों में भारत का कितना सम्मान है, कितनी ख्याति बढ़ रही है? विदेशी लोग भारत को एक आदर्श राष्ट्र मानते हैं परन्तु आन्तरिक स्थिति कितनी बिगड़ी हुई है कुछ व्यक्तियों को छोड़ दें तो भारत का नागरिक खोखला नजर आता है। आपकी सरकार पर भी जो प्रभाव है वह भी उन व्यक्तियों के व्यक्तित्व और नैतिक जीवन के कारण है। अन्यथा आपकी सरकार का जो धरातल है वह आपके सामने है। क्या आप आशा करते हैं कि राष्ट्र की नींव इस धरातल पर मजबूत रह सकेगी? आप इस विषय में क्यों नहीं सोचते और चरित्र-निर्माण के कामों को प्रोत्साहन क्यों नहीं देते?'

मैंने उनसे यह भी कहा कि—आज जो राष्ट्रों में आपसी सम्बन्ध बनाने की दौड़ लग रही है यह भी एक नीति के अतिरिक्त कुछ नहीं और उसका स्वरूप पता तब चलता है जब किसी बात के कारण आपस में तनाव बढ़ता है। इसलिये हमने यह सोचा है कि वर्ष में एक दिन ऐसा मनाया जाय जिस दिन अपनी भूलों के लिये शुद्ध व पवित्र हृदय से व्यक्ति व्यक्ति परस्पर क्षमा मांगें और दूसरों को क्षमा करें। यह रिवाज के तौर पर नहीं हृदय से होना चाहिये। यदि कुछ ऐसा हो तो आप का क्या विचार है?'

नेहरू जी ने कहा—यह काम तो बहुत सुन्दर है पर मैं इसे नहीं कर सकता। अगर इसको शुरू किया जाय तो मैं इसके बारे में कुछ कह सकता हूं और कुछ कर भी सकता हूं। इसी प्रकार इस बारे में उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्, राजर्षि टंडन, ढेबर भाई, मोरार जी भाई आदि से भी बातचीत हुई। सभी ने इस कार्यक्रम को पसन्द किया

श्रौर कुछ सुझाव भी दिये ।

इस प्रकार सरकार की टक्कर का खतरा तो स्वत दूर हो जाता है श्रौर वैसे हमारा यह दृष्टिकोण भी नहीं है कि कोई पत्र इसे श्रपनी नीति बनाये । कोई उचित श्रौर उपयोगी चीज होगी तो पत्र उसे स्वत श्रपनी नीति बना लेंगे । मैं श्रापको तो इसलिए कहता हूँ, कि श्राप चिन्तक हैं श्रौर चिन्तक के दिमाग को मैं काम मे लेना चाहता हूँ । मन्त्रियों श्रौर श्रधिकारियों को मैं उतना महत्त्व नहीं देता, क्योंकि वे चुनाव के माध्यम से श्रपने पदों पर श्राते हैं । श्राज हैं श्रौर कल नहीं । पर विचारक सदा विचारक रहता है । श्रत मैं उनको विशेष महत्त्व देता हूँ ।

दुर्गा०—ठीक है, मैं तो श्रापकी सेवा मे प्रस्तुत हूँ श्रौर मैं मध्यस्थ भावना वाला हूँ । मुझे कुछ कड़ा लिख देने मे भी भय नहीं है ।

लगभग श्राधे घटे तक बातचीत हुई । प्रवचन का समय हो गया था । श्राचार्य प्रवर प्रवचन करने के लिये पधार गये ।

मथन (७८)

राष्ट्रकवि के साथ

२१ दिसबर १९५६ को रात्रि मे राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने श्रपने सहोदर सियारामशरण गुप्त व श्रपने परिवार के श्रन्य सदस्यों सहित श्राचार्य-श्री के दर्शन किये ।

श्रौपचारिक वार्तालाप के बाद जैन तत्वों पर चर्चा हुई । उन्होंने जिज्ञासु भाव से श्रनेक श्राशकायें प्रकट कीं । श्राचार्य श्री ने उनका उचित समाधान किया । स्याद्वाद तथा नय-बाद श्रादि पर भी लम्बी देर तक

बातचीत होती रही। उन्होंने कहा—जैसा कि मैंने पहले भी आपके समक्ष निवेदन किया था—मेरी यह हार्दिक भावना है कि भगवान् महावीर पर कुछ कवितायें लिखूं। यह मेरे जीवन की अन्तिम साध है। किन्तु मेरे सामने एक समस्या है कि उनके जीवन सम्बन्धी विविध विचार भिन्न भिन्न तरीकों से माने जाते हैं। उनमें एकरूपता नहीं है। कौन सही है और कौन गलत, यह मैं कैसे निर्णय करूं। यदि आप मेरा पथ-प्रदर्शन करें तो मैं अपनी भावना पूर्ण कर सकूंगा। इस विषय में विस्तृत वार्तालाप फिर कभी करूंगा।

वार्तालाप कवि-गोष्ठी के रूप में परिणत हो गया। कई सन्तों ने अपनी अपनी रचनायें सुनाईं। राष्ट्रकवि ने भी अपनी कवितायें सुनाईं। रचना सरल व सुगम थी। श्री सियारामशरण गुप्त ने भी "कामेमि सव्वे जीवे" का हिन्दी पद्यानुवाद सुनाया। उन्होंने सम्पूर्ण गीता का हिन्दी में पद्यानुवाद किया है और कहा कि जैनागमों के कई स्थलों को वे हिन्दी के पद्यों में रखना चाहते हैं। राष्ट्रकवि ने यह भी कहा कि वे अणुव्रतों के बारे में कवितायें लिखेंगे।

भारत सेवक समाज के मन्त्री का आगमन

भारत सेवक समाज के मन्त्री श्री वाडीवाला श्री "कमीशिया भवन में" आचार्य-श्री के दर्शन करने आये। आचार्य श्री ने उनको अणुव्रत-आन्दोलन की गतिविधि से परिचित कराया तथा अभी अभी चले अणुव्रत सप्ताह की सफलता से भी अवगत कराया। मैत्री-दिवस के बारे में विस्तृत जानकारी दी और कहा—मैंने यह विचार और भी कई जगह रखा है। सभी जगह इसका सत्कार हुआ है। इस बार हम इसको प्रयोग के रूप में ही क्रियान्वित करने जा रहे हैं।

वाडीवाला ने कहा—हां यह योजना सुन्दर है और इस प्रकार की बन्धुत्व-भावना संसार में फैले तो युद्ध और अशान्ति का वातावरण दूर हो सकता है। मेरा इसमें एक सुझाव भी है कि यह दिन महात्मा गांधी

का निधन दिवस रखा जाय तो और भी महत्व की भावना से जुड जायेगा और विशाल पैमाने पर देश-विदेश मे मनाया जायेगा।

चांदीवाला ने भारत सेवक समाज के कार्यकर्ताओं की सभा मे आचार्य श्री को प्रवचन करने का निमन्त्रण दिया।

मन्थन (२६)

नैतिकता के एक प्रचारक के साथ

क्रमिक विकास का महत्व

२८ दिसंबर १९५६ को प्रातःकालीन प्रवचन के बाद कई व्यक्ति आचार्य-श्री से बातचीत करने आये। तेरापथ व अणुव्रतों के बारे मे विस्तृत बातचीत हुई। एक व्यक्ति श्री मोहन शकलानी आचार्य श्री के पास आया और उसने कहा—महाराज ! प्रारम्भ से ही नैतिक विषयों मे मेरी रुचि रही है। मैं पहले थियोसॉफिकल सोसाइटी में प्रचारक था। अब मैं चाहता हूँ कि अणुव्रतों के प्रचार में अपना समय लगाऊँ। आदोलन के प्रति मेरा आकर्षण इसलिये हुआ कि यह क्रमिक विकास को महत्व देता है। व्यक्ति एक साथ ऊँचा नहीं चढ़ सकता। वह धीरे-धीरे प्रगति कर सकता है। देखिये, अग्रेजी मे मैंने अणुव्रत-आदोलन के नियम-उपनियमो को रखने का प्रयास किया है (कई पत्र दिखाये)। आचार्य प्रवर ने उन्हें विशेष जानकारी देते हुये कहा—आपके विचार अच्छे हैं। नैतिकता का प्रचार वास्तविक प्रचार है। निष्काम सेवा करने का यह अच्छा मौका है।

वे कई दिन तक आचार्य-श्री के पास आते रहे और जानकारी प्राप्त करते रहे।

केन्द्रीय श्रम उपमंत्री के साथ

काफ़िर (नास्तिक) कौन

२९ सितंबर १९५६ को सायंकाल प्रतिक्रमण के समय श्री आबिद अली दर्शनार्थ आये। आचार्य प्रवर ने कहा—आप ठीक समय पर पहुँचे हैं। हम लोग अभी प्रतिक्रमण करके निवृत्त हुये हैं।

श्री आबिद अली—प्रतिक्रमण कैसे करते हैं?

आ०—प्रतिक्रमण के छः अंग हैं—(१) सबसे पहले पापों से निवृत्ति करना, (२) वीतराग की स्तुति करना, (३) गुरु-महात्माओं को वन्दन करना (४) प्रतिक्रमण करना (५) शारीरिक स्थूल स्पन्दनों को रोक कर समाधि पूर्वक चिन्तन करना, (६) उसके बाद प्रत्याख्यान किया जाता है। आपके जैसे नमाज पढ़ी जाती है, वैसे ही हमारे यहाँ प्रातःकाल और सायंकाल दोनों वक्त किया जाता है। आपके नमाज की क्या विधि है?

श्री आबिद अली—हमारा नमाज एक प्रकार का व्यायाम है जिसमें शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों प्रक्रियाएं समाविष्ट हैं। पहले हम सैनिक की तरह तनकर खड़े हो जाते हैं। फिर दोनों कानों में अंगुली डालकर इस प्रकार झुकते हैं और ऐसे बैठते हैं (सारी प्रक्रिया करके बताई) उसके बाद इस प्रकार उठते हैं। इसमें पैर से लेकर सिर तक का सुन्दर व्यायाम थोड़े ही समय में हो जाता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक पहलू भी इससे सुन्दर ढंग से सधता है। दोनों कानों को बन्द करने का अर्थ है कि हमें कोई बाहरी आवाज न सुनाई दे। अल्लाह की स्मृति में ही अपने को केन्द्रित करना चाहते हैं। घुटनों के बल पर बैठकर इस प्रकार सिर धरती पर लगाने का भी यही मतलब है कि हम

उस सर्व शक्तिमान अल्लाह के आगे सर्वथा नतमस्तक हैं—नमाज की प्रार्थना में सकीर्णता नहीं, अत्यन्त उदारता का परिचय है। उसमे ऐसा नहीं कहा गया है कि "हे मुसलमानों के पालक" प्रत्युत कहा गया है—"हे सबको पालने वाले अल्लाह मुझे सन्मार्ग बता, खराब रास्ते से बचा।"

आ०—देश मे हमने एक रचनात्मक काम चालू कर रखा है। उसका सम्बन्ध सभी वर्गों से है उसको हमने किसी जाति या धर्म विशेष से सम्बद्ध नहीं किया है। मानवता के सामान्य नियम उसमे दिये गये हैं जो सभी धर्मो के मूल हैं। आज परस्पर एक दूसरे के प्रति कटुता बढ़ती जा रही है। हिन्दू-मुस्लिम के बीच दरारे पड गई हैं। क्या ये दरारें हिंसा को प्रोत्साहन नहीं देतीं ? इन्हें पाटने के विषय में आप क्या सोचते हैं ? हम एक "मैत्री-दिवस" (अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर) मनाने की सोच रहे हैं। आपका उसमे क्या सहयोग रहेगा ?

श्री आबिद अली—जितना मैं इस विषय मे कर सकूंगा, उतना करने का प्रयास करूंगा। आपकी सेवा मे प्रस्तुत हूं।

आ०—क्या आपके कुरान मे कहीं ऐसा उल्लेख है कि हिन्दू को काफिर समझना चाहिये ?

श्री आबिद अली—हिन्दुओं को तो नहीं, पर नास्तिक को अवश्य काफिर कहा है। हमारे यहां कयामत का होना माना जाता है। जिसका अर्थ है कि जितने भी लोग मरते हैं, वे जी उठेंगे। खुदा उनको उनकी करनी के मुताबिक दण्ड देगा। उस समय लोग अपने अपने अपराधों की क्षमा के लिये खुदा से मुहम्मद से सिफारिश करायेंगे। मुहम्मद ने कहा है कि मैं उन दो व्यक्तियों की सिफारिश खुदा के आगे नहीं करूंगा—
(१) जो व्यक्ति यह कहा करता है कि ये धर्मस्थान मुसलमानों के नहीं हैं, दूसरों के धर्मस्थानों की बेइज्जती करता है और दखल देता है, और
(२) जो व्यक्ति दूसरों को "मुसलमान नहीं" कह कर तकलीफ देता है।

ये दोनों बातें हमारे सिद्धान्तों की प्रतीक हैं। धर्मों मे उदारता ही विशेष है। उसी के सहारे सब धर्म जीते हैं।

सम्पर्क (११)

हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक श्री दुर्गादास जी के साथ दूसरी बार

अणुव्रत आन्दोलन की आधार भूमि

१ सितम्बर १९५६ को रात्रि में हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक श्री दुर्गादास जी दुबारा आचार्य श्री के दर्शनार्थ आये। उन्होंने कहा—मैंने अणुव्रत आन्दोलन के विषय में विविध बातें सुनी थीं। बहुत सी जिज्ञासाएँ इस विषय में हुआ करती थीं। इस बार अच्छा हुआ कि यथेष्ट समाधान आपसे पा लिया। मैं चाहता हूँ आपके इस संगठन के इतिहास की झलक भी आपसे प्राप्त कर लूँ तथा उसके विस्तार की आधार भूमिका की भी जानकारी ले लूँ।

आचार्य श्री ने तेरापंथ का इतिहास बताते हुये कहा—"तेरापंथ का उद्भव आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व हुआ था। उद्भव का कारण था—तात्कालिक साधु समाज का आचार शैथिल्य। तेरापंथ के प्रवर्तक श्री भिक्षु स्वामी ने जिस अभिलाषा से दीक्षा ली थी, वह भावना पूरी होती दिखाई न दी।

उन्होंने जैन आगमों का विशेष मनन करने के बाद गुरुवर से निवेदन किया कि हम शास्त्रोक्त पथ से विपरीत चल रहे हैं।

गुरु ने कहा—अभी पंचम काल है। जितनी साधना हो उतनी ही अच्छी।

भिक्षु स्वामी ने कहा—जब हम घर, कुटुम्ब धन आदि सबको त्याग कर आये हैं फिर भी अपना लक्ष्य नहीं साध सके यह कैसे हो सकता है? पंचम काल का सहारा लेना तो हमारी कमजोरी है।

लम्बी चर्चा के वाद उन्होंने कहा—मैं इस से सहमत नहीं। इस प्रकार कोई सही मार्ग न निकलता देख आपने सघ से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। आचार्य श्री को यह वात अखरी और उन्होंने उनका डटकर विरोध करने की मन में ठान ली।

उन्होंने कहा—भिक्षु! तुम कहाँ जाओगे? मैं तुम्हारे पीछे श्रावकों को लगा दूंगा।

भिक्षु स्वामी ने सस्मित स्वर मे कहा—यदि आप गाँव-गाँव मे मेरे पीछे श्रावकों को लगा देते हैं तो मुझे कम परिश्रम करना पड़ेगा और लोगो मे मैं अपनी विचार धारा शीघ्र फैला सकूँगा।

आचार्य भिक्षु ने पहला प्रहार उन चीजों पर किया, जो कि आचार शिथिलता के कारण पनप रही थीं। उन्होंने कहा—

१—साधुओं को स्थानक में नहीं रहना चाहिये।

२—साधु सघ के एक ही आचार्य हों।

३—आचार्य के अतिरिक्त कोई भी अपना शिष्य न वनाये।

४—मडनात्मक नीति रहे, खडनात्मक नहीं।

आचार्य भिक्षु का दृष्टिकोण था कि साधुओ के निवास के लिये साधुओं की प्रेरणा से कोई मकान नहीं वनना चाहिये। साधुओं को तो उसमे ठहरना भी नहीं चाहिये। क्योंकि साधु वनने वाला व्यक्ति अपने एक घर को छोडकर आता है और उसके लिये जगह-जगह स्थानक वनने लगें, तो उसकी माया ममता घटी कहाँ, प्रत्युत वढ़ी है। वह गृहस्थों से भी कहीं अधिक वजनदार ममतावान् वन गया क्योकि उसके एक घर के वदले अनेक घर हो जाते हैं। इसीलिये आपने कहा—साधुओ के लिये कहीं कोई स्थानक न हो। जहाँ कहीं भी साधु जायें, वहाँ गृहस्थों से अपने आचारानुकूल स्थान माँग कर विश्राम करे।

दूसरी वात थी—सघ में एक ही आचार्य हो। अनेक आचार्य होने से सघ मे एक परपरा नहीं रह सकती और मनुष्य स्वभाव की सहज कमजोरी के कारण शिष्य, पुस्तक, श्रावक आदि को लेकर प्रतिद्वन्द्विता भी

हो सकती है। पर जहाँ एक आचार्य होता है वहाँ इन दोनों की संभावना नहीं रहती।

तीसरी बात थी—आचार्य ही शिष्य बनावें इससे एक बहुत बड़ा खतरा टल गया, क्योंकि जब प्रत्येक साधु शिष्य बनाने के फेर में पड़ जाते हैं तो फिर कोई मर्यादा नहीं रहती और न कोई योग्य-अयोग्य का विवेक ही रहता है। फिर तो यही ख्याल रहता है कि मेरे अधिक से अधिक शिष्य कैसे हों ? और मैं अमुक साधु को इस विषय में कैसे पछाड़ दूं। माता पिता की आज्ञा बिना मूंड लेना फुसलाकर या प्रलोभन देकर बहका लेना आदि अनेक दोष केवल शिष्य वृद्धि के ख्याल से आ जाते हैं। उनका निराकरण करने के लिये यह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

चौथी बात है—मण्डनात्मक नीति रखना और खण्डन नहीं करना। अपने जो सिद्धान्त हैं उनकी प्ररूपणा करना, उनके उपयोग के बारे में बताना तथा उनके प्रचार के लिये भूमिका तैयार करना। यह तो ठीक, पर दूसरों का खण्डन करना और व्यक्तिगत आक्षेप करना इससे वे सहमत नहीं थे क्योंकि किसी की आलोचना करके या निंदा करके उसको सुधारा नहीं जा सकता प्रत्युत उसे वैरी ही बनाया जा सकता है और न कोई दूसरे की कटु आलोचना करके बड़ा ही बन सकता है। इससे तो उसकी मनोवृत्ति दूषित ही होती है।

यही कारण है कि आज तक तेरापन्थ की तरफ से किसी की व्यक्तिगत कटु आलोचना नहीं की गई जबकि तेरापंथ के विषय में अनेकों पुस्तकें और पेम्फलेट आदि विपक्ष की केवल विरोध में ही लिखे गये हैं।

आचार्य भिक्षु ने इन नियमों के आधार पर संघ को अत्यन्त व्यवस्थित तथा प्राणान्वित बनाया।

यद्यपि तेरापन्थ का विरोध अब तक होता रहा है आचार्य भिक्षु के समय में तो भोजन-पानी स्थान आदि मिलने में भी कठिनाई होती थी। आज भी विरोध की समाप्ति नहीं हुई है। किन्तु हमारी तरफ से सदा यही रहा कि "जो हमारा हो विरोध हम उसे समझें विनोद"।

यही कारण है कि आज तक तेरापथ सघ सबसे समन्वय करता हुआ दिनो दिन प्रगति पर है।

तेरापथ के अतिरिक्त और भी अनेकों विषयों पर वार्तालाप हुआ।

सन्धा (३२)

राष्ट्रपति के साथ तीसरी बार

जैन आगम कोष का महत्वपूर्ण निर्माण

४ दिसम्बर १९५६ को प्रात आचार्य जी राष्ट्रपति भवन पधारे, जहाँ राष्ट्रपति जी के साथ लगभग सवा घटे तक तेरापथ सघ मे चल रही साहित्य साधना, ग्रन्थ निर्माण, विद्या प्रसार तथा अणुव्रत आन्दोलन के बहुमुखी कार्यक्रमो पर अत्यन्त आत्मीय रूप मे विचार विमर्श चला।

वार्तालाप के बीच आचार्य श्री ने बताया कि जैन आगमो पर तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक एव समीक्षात्मक अनुशीलन के लिये पर्याप्त तथा व्यवस्थित सामग्री उपलब्ध हो सके, इस दृष्टि से आगम कोष का विशाल साहित्यिक कार्य हमारे यहाँ चल रहा है।

राष्ट्रपति जी ने कोष के कार्य को ब्योरेवार समझने मे बड़ी दिलचस्पी ली। आचार्य श्री ने कोष का प्रकार, प्रणाली, सचयन विधि आदि से उन्हें अवगत कराया। साथ ही कहा—

जैन वाङ्मय विभिन्न विषयों के अलभ्य शब्दों का विशाल आगार है। खेद इसी बात का है कि जितना अपेक्षित था, उसमे मन्थन और अन्वेषण नहीं हो पाया, अन्यथा सस्कृत एव हिन्दी जगत को उसके शब्द कोष की श्रीवृद्धि करने वाले उपयुक्त शब्द मिल पाते। उदाहरणार्थ—

जैसे मैटर (Matter) के लिये पुद्गल जितना तात्पर्य बोधकता के लिहाज से उपयुक्त है, उतना 'भूत' या कोई दूसरा शब्द नहीं है पर इस ओर उपेक्षा रहने से यह प्रचलित नहीं हो पाया।

राष्ट्रपति जी ने आचार्य श्री के नेतृत्व में निर्मित हो रहे आगम शोध के कार्य के लिये हर्ष प्रगट करते हुए कहा—यह साहित्य का बहुत बड़ा काम हो रहा है जिसकी आज आवश्यकता है।

जैन वाङ्मय में विभिन्न विषयों के उपयुक्त अर्थबोधक ऐसे-ऐसे शब्द मिल सकते हैं यह जानकर राष्ट्रपति जी को बहुत प्रसन्नता हुई।

तत्त्वज्ञान दर्शन काव्य गद्य आदि विविध साहित्यिक प्रवृत्तियों का सिंहावलोकन करते हुए आचार्य प्रवर ने जैन सिद्धान्त दीपिका तथा विजय यात्रा आदि की भी चर्चा की।

राष्ट्रपति जी की उत्सुकता एवं जिज्ञासा देख आचार्य श्री ने उन्हें जैन सिद्धान्त दीपिका के एक प्रकरण का कुछ हिस्सा सुनाया। मुनि श्री नथमल जी ने विजय यात्रा के दो पद्य-गीत उन्हें बताये।

राष्ट्रपति जी ने बड़ी अभिरुचि से यह सब सुना और इन साहित्यिक कृतियों के लिए बधाई दी।

आचार्य श्री ने बातचीत के बीच उन्हें यह भी बताया कि दर्शन और विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन कई साधु कर रहे हैं। जैन दर्शन के स्याद्वाद और आइन्स्टीन की थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी (Theory of Relativ ty) परमाणु और पुद्गल आदि तुलनात्मक शोधपूर्ण सामग्री भी तैयार की गई है। आचार्य श्री ने मुनि श्री नगराज जी की ओर संकेत किया। मुनि श्री नगराज जी ने अन्य विषयों पर अपने द्वारा लिखे गये शोध कार्यों से राष्ट्रपति जी को विस्तृततया अवगत कराया।

राष्ट्रपति जी बोले—आज विज्ञान का बहुत अच्छा कार्य हो रहा है। इसमें एक बात और मैं कहना चाहूंगा—परमाणु आदि विषयों में विज्ञान जहाँ तक पहुंचा है, वहाँ तक तो प्राचीन वाङ्मय के आधार पर सिद्ध करते ही हैं। उसके साथ-साथ परमाणु आदि विवेचनीय विषयों में

विज्ञान द्वारा प्राप्त विवरण के अतिरिक्त और जो अधिक तथा विस्तृत बातें प्राचीन वाङ्मय मे प्राप्त हों उन्हें भी प्रकट किया जाये तो आगे चल कर विज्ञान जब उन तथ्यों तक पहुँचेगा, तब प्राचीन वाङ्मय का और अधिक महत्त्व वैज्ञानिकों और विद्वानों की दृष्टि में आयेगा।

मुनि श्री नगराज जी ने कहा—इस दृष्टि से भी गवेषणा कार्य किया जा रहा है। जैसे विज्ञान की दृष्टि से अंतिम अविभाज्य अणु इलेक्ट्रन (Electron) माना गया है, जैन आगमो की दृष्टि से वह अन्तिम अणु नहीं है, वह अनन्त अणुओं के सघात से बना स्कध है। इस दृष्टि पर विशेष ध्यान दिया जायगा।

राष्ट्रपति जी जिज्ञासापूर्ण उत्सुकता से आचार्य श्री से पूछने लगे—जो रिसर्च स्कॉलर साहित्य शोध का इस प्रकार का कार्य करते हैं, वे दिन रात लाइब्रेरियों में बैठे रहते हैं, वहाँ इस काम मे लगे रहते हैं, पुस्तकों की सुविधा उन्हें वहाँ रहती है, पर आप लोग जो पर्यटन करते रहते हैं, यह काम किस प्रकार करते हैं ?

आचार्य श्री ने राष्ट्रपति जी को एक पोथी खोल कर दिखाई, जिसमे विभिन्न विषयों के पचासों हस्तलिखित ग्रन्थ थे। आचार्य श्री ने कहा—साधु चर्या के नियमानुसार हम अपनी कोई भी वस्तु गृहस्थों के पास नहीं छोड सकते, क्योंकि प्रत्येक चीज का प्रतिलेखन जो करना होता है। इसलिये अपनी प्रत्येक वस्तु अपने साथ अपने कधो पर लिये चलते हैं। प्रत्येक साधु ऐसी दो पोथियाँ लिये चलता है।

राष्ट्रपति जी कहने लगे—यह तो आपकी चलती फिरती लाइब्रेरी है। वास्तव में बहुत बडा काम आप कर रहे हैं। पर्यटन प्रचार, आदि और सब काम करते हुए साहित्य का इतना बडा काम आपके यहाँ हो रहा है, यह बहुत खुशी की बात है।

सूक्ष्माक्षरों के पत्र को राष्ट्रपति जी ने बडी अभिरुचि के साथ देखा। यों स्पष्ट नहीं दिखाई देता था, इसलिए उन्होंने अपने यहाँ का एक एक आधा फुट लम्बा आई ग्लास मगाया और उससे पत्र को देखा। बडा

उद्घाटन राष्ट्रपति जी ने किया था। हम सोचते हैं कि यह दिन अन्तर्राष्ट्रीय रूप से मनाया जाए ताकि आपस के सबंधो मे पवित्रता पैदा हो सके।

राजदूत—मैत्री की भावना को उत्तेजित करने के क्या उपाय हैं?

आचार्य श्री—इसका एक मात्र उपाय है 'फारगेट ऐंड फारगिव' (भुला दो और क्षमा करो)—के सिद्धान्त को जीवन मे उतारना। हम औरो की भूलो को भुला दें तथा अपनी भूलों के लिये औरों से क्षमा माँगें। यदि यह भावना बलवती बन जाय तो काफी तनाव मिट सकते हैं। एक दिन की भावना का प्रसार भी काफी काम करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। हम इसको अन्तर्राष्ट्रीय रूप देना चाहते हैं। आप बताइये कि एक दिन कौनसा रखा जाए, जो सभी देशों के लिये अनुकूल हो सके।

राजदूत—कोई भी एक दिन निर्धारित किया जा सकता है पर मेरे विचार से दूसरों के मतों का विशिष्ट दिन नहीं होना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से उसमें साम्प्रदायिकता की बू आजाती है। स्मृति की दृष्टि से एक जनवरी सर्व श्रेष्ठ है।

आचार्य श्री—अभी यूनेस्को के डायरेक्टर जनरल डा० लूथर इवेन्स ने भी इस विषय में अपनी अभिरुचि दिखाई और उन्होंने कहा था कि वे इस पर विचार करेंगे। हम चाहते थे कि समस्त विदेशी राजदूतों व अन्य अधिकारियों के बीच हम इस भावना को रखें और इसकी महत्ता से उन्हें परिचित करायें। आप अपने इष्टमित्रो को इसकी पूर्ण जानकारी देने का प्रयत्न करें।

राजदूत—हाँ, जो लोग इसमे रुचि रखते हैं तथा जिन पर मेरा विश्वास है, उनसे मैं अवश्य कहूँगा अपनी निजी हैसियत से अपने देश मे इसका प्रसार करने का प्रयत्न करूँगा।

समय थोडा था। उन्हें जल्दी जाना था। उन्हें कलात्मक चीजें तथा सूक्ष्म लेखन-पत्र दिखाया गया, जिन्हें उन्होंने काफी गौर से देखा और कला की बारीकियों से युक्त इन चीजों को देख वे बडे प्रसन्न हुए।

परिशिष्ट १

१

बिड़लाजी से वार्तालाप

सेठ जुगलकिशोर जी आचार्य श्री से बातचीत करने आये। अनेक धार्मिक, दार्शनिक और अनुभूत विषयों पर बातें हुईं।

उन्होंने आचार्य श्री से पूछा—क्या आपको लगता है कि भारत का उज्ज्वल भविष्य आने वाला है?

आचार्य श्री ने दृढ़ता के साथ कहा—हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि आने वाले भारत के दिन उजले होंगे। अपने दिल्ली प्रवास के समय राष्ट्रपति और पण्डित नेहरू से लेकर अनेक मामूली मजदूरों से मिलकर मैं उनके मन में ऐसा अनुभव करता हूँ कि वे सभी नैतिकता के प्रति निष्ठा की भावना व्यक्त करते हैं। अगर यह भावना कुछ स्थायी हो सकी और

हम भी लोगों को अपना सहयोग देते रहे तो ताज्जुब नहीं है कि भारत एक नई करवट ले ले। पंडित जी से भी इधर दो तीन बार मिलने से मुझे अंतर लगता है। वे उत्तरोत्तर गम्भीर बनते जा रहे हैं। जैन साधुओं के आचार-व्यवहार को जानकर बिडला जी कहने लगे—मुझे विश्वास है कि जैनी साधुओं मे ६० प्रतिशत साधक हैं। पर हमारे साधुओं की स्थिति इससे उल्टी है, हालांकि हिन्दुओं मे भी कोई साधक नहीं है, ऐसी बात नहीं है। पर उनमे कम मिलेंगे। उनकी सख्या १० प्रतिशत से अधिक नहीं होगी, ६० प्रतिशत ढोंगी हैं।

मैं चाहता हूँ, दिल्ली को आप अपना कार्य केन्द्र बनायें। यहाँ से सारे भारतवर्ष मे आध्यात्मिकता की चेतना फूंकें।

पंडित जी से आप दो-तीन बार मिले, यह बड़े हर्ष की बात है। वे तो ऐसे आदमी हैं, जो धम की बात सुनते ही चिढ़ जाते हैं। आप सभव हो तो उनसे और मिलिये। अगर आपने एक जवाहरलाल जी को आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर कर दिया तो बहुत बड़ा काम कर लेंगे। इस प्रकार यह वार्ता-प्रसग बहुत सुन्दर रहा।

२

आटोग्राफ का रूप

आचार्य श्री विद्यार्थियों मे प्रवचन कर बाहर आ रहे थे। कई विद्यार्थी आचार्य श्री का आटोग्राफ लेने को उत्सुक खड़े थे। पेन्सिल और किताब देते हुये विद्यार्थियो ने कहा—आप इसमे अपना हस्ताक्षर कर दीजिये।

आचार्य श्री ने मुस्कराते हुये कहा—देखो बच्चो! मैंने जो बातें आज कही हैं, उन्हें जीवन मे उतारने का प्रयास करो। यही हमारा सच्चा आटोग्राफ होगा। ऐसे हस्ताक्षरों से क्या होगा। बच्चों ने देखा इस छोटी सी बात के पीछे आचार्य जी का कैसा गूढ़ उपदेश है।

नहीं बता सके। मुझे यह देखकर चिन्ता होती है कि संस्कृत के क्षेत्र में चिन्तन के स्थान पर ह्रास होता जा रहा है। यदि यही क्रम चलता रहा तो भविष्य की स्थिति और भी अधिक चिन्तात्मक होगी। मुझे इस पर दुःख है। इसके लिए तुम को दोषी कैसे ठहराऊँ? मैं समझता हूँ इसमें मेरी ही गलती है। अतः मुझे अपना आत्म-शोधन करना चाहिये। और इसके लिये मुझे एक उपवास करना पड़ेगा। सब अवाक् रह गये। सबने निवेदन भी किया कि यह तो हमारी ही गलती है। आप उपवास क्यों करें? हम अपनी कमजोरी सुधारने की कोशिश करेंगे। पर आचार्य श्री ने उसे स्वीकार नहीं किया।

६

एक घटना

नारायण गाँव की बात है। एक सर्वथा अपरिचित व्यक्ति आचार्य श्री के पास आया और अपनी बात सुनाने लगा—आचार्य श्री! आज से सात दिन पहले मेरे मन में बहुत बेचैनी थी। रास्ता नहीं मिल रहा था। रात को कुछ भारी मन से सो गया। मुझे योग की तरफ बचपन से ही रुचि रही है और उसकी खोज में मैं बहुत से योगियों से भी मिला था। पर मुझे पूरा सन्तोष नहीं हुआ। यहाँ मैं सिन्ध से शरणार्थी होकर आया हूँ। घर पर मैं और मेरी माताजी के सिवाय और कोई नहीं है। माताजी को छोड़कर जंगल में जाना मुझे उचित नहीं लगा, और यहाँ घर में मेरा मन नहीं लगता था। मेरे मन में यह द्वन्द्व चल रहा था। स्वप्न में मुझे मेरे गुरु दिखाई दिये। उन्होंने मुझसे कहा—तुम चिन्ता क्यों करते हो। आज से सात दिन बाद यहाँ पर एक आचार्य आयेंगे वे तुम्हें रास्ता दिखायेंगे। उन्होंने मुझे जो आकार-प्रकार बताया वह सारा आप से मिलता है। मेरे भाग्य से आप पधार गये। आपके दर्शन से मुझे इतनी आत्म-शान्ति मिली कि उसे मैं शब्दों में नहीं बता सकता। फिर वह आचार्य श्री को प्रणाम करके चला गया।

आखिर आचार्य श्री ने जव वहां से विहार किया तो वह इतना रोया कि वह एक शब्द भी नहीं कह सका।

कुछ दिन वाद उसने आचार्य श्री को एक पत्र लिखा। उसमे अपने हृदय के भावो को उंडेल दिया।

७

पानी झर रहा था

आचार्य श्री जंगणियां गांव मे पधारे। दोपहर का समय था। पांच-चार झोंपडियों मे साधु अलग-अलग ठहरे हुये थे। लू चल रही थी। पानी भी थोडा ही मिला था। आचार्य श्री के पास मटकी (घडे) मे पानी पडा था। पास मे वैठे हुये एक साधु से कहा—पानी को व्यर्थ क्यो जाने देते हो? उसने कोशिश की। पर टपक-टपक कर चूने वाले पानी को कैसे बचाया जा सकता था। मटकी एक पट्टे पर छोटे-छोटे पत्थरों पर रखी हुई थी। उसके नीचे कल्प की टोक्सी रखने की चेष्टा की, पर वह भी नहीं हो सका, तो आचार्य श्री ने सुझाया—जहाँ पानी टपकता है, वहाँ एक कपडा रख दो। पानी कपडे मे से होकर नीचे पात्र में आ जायेगा। ऐसा ही किया गया।

शाम तक पात्र मे लगभग आधा सेर पानी भर गया। वह पानी काम में ले लिया गया।

पर पानी को काम मे लेने से भी अधिक सन्तोष इस वात का था कि इस सूक्ष्म दृष्टि से कितना पानी बचाया जा सकता है।

८

धर्म या पाप

एक ६-७ वर्ष का वच्चा दौडा-दौडा आया और आचार्य श्री से पूछने लगा—महाराज, माता-पिता की सेवा मे पाप होता है या धर्म? इतने मे एक और व्यक्ति भी कुछ वातचीत करने आये। पर एक ओर वैठ गये। आचार्य श्री ने पहले वच्चे के प्रश्न को प्रमुखता दी। कहने-

३

अध्यापक बनाम विद्यार्थी

भिवानी बालिका विद्यापीठ में प्रवचन कर आचार्य श्री आ ही रहे थे कि एक परिचित विद्यार्थी आचार्य श्री से पूछने लगा—अब आप का जाने का क्या कार्यक्रम है?

आचार्य श्री ने कहा—अब तो ४ ११ बजे प्रोफेसरों की एक सभा में प्रवचन है।

उसने हँसते हुये कहा—तब तो हम भी उसमें सम्मिलित हो सकेंगे? क्यों कि आज प्रातःकाल प्रवचन में आपने हम विद्यार्थियों को वास्तविक प्रोफेसर कहा था क्यों सही है न?

आचार्य श्री ने सस्मित उत्तर दिया—पर तब तो वह प्रोफेसरों की सभा नहीं रहेगी। फिर तो प्रोफेसर ही विद्यार्थी बन जायेंगे। तब वहाँ तुम्हारे आने का प्रश्न नहीं रहता। वह हँस कर प्रस्थान करके चल दिया।

४

पैरों में पीड़ा है क्या?

सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला गाँव के बाहर तक आचार्य श्री को विदा करने आये। रास्ते में वे बातें करते जा रहे थे। आचार्य श्री को बार-बार रुकना पड़ता था। —१ बार ऐसा हुआ।

बिड़लाजी ने सोचा—आचार्य श्री के पैरों में पीड़ा है, अतः वे रुक रुक कर चल रहे हैं। उन्होंने पूछा—आपके पैरों में पीड़ा है क्या?

आचार्य श्री ने कहा—नहीं पीड़ा नहीं है। हमारा यह नियम है कि हम चलते समय बात नहीं करते। अतः मुझे रुकना पड़ता है। वे कहने लगे—तब तो आपको बहुत कष्ट होता है। मुझे भी आपसे चलते समय बात नहीं करनी चाहिये।

५

मैं उपवास करूँगा

उस दिन उषाकाल मे ही कुछ ऐसा आत्म-प्रेरक प्रसग आया, जिसकी कोई कल्पना भी नहीं थी। सदा की भांति आचार्य श्री छोटे साधुओं को अध्ययन करा रहे थे। अपने व्यस्त कार्यक्रम मे शिष्यों के अध्यापन को आप कितना महत्व देते हैं, यह इससे स्पष्ट हो जाता है। अध्ययन मे "शान्त सुधारस" नामक ग्रन्थ के पहले ही श्लोक में एक शब्द आया—"अम्भोधर"

आचार्य श्री शब्द की व्युत्पत्ति, समास, अर्थ आदि की पूरी छानवीन करने लगे। उन साधुओ से वह न हो सका तो उनसे वडे साधुओं को वुलाया गया। उनमें से किसी ने कुछ वताया किसी ने कुछ। उन्होंने अर्थ वता दिया। समास वताया—अम्भ धरतीति अम्भोधर, द्वितीया तत् पुरुष। "श्रीतादिभि" सूत्र से सिद्ध किया। पर उनका यह प्रयास गलत था।

आचार्य श्री ने कहा—मुझे आशा नहीं थी कि तुम लोगों मे इतनी पोल है।

अब उन से भी वड़े साधुओ की वारी आई। आचार्य श्री कहने लगे—उन्हें क्या वुलायें। वे तो शायद वता देंगे। उन्हें भी वुलाया गया। वे भी ठीक-ठीक नहीं वता सके।

आचार्य श्री ने कहा—सभी एक सा वताते हैं, कहीं मैं ही तो गलती पर नहीं हूं।

आन्तरिक वेदना अनुभव करते हुये आचार्य श्री कहने लगे—क्या "सप्तम्युक्त कृता" सूत्र से यह नहीं साधा जा सकता? तुम में से किसी ने भी इस सूत्र पर ध्यान नहीं दिया। मैं यह तो कभी कल्पना ही नहीं करता था कि इस प्रकार तुम सव लोग ही गलत वताओगे। क्या हमारा सस्कृत का अध्ययन यही है? एक छोटा सा भी शब्द तुम

नहीं बता सके। मुझे यह देखकर चिन्ता होती है कि संस्कृत के क्षेत्र में विकास के स्थान पर ह्रास होता जा रहा है। यदि यही क्रम चलता रहा तो भविष्य की स्थिति और भी अधिक चिन्ताजनक होगी। मुझे इस पर दुःख है। इसके लिए तुम को दोषी कैसे ठहराऊँ? मैं समझता हूँ इसमें मेरी ही गलती है। अब मुझे अपना आत्म-शोधन करना चाहिये। और इसके लिये मुझे एक उपवास करना पड़ेगा। सब अवाक् रह गये। सबने निवेदन भी किया कि यह तो हमारी ही गलती है। आप उपवास क्यों करें? हम अपनी कमजोरी सुधारने की कोशिश करेंगे। पर आचार्य श्री ने उसे स्वीकार नहीं किया।

६

एक घटना

[illegible] वर्ष की बात है। एक सर्वथा अपरिचित व्यक्ति आचार्य श्री के पास आया और अपनी बात सुनाने लगा—आचार्य श्री! आज से सात दिन पहले मेरे मन में बहुत बेचैनी थी। रास्ता नहीं मिल रहा था। रात को मुझ भारी मन से सो गया। मुझे योग की तरफ बचपन से ही रुचि रही है और उसकी खोज में मैं बहुत से योगियों से भी मिला था। पर मुझे पूरा सन्तोष नहीं हुआ। यहाँ मैं सिन्ध से शरणार्थी होकर आया हूँ। घर पर मैं और मेरी माताजी के सिवाय और कोई नहीं है। माताजी को छोड़कर जंगल में जाना मुझे उचित नहीं लगा, और यहाँ घर में मेरा मन नहीं लगता था। मेरे मन में यह द्वन्द्व चल रहा था। स्वप्न में मुझे मेरे गुरु दिखाई दिये। उन्होंने मुझसे कहा—तुम चिन्ता क्यों करते हो। आज से सात दिन बाद यहीं पर एक आचार्य आयेंगे वे तुम्हें रास्ता दिखायेंगे। उन्होंने मुझे जो आकार-प्रकार बताया वह सारा आप से मिलता है। मेरे भाग्य से आप पधार गये। आपके दर्शन से मुझे इतनी आत्म-शांति मिली कि उसे मैं शब्दों में नहीं बता सकता। फिर वह आचार्य श्री को अपने घर ले गया।

आखिर आचार्य श्री ने जब वहाँ से विहार किया तो वह इतना रोया कि वह एक शब्द भी नहीं कह सका।

कुछ दिन बाद उसने आचार्य श्री को एक पत्र लिखा। उसमे अपने हृदय के भावो को उंडेल दिया।

७

पानी झर रहा था

आचार्य श्री जंगणियां गाव मे पधारे। दोपहर का समय था। पांच-चार झोपड़ियो मे साधु अलग-अलग ठहरे हुये थे। लू चल रही थी। पानी भी थोड़ा ही मिला था। आचार्य श्री के पास मटकी (घड़े) मे पानी पड़ा था। पास में बैठे हुये एक साधु से कहा—पानी को व्यर्थ क्यो जाने देते हो? उसने कोशिश की। पर टपक-टपक कर चूने वाले पानी को कैसे बचाया जा सकता था। मटकी एक पट्टे पर छोटे-छोटे पत्थरों पर रखी हुई थी। उसके नीचे कल्प की टोपसी रखने की चेष्टा की, पर वह भी नहीं हो सका, तो आचार्य श्री ने सुझाया—जहाँ पानी टपकता है, वहाँ एक कपड़ा रख दो। पानी कपड़े मे से होकर नीचे पात्र मे आ जायेगा। ऐसा ही किया गया।

शाम तक पात्र मे लगभग आधा सेर पानी भर गया। वह पानी काम मे ले लिया गया।

पर पानी को काम में लेने से भी अधिक सन्तोष इस बात का था कि इस सूक्ष्म दृष्टि मे कितना पानी बचाया जा सकता है।

८

धर्म या पाप

एक ६-७ वर्ष का बच्चा दौड़ा-दौड़ा आया और आचार्य श्री से पूछने लगा—महाराज, माता पिता की सेवा मे पाप होता है या धर्म? इतने मे एक और व्यक्ति भी कुछ बातचीत करने आये। पर एक ओर बैठ गये। आचार्य श्री ने पहले बच्चे के प्रश्न को प्रमुखता दी। कहने-

लगे माता-पिता की धार्मिक सेवा में धर्म और सांसारिक सेवा में सांसारिक धर्म। उसे वैसे समाधान मिल गया।

आचार्य श्री ने कहा—तो बताओ यह प्रश्न तुमको किसने सुझाया? उसने सारा भेद खोलते हुये कहा कि अमुक व्यक्ति ने मुझे खास से यह प्रश्न पूछने को कहा था। आचार्य श्री कहने लगे—देखो, लोग बच्चों के दिलों में साम्प्रदायिकता का कैसा विष भर देते हैं? नहीं तो भला इन्हें ऐसे प्रश्नों से क्या सरोकार?

६

इलायची की भेंट

आचार्य श्री "अस्थल बोर" (रोहतक के पास) पधारे। वहां के महन्तजी इलायची लिये वहां आये। उन्होंने कहा—मैंने आपका नाम तथा आपके कार्यों की बहुत प्रशंसा सुनी थी। इच्छा थी पास से मिलूं। आज मिलना हुआ है। यह मेरी भेंट (इलायची को चरणों में रखते हुये) स्वीकार करें।

आचार्य श्री ने कहा—ये सजीव हैं। इनको छूना हमारी मर्यादा के विपरीत है। दूसरी बात यह है कि हम भेंट नहीं लेते।

१

एक प्रश्न

एक भाई ने पूछा—आप अणुव्रतों के प्रवर्तक कैसे हैं?

आचार्य श्री ने कहा—नहीं भाई, मैं अणुव्रतों का प्रवर्तक तो नहीं हूं। अणुव्रत अनादि काल से चले आ रहे हैं। पर मैं वर्तमान अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तक अवश्य हूं। सब लोग हँसने लगे।

११

एक बालक

अणुव्रत-नियमावली में अहिंसा अणुव्रत का एक नियम यह है कि— रेशम आदि कृमि हिंसाजन्य वस्त्र नहीं पहनूंगा। इस विषय को आचार्य श्री ने खूब स्पष्ट किया। प्रवचन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बहुत से लोग आगे आये और इन प्राणि सहारक विधियों का प्रत्याख्यान करने लगे। शाम को एक छोटा सा बच्चा आया और कहने लगा—मुझे जीवित जानवर के चमडे के उपयोग का प्रत्याख्यान करा दीजिये। आचार्य श्री ने पूछा—क्यों? वह कहने लगा—आज मैंने प्रवचन सुना था। मुझे घृणा हो गई कि हमारे लिये ये जीवित जानवर कैसे मारे जायें।

आचार्य श्री ने पूछा—कितने दिनों तक? उसने कहा—जीवन भर।

आचार्य श्री ने कहा—यह बहुत होता है। उसने उसी दृढ़ता से कहा—नहीं महाराज! मैं पूरी दृढ़ता से निभाऊंगा। इस घटना से पता चलता है कि बालकों मे ये सस्कार सहज ही भरे जा सकते हैं।

१२

तर्क समाप्त हो गया

अतरग अधिवेशन में विशिष्ट अणुव्रती के छठे नियम—"एक लाख से अधिक पूंजी नहीं रखूंगा" पर बहस चल रही थी। कई लोग कहते थे—यह नियम रहना चाहिये और कई कहते थे, नहीं रहना चाहिये। अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री पारस जैन ने कहा—अणुव्रत तो भावनामूलक है, फिर इसमे इस नियम की क्या आवश्यकता है? और इसका मतलब तो यह हुआ कि एक लाख से अधिक पूंजी वाला तो अणुव्रती बन ही नहीं सकता।

आचार्य श्री ने मुस्कराते हुये कहा—तुम अभी इतनी चिन्ता क्यों करते हो ? पहले दो-चार करोड़पतियों को भिक्षाक अणुव्रती बनने के लिये प्रेरित तो करो। फिर मैं देखूंगा कि वे अणुव्रती बन सकते हैं या नहीं ?

हँसते हँसते उनका तर्क समाप्त हो गया।

१३

दो कबूतर

तीसरे प्रहर भोजन के समय आचार्य श्री की दृष्टि सहसा ऊपर बैठे हुये दो कबूतरों पर पड़ी। इधर से उधर उड़ते पक्षियों को देखकर आचार्य श्री ने कहा—इनका भी कोई जीवन है ? न कोई काम और न कोई प्रयोजन। आगे उनका निर्देश था—वे मनुष्य भी बिना प्रयोजन इधर उधर दौड़ धूप करते हैं और न जिनका कोई अध्ययन और चिंतन है—उनका जीवन कैसे बीतता होगा ?

मनुष्य जीता है प्रकृति से। खाने पीने की चीजें गौण हैं। हम खाते हैं तो बस प्रकृति की सहायता के लिये। अतः मनुष्य का भोजन ज्यादा घी, दूध और गरिष्ठ व स्वादिष्ट चीजों वाला हो, यह आवश्यक नहीं है। साधारण भोजन से हमारा काम चल सकता है। मनुष्य मनुष्य की प्रकृति भिन्न होती है। अतः उसे ऐसी चीजों से बचकर चलना पड़ता है जो उसके प्रतिकूल हों। प्रतिकूल का निराकरण हो जाने पर अनुकूल स्वयं शेष रह जाता है। भोजन यदि ज्यादा भारी और बहुमूल्य न हो तो भी जीवन-शक्ति में कमी नहीं आने वाली है।

१४

केवल फोटो चाहिये

आज साम पंचमी समिति पधारते वक्त सड़क पर एक यूरोपियन आया और फोटो लेने लगा। आचार्य श्री अपने ध्यान से वे आगे निकल गये। वह फोटो नहीं ले सका।

आगे झाडी मे जाकर सारे साधु अलग अलग चले गये। पीछे से आचार्य श्री अकेले थे और जगह की एषणा कर रहे थे कि अचानक यह यूरोपियन केमरा लिये सीधा आचार्य श्री के पास पहुँच गया। आचार्य श्री ने उससे पूछा—भाई कौन हो तुम ? पास मे ही श्री दुलीचन्दजी स्वामी थे। उन्होंने देखा—कोई नया सा आदमी आचार्य श्री के पास खडा है। वे झट से दौडकर आये। उन्हें देखते ही वह यूरोपियन कुछ डरा। उसने देखा कि ये मुझे पीटेंगे। अत डरकर बोला—मैंने और कुछ नहीं किया है। केवल फोटो लिया है। मैं बेल्जियम का रहने वाला हूँ। मैंने आप जैसे साधु पहले कभी नहीं देखे थे। अत फोटो लेने की इच्छा हुई, क्षमा करें। धन्यवाद कह वह वहाँ से चला गया।

१५
वालक की जिज्ञासा

पास के एक छज्जे पर कुछ कवूतर वैठे थे। उन्हें देखकर एक वच्चे ने झट से प्रश्न किया—क्या ये कवूतर आपके पाले हुये हैं ?

आचार्य श्री ने कहा— नहीं, साधु कवूतरों को कभी नहीं पालते।

तो ये यहाँ क्यों वैठे हैं ?—वच्चे ने पूछा।

आचार्य श्री—अगर कोई जानवर आजाये तो हम उसे वापस उडा तो सकते नहीं। अत ये यहाँ वैठे हैं।

इतने मे कवूतर उड गये।

वच्चे ने हाथ ऊपर कर कहा—वे उड गये, वे उड गये।

आचार्य श्री ने कहा—हमने तो नहीं उडाये थे न। हम न तो किसी को पालते हैं और न किसी को उडाते हैं।

वालक—हाँ, हाँ कहता हुआ वहीं वैठ गया।

एक छोटे से वच्चे और आचार्य प्रवर का वार्तालाप दर्शन के कितने गहन तत्व को स्पर्श करता है।

जो आकर्षक रूप आचार्य श्री और निश्छल भक्ति में बह रहा था, उससे, पास पास बैठे हुये लोग भी प्रभावित हुये बिना नहीं रहे।

१६

अल्लाह ने भी अनुमति दे दी

वह मुसलमान था। अवस्था लगभग ६५ वर्ष की होगी। सफेद दाढ़ी, गोरा चेहरा, बड़ी बड़ी आँखों से उसका व्यक्तित्व बाहर झांक रहा था।

वह आचार्य श्री के पास आया। अणुव्रती की बात चल पड़ी। नियम सुनाये गये। आचार्य श्री ने पूछा—अणुव्रती बनोगे ?

उसने कहा—मैं खुदा से पूछूंगा। उसकी आज्ञा हुई तो अवश्य अणुव्रती बनूंगा।

वह झट वह मकान की ऊंची छत पर गया और लगा खुदा को पुकारने। जोर जोर से चिल्लाया। मन ही मन कुछ गुनगुनाने लगा। कुछ ही क्षणों बाद वह अतीव प्रसन्न हो आचार्य श्री के पास आया और कहने लगा—आचार्य जी! खुदा ने भी अनुमति दे दी है। मैं अणुव्रती बनूंगा। क्या आपका इसमें सहयोग मिलेगा ?

आचार्य—हाँ आध्यात्मिक कार्यों में हमारा सहयोग रहता ही है।

मुसलमान—आपका यहाँ नुमाइन्दा कौन है ?

मुनि नगराजजी की ओर इशारा करते हुये आचार्य श्री ने कहा—ये हमारे नुमाइन्दा हैं। इनसे आप समय समय पर बातचीत कर सकते हैं।

वह बुड्ढा मुसलमान कहने लगा—मेरे लिये कोई कार्य हो तो फरमाइये।

आचार्य श्री ने कहा—तुमको कम से कम १ मुसलमान अणुव्रती बनाने होंगे।

हर्षपूर्वक उसने यह संकल्प किया कि वह ऐसा करेगा।

१७

अन्तिम दर्शन की प्रतीक्षा

एक बहिन अपने जीवन की अंतिम घड़ियों में प्रतीक्षा कर रही थी कि कब आचार्य श्री के दर्शन हों और वह अपने इस शरीर से मुक्त हो। नहीं तो भला यह क्षीण सा अस्थिपंजर क्या ३६ दिनों तक बिना खाये-पीये रह सकता था ? आचार्य श्री पधारे। प्रवचन हुआ। प्रवचन समाप्त होते ही आचार्य श्री ने कहा—चलो मथारे वाली बहिन को दर्शन दे आयें। धूप काफी चढ़ चुकी थी। बालू में पैर भी जलते थे। अत पास में खड़े भाई ने कहा—अभी गरमी बहुत है, फिर शाम के समय पचमी से आते वक्त दर्शन दीजियेगा। आचार्य श्री ने कहा—नहीं, अभी ही जाना है। आयु का क्या भरोसा। उसका घर काफी दूर था। दर्शन देकर स्थान पर आये। और थोड़ी देर में सुना—बहिन ने सदा के लिये आँखें मूंद ली। आचार्य श्री अभी उसे दर्शन देने नहीं जाते, तो क्या बहिन अपनी अशांत आशा के भार से अपने देह को शांतिपूर्वक छोड़ सकती ?

१८

अनुशासन की कठोरता

दिल्ली से सरदारशहर लौटते हुए वर्षा के कारण बहादुरगढ़ में सारा सघ रुक गया था। आगे जाना सभव न हो सका। अष्टमी का दिन था। पर कुछ साधु भूल से विगय ले आये। आचार्य श्री ने उन्हें कड़ा उलाहना देते हुये कहा—"आज अष्टमी है, यह तुम लोगों को ध्यान क्यों नहीं रहा ? माना तुम रास्ते चलते हो, वर्षा के कारण आहार थोड़ा आने की सभावना हो सकती है, पर नियम नियम है। उसे ऐसे तोड़ा नहीं जा सकता। अलग विचरने वाले साधु-साध्वी भी तो इसे निभाते हैं। तुम्हारी असुविधायें उन्हें भी हो सकती हैं।

इस बात से छिपी हुई अनुशासन की कर्तव्यता और नियम की महत्ता को सहज ही मापा जा सकता है।

१६

कार्यनिष्ठा का एक उदाहरण

आचार्य प्रवर लम्बी लम्बी कर्मोलिया भवन में विराज रहे थे। एक दिन प्रातःकाल मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी से कहा—नई दिल्ली दूर तो बहुत है पर कुछ आवश्यक कार्य है अतः जाओ। प्रातःकालीन आहार वहीं कर लेना व सायंकालीन यहाँ आकर कर लेना। मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी चले गये। सायंकालीन आहार के समय तक वापस नहीं पहुँचे। आचार्य श्री को चिंता हुई। वह सायंकालीन आहार न कर सकेगा। सूर्यास्त के साथ साथ मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी लक्ष्मी, पहाड़गंज, नई दिल्ली परिभ्रमण चांदनी चौक आदि में ९ मील का चक्कर कर लम्बी लम्बी पहुँचे। आचार्य श्री ने पूछा सवेरे तो आहार कर लिया होगा? मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी ने कहा—केवल एक कवल। आचार्य श्री ने कहा यह कैसे? उन्होंने कहा—आहार के अभाव करता, इतना समय नहीं था। सहज रूप से किसी भक्त के यहाँ इतना ही प्रसाद मुझे मिला। आचार्य श्री ने उपस्थित अन्य साधुओं व कार्यकर्ताओं से कहा—कार्यनिष्ठा इसी को कहते हैं। काम की धुन में १ मील का विहार व कवलाहारी व्रत मनुष्य को पीड़ाकारक नहीं होता। युवक साधकों के लिये यह एक अनुकरणीय उदाहरण है। देहली के कार्यक्रम में महेन्द्र का परिश्रम मौलिक रहा है। केवल आज के अनूठे उदाहरण के लिए मैं इसे २१ "परिष्ठापन" पारितोषिक रूप में देता हूँ। आचार्य श्री का वात्सल्य ऐसे प्रसंगों पर बहुत बार निखर आया करता है और युवक साधुओं को कार्यनिष्ठा की एक अद्भुत प्रेरणा दिया करता है।

परिशिष्ट २

एक दृष्टि में

संत प्रवर आचार्य श्री तुलसी गणी की सरदार शहर से दिल्ली आने और दिल्ली से पिलानी होते हुए सरदार शहर लौटने की चार सौ मील की धर्म यात्रा ऐतिहासिक महत्व रखती है। उसका कुछ विवरण प्राक्कथन में दिया गया है। यहाँ एक दृष्टि में उसकी जानकारी दी जा रही है।

१६ नवम्बर ५६— सरदार शहर से उडसर, मेलूसर
२० „ — टोगास, बूचास
२१ „ — तारानगर, जिक्साणा
२२ „ — नांगली, शार्दूलपुर, राजगढ
२३ „ — राधामठई, वहेल
२४ „ — जोवरा, देवराला, फेरू

—

९ ,, — पहाड़गंज में प्रवचन, श्री मनोहर मेहता, श्री उपाध्याय और श्री गुलजारीलाल नन्दा के साथ भेंट

१० ,, — प्रवचन, श्री महेन्द्रमोहन चौधरी के साथ भेंट

११ ,, —मॉडर्न हायर सेकेण्डरी स्कूल मे प्रवचन

१२ ,, — प्रवचन, श्री सरकार, श्रीमती मुकुल मुखर्जी, श्री कृष्णा दवे और श्री रामेश्वरन से भेंट

१३ ,, — प्रवचन, राष्ट्रीय चरित्र मूलक अणुव्रत सप्ताह का उद्‌घाटन, श्री गुलजारीलाल नन्दा और जर्मन जिज्ञासुओं के साथ चर्चा

१४ ,, — अणुव्रत सप्ताह का दूसरा दिन, अमेरिकन महिलाओ की भेंट

१५ ,, — अणुव्रत सप्ताह का तीसरा दिन, उपराष्ट्रपति और स्टेटसमैन के न्यूज एडीटर की भेंट

१६ ,, — सप्ताह का चौथा दिन, हरिजन बस्ती मे, लोकसभा के अध्यक्ष के साथ चर्चा वार्ता

१७ ,, —सप्ताह का पांचवां दिन—जेल मे, राष्ट्रपति के निजी सचिव श्री विश्वनाथ शर्मा से भेंट

१८ ,, — प्रवचन, सप्ताह का छठा दिन—महिलाओ मे भाषण, श्री एन० सी० चैटर्जी और श्री देश पाण्डे से भेंट

१९ ,, — मिनर्वा में प्रवचन, सप्ताह का सातवां दिन,—त्रिलोकर कार्यालय और बार ऐसोसिएशन मे, राजस्थान के राज्यपाल श्री गुरमुख निहालसिंह और परराष्ट्रमंत्री डा० सैयद महमूद के साथ चर्चा

२० ,, — व्यापारियों मे भाषण

२१ ,, — प्रवचन, "हिन्दुस्तान टाइम्स" के संपादक श्री

१६ ,, — मोखा, विलाणी

१७ ,, — विडला माटसेरी स्कूल मे प्रवचन

१८ ,, — सस्कृत साहित्य गोष्ठी

१९ ,, — वालिका विद्यापीठ, इजीनियरिंग कालेज और शिवगगा कोठी मे प्रवचन व भाषण

२० ,, — नागरिकों की सभा मे चुनाव एव चरित्र शुद्धि सम्वन्धी सार्वजनिक भाषण

२१ ,, — पिलानी से मडेला, कखडेऊ

२२ ,, — मलसीसर, टमकोर

२३ ,, — मोतीवाग, ढाढर

२४ , — चुरु

२५ ,, — दूधवा, वालरासर

२६ ,, — खीवसर, पूलासर

२७ ,, — सरदार शहर

लौटते हुए २०९ मील का माग १७ दिन मे २७ विहार करके पूरा किया गया ।